आदर्श वाणी

और

उमास्वामी श्रावकाचार

संग्रहकर्ता

१०८ मुनिश्री वृषभसागरजी महाराज

पुस्तक मिलने का पता :

सेठ पारसदास श्रीपाल मोटर वाले
रंगमहल, श्यामाप्रसाद मुखर्जी मार्ग,
दिल्ली-६

श्री हरीचन्द प्रकाशचन्द्र गोटे वाले
किनारी बाजार,
दिल्ली-६

जैन साहित्य सदन
दि० जैन लाल मन्दिरजी, चांदनी चौक,
दिल्ली-६

प्रकाशक

जैन साहित्य सदन
जैन लाल मन्दिर, चादनी चौक,
दिल्ली-६

*

मूल्य
स्वाध्याय

मुद्रक : नवसाहित्य प्रिंटर्स, ६६५, चादनी महल, दिल्ली-६
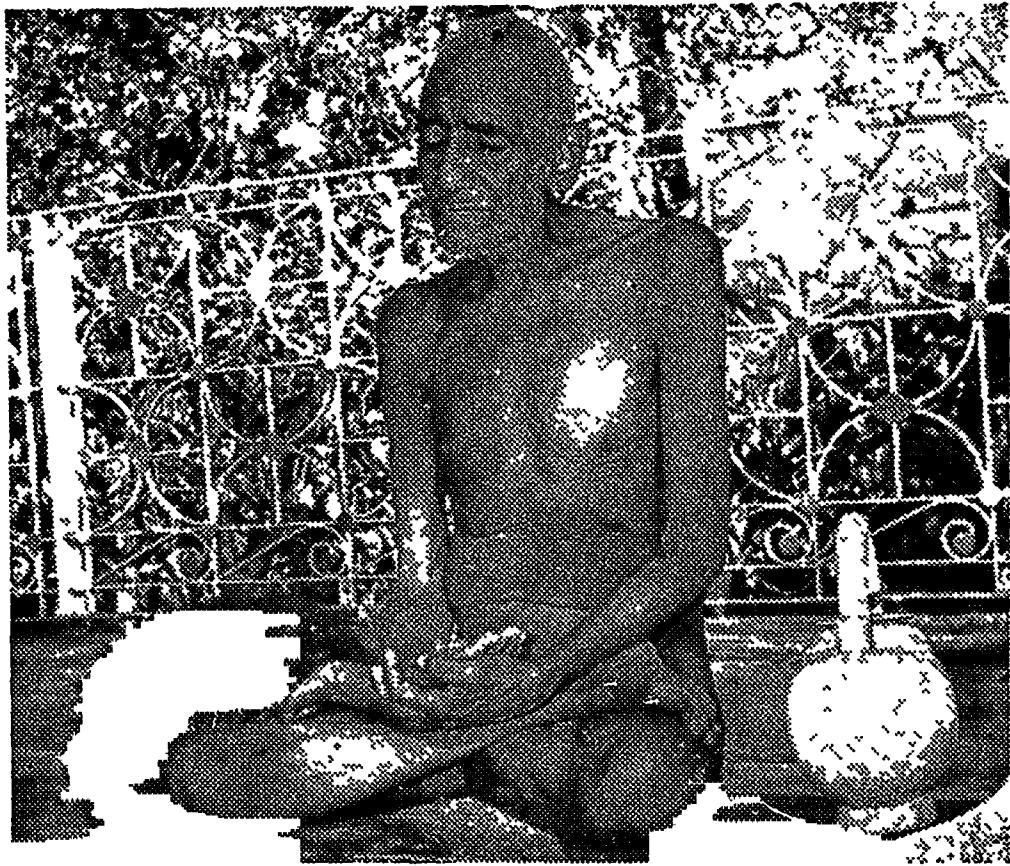
१०८ मुनिश्री वृषभसागरजी महाराज

आदर्श वाणी का परिचय

मंगल करता वृषभ सिन्धु वीर चौबीस जिनेश्वरं ।
जिनवाणी सुख मूल समझ कर नमत सुरेश्वरं ।।
शांति वीर गुरु शिवसागर के चरण कमल में ।
नमन करूं शतवार रखू पग मोक्ष महल में ।
स्वयं पढो औरों को पढ़ाओ हो निश्चल कल्याण ।
महा पुरुषों की वाणी सुनकर होय आतम उत्थान ।।

अनादि काल से इस ससार मे अनंते जीव भ्रमण करते जन्म-मरण के भारी दुख उठा रहे हैं, उनकी लम्बी कहानी है । भगवान जिनेन्द्रदेव ने उन दुःखो से छूटने का विवेचन अपनी दिव्य ध्वनि मे वर्णन किया है श्री गणधर देवों ने जैन शास्त्रो मे गूथ कर रक्खा है उन शास्त्रो से इस आदर्शवाणी मे भव्य जीवो के हित के लिये आत्म कल्याणकारी अज्ञान रूपी अधकार दूर करने को रत्नत्रय धर्म का सग्रह किया है । इस पुस्तक का जो सृज्जन स्वाध्याय करेंगे, मनन करेंगे, अपनी आत्मा मे धारण करेंगे, वे निश्चय ही ससार के दुःखो से छुटेंगे । क्योकि इसमे अनेक कल्याणकारी विषयो का वर्णन किया है ।

इस प्रकार यह ग्रन्थ पाठको के लिये परम उपयोगी होगा ।

सग्रहकर्ता—
मुनिश्री वृषभसागर

सेठ पारस दास जी जैन मोटर वाले (देहली)

सेठ श्रीपाल जी जैन सुपुत्र सेठ पारसदास जी जैन
मोटरवाले (देहली)

१२. श्री राधामोहन रामचन्दजैन, आरा मशीन डाल्टनगज, पलामू (बिहार)
१३. गुप्त दान वैद्यवाडा, देहली
१४ श्रीमती राजराणी जैन धर्मपत्नी महेन्द्रकुमार जी, वैद्यवाड़ा, देहली
१५ श्री वकील साहब, अम्बाला शहर
१६ श्रीमान ला० पारसदास श्रीपाल जैन मोटर वाले, नोवल्टी, दिल्ली
१७. श्रीमती मायावती जैन धर्मपत्नी रघुनाथप्रसाद, गाधी नगर, दिल्ली
१८. ला० किशोरीलाल ओमप्रकाश जैन मित्तल, हेलीमण्डी, (गुड़गावां)
१९ ला० ताराचन्द्र चौधरी दिल्ली मार्फत तरख राम दलीप सिंह
२० श्रीमती विमलादेवी जैन धर्मपत्नी ला० शीलचन्द्र सर्राफ, चादनी चौक, दिल्ली
२१. ला० मदन गोपाल जैन, के ३३, माडल टाउन, दिल्ली
२२. ला० रोशन लाल हरक चन्द जैन, कपडे के थोक व्यापारी, कटरा शहनशाही, चादनी चौक, दिल्ली
२३ श्रीमती रेशमबाई, धर्मपत्नी स्व० चन्दगीराम जी, रूपनगर, दिल्ली
२४. श्रीमती चन्द्रकाता देवी, धर्म पत्नी पारस दास जी, २१-ए, रेवती भवन, दरियागज, दिल्ली
२५. श्री सेठ मानकचन्द पालीवाल, कम्पाउंड ३३, कोटा छावनी
२६ श्रीमती सत्यवती धर्मपत्नी ला० रतन चन्द फोटू वाले, १८६६, चांदनी चौक, देदली-६
२७ . श्रीमती कमलरानी धर्मपत्नी श्री सुशीलकुमार, गली अहीरान, पहाडी धीरज, दिल्ली
२८. श्रीमती छिगनीबाई लुहाडिया, धर्मपत्नी सेठ आनन्दी लाल, वोहराज वाले, जयपुर मार्फत वा० सोमागमल जी पाटनी
२९. श्रीमती शान्ती देवी, शक्ति नगर, देहली
३०. श्रीमती कुसम बाई जैन, धर्मपत्नी स्व० फूलचन्द मार्फत रामवीर कम्पनी, बम्बई-४
३१. श्री जम्बू प्रसाद विशाल कीर्ति जैन, सब्जी मडी, देहली

—राधा मोहन

मोक्षमार्ग

मोक्ष जाने का नुसखा, असली चटनी

१. भलाई के पत्ते ४ तोला २. सच्चाई की जड़ २ तोला ३. प्रेम के बीज ३ तोला ४. परोपकार के फल ५ तोला ५. तपस्या की छाल १५ तोला।

ये सब पांच वस्तुओं को लेकर भक्ति के पत्थर पर श्रद्धा की लोढी से खूब पीसे और फिर आत्म-विश्वास के डिब्बे में भर लेवे और सत्संग के चमचे से २-३ रत्ती प्रतिदिन विश्वास के साथ खावे (सेवन करें) तो निश्चय मोक्ष पावे। परहेज—(चिंता की दाल, देश द्रोह का नमक व्यभिचार की खटाई और विकल्प की मिरचों का त्याग होना चाहिए)।

व्यवहार मोक्षमार्ग

व्यवहार मोक्ष मार्ग भी निश्चय मोक्षमार्ग पहुंचने का साधन है इसलिए व्यवहार मोक्षमार्ग प्रत्येक व्यक्ति को पालना चाहिए।

१. देवपूजा—श्री १००८ अरहंत भगवान की पूजा-अभिषेक करना।

२. भगवान का प्रवचन गणधर देव ने आगम मे ग्यारह अग और चौदह पूर्व मे बताया है उन शास्त्रो का स्वाध्याय करना चाहिए।

३. जिन-धर्म प्रत्येक व्यक्ति को पालना चाहिए। क्योकि भगवान ने शुरू मे धर्माचरण किया था उससे वह भगवान बने और मोक्ष प्राप्त किया।

४. परमपूज्य गुरुओ का प्रवचन सुनना और उनकी सेवा-भक्ति करनी चाहिए क्योकि मुनि ही इस समय सच्चा मोक्षमार्ग बता रहे हैं।

५. जो व्यक्ति देव, शास्त्र, गुरु और धर्म को नही मानता अथवा एक या दो या तीन को मानता और सच्चे मुनियो को दोषी बताकर उनका आदर-सत्कार, पूजन नही करता उसे मिथ्यात्वी समझना चाहिए।

—वृषभसागर

भगवान महावीर से प्रार्थना

अर्हंत्पुराण पुरुषोत्तम पावनानि ।
वस्तुन्यनून मखिलान्यममेक एव ।
अस्मिन् ज्वलद्विमल केवल बोधवह्नौ ।
पुण्य समग्र महमेकमना जुहोमि ।

हे भगवान मेरी यह प्रार्थना स्वीकार कीजिये क्या ?

बहुत सुख भोगे जगत के अब न इच्छा भोग की ।
इन माहिं रंचक सुख नहीं है थिति बढावें रोग की ॥
मम मोक्ष फल की चाह निश्चय अब भयो लख आपको ।
मैं हाथ जोडूं शिर नवाऊँ हरो मेरे पाप को ॥

बालाश्रम दरियागंज,
दिल्ली

—मुनि वृषभसागर

॥ श्री जिनाय नम ॥

आदर्श-वाणी

पूज्य आचार्य शांतिसागर महाराज का अंतिम आदेश और उपदेश

विजेता मोह मल्लस्य कलिकालस्य तीर्थकृत
योगीन्द्रः साधु संपूज्यः, पातुवः शांतिसागरः ॥

(श्री देशभूषण कुलभूषण दिगम्बर जैन सिद्ध क्षेत्र कुन्थलगिरि (जिला उस्मानाबाद) में परम पूज्य योगीन्द्र चूड़ामणि धर्मसाम्राज्य नायक, श्री १०८ चारित्र चक्रवर्ती आचार्यवर श्री शान्तिसागर महाराज द्वारा अपने यम सल्लेखना उपोषण के २६वे दिन दिनाक ८-९-५५ वृहस्पतिवार को साय ५-१० से ५-३२ तक (२२ मिनट) मराठी भाषा मे दिया हुआ "अन्तिम आदेश और उपदेश' का हिन्दी रूपान्तर ।)

मानव कल्याण का आधार सत्य और अहिंसा

ॐ जिनाय नम ॐ सिद्धाय नमः ॐ अर्हं सिद्धाय नमः । भरत ऐरावत क्षेत्रस्य भूत भविष्य वर्तमान तीस चौवीसों भगवान नमः । सीमधरादि बीस विरहमान तीर्थकर भगवान नमो नम । ऋषभादि महावीर तक चौदह सौ बावन गणधर देवाय नमो नमः । चौसठ ऋद्धिधारी मुनीश्वराय नमोनमः । हरएक तीर्थंकर के समय दश दश घोरोपसर्ग विजयी मुनीश्वरा. नमो नमः ।

ग्यारह अग चौदह पूर्व रत्नयुक्त महासागर के समान शास्त्र है । उसका वर्णन कोई शास्त्रज्ञ नही करते, कोई केवली नहीं, हम जैसे तुच्छ प्राणी उसकी क्या विवेचना कर सकते

है? आत्मा का कल्याण करनेवाली जिनवाणी सरस्वती श्रुति-देवी है। ब्रह्म महासागर के समान है। इसलिए जिन धर्म धारण करने वाले जीव का कल्याण अवश्यम्भावी है। इनमे से एक अक्षर 'ॐ' को ही जो धारण करता है उसी जीव का कल्याण होता है।

'सम्मेद चोटी' पर कलह करनेवाले दो कपि उसी के स्मरण से स्वर्ग पहुच गये। सुदर्शन सेठ के उपदेश से बैल स्वर्ग को गया। सप्त व्यसनधारी अजन चोर को भी मोक्ष प्राप्त हुआ। इसके अतिरिक्त नीच योनि के कुत्ते को भी जीवन्धर कुमार के उपदेगसे सद्गति प्राप्त हुई। इतना महत्वपूर्ण होने पर भी लोग जैनधर्म को स्वीकार नहीं करते। अनादिकाल से जीव और पुद्गल दोनो ही भिन्न है यह समस्त ससार जानता है, लेकिन विश्वास नही करता। पुद्गल को जीव और जीवको पुद्गल मानते है। दोनो के गुण धर्म भिन्न हैं, क्या जीव पुद्-गल है? या पुद्गल जीव है? पुद्गल तो जड है। स्पर्श, रस, वर्ण, गध यह उसके गुण है। ज्ञान, दर्शन-चेतना यह जीव के लक्षण है। हम तो जीव है। पुद्गल का पक्ष लिया तो जीव का नाश होता है। किन्तु मोक्ष को जानेवाला एक मात्र जीव है, पुद्गल नही। जीव का कल्याण करना, अनन्त सुख को पहुं-चाना अपना कर्तव्य है। लेकिन मोहमय कर्मो से विश्व भूला हुआ है। दर्शन मोहनीय कर्म सम्यक्त्व का नाश करता है। चारित्र मोहनीय कर्म चारित्रका नाश करता है, फिर हमे क्या करना चाहिए? दर्शन मोहनीय कर्म को नष्ट करने के लिए सम्यक्त्व धारण करना चाहिए। चारित्र मोहनीय कर्मको नष्ट करने के लिए सयम धारण कीजिये। यही मेरा आदेश है। उपदेश है। ॐ सिद्धाय नमः

कर्म निर्जरा का साधन आत्म-चिंतन

अनंतकाल से जीव मिथ्या-कर्म से संसार में परिभ्रमण कर रहा है। तब मिथ्या-कर्म को नष्ट करना चाहिए। तब, सम्यक्त्व क्या है ? इसका समग्र वर्णन कुन्दकुन्दाचार्यजी ने समयसार, प्रवचनसार, पचास्तिकाय, अष्टपाहुड और गोम्मटसारादि ग्रथों मे किया है। लेकिन उसपर किसकी श्रद्धा है ? तब अपना आत्म-कल्याण करलेने वाला जोव श्रद्धा से सुख किससे होगा इसका अनुभव लेता है। ऐसे ही संसार में अनादि काल से जीव परिभ्रमण करता आया है, फिर हम क्या करना चाहिए ?

दर्शनमोहनीय कर्म को नष्ट करना चाहिए। दर्शनमोहनीय कर्म आत्म-चितन से नष्ट होता है। कर्म को निर्जरा आत्म-चितन से ही होती है। दान-पूजा करने से पुण्य प्राप्त होता है। तीर्थयात्रा करनेसे पुण्य प्राप्त होता है, हरएक धर्म का उद्देश्य पुण्य प्राप्त करना है। किंतु केवलज्ञान होने के लिए, अनंत कर्म की निर्जरा के लिए आत्म-चितन ही उपाय है। यह आत्म-चिंतन चौबीस घटे में से छह घडी उत्कृष्ट, चार घड़ी मध्यम, दो घडी जघन्य, कम-से-कम दस-पद्रह मिनट या हमारे कहनें से पाच मिनट आत्म-चितन कीजिये। आत्म-चितन के सिवाय सम्यक्त्व नहीं प्राप्त होता, संसार का बंधन नहीं टूटता, जन्म, बुढापा, मृत्यु नहीं छूटती। सम्यक्त्व के सिवाय दर्शन मोहनीय कर्म का क्षय नही होता। सम्यक्त्व होकर छियासठ सागर तक यह जीव रहेगा। इसलिए चारित्र मोहनीय कर्म का क्षय करने के लिए सयम ही धारण करना चाहिए। सयम के सिवाय चारित्र मोहनीय कर्म का क्षय नहीं

होता। इसलिए कैसे भी हो, हरएक जीव को संयम धारण करना चाहिए डरना नहीं है, वस्त्र में संयम नहीं है। वस्त्र में सातवां गुण स्थान नहीं है। सातवें गुण स्थान के अभाव से आत्मानुभव नहीं हो सकता। आत्मानुभव के अभाव से कर्म-निर्जरा नहीं। कर्म निर्जरा के अभाव से केवलज्ञान नहीं व केवलज्ञान के अभाव से मोक्ष नहीं। इसलिए घबड़ाना नहीं।
ॐ सिद्धाय नमः।

सम्यक्त्व और संयम धारण के बिना समाधि संभव नहीं

सविकल्प समाधि, निर्विकल्प समाधि ऐसे दो भेद है। सविकल्प समाधि वस्त्र मे गृहस्थ को होती है, वस्त्र में निर्विकल्प समाधि नही है। भाइयो, इसलिए डरना नही। मुनिपद धारण कीजिये निर्विकल्प समाधि होने के बाद वास्तविक सम्यक्त्व होता है—आत्मानुभव के अतिरिक्त सम्यक्त्व नही। व्यवहार सम्यक्त्व आवश्यक है, ऐसा कुन्दकुन्द स्वामीजी ने समयसार में बतलाया है। निर्विकल्प समाधि मुनिपद धारण करने के बाद ही होती है। सातवे गुणस्थान से बारहवे तक पूरी होती है, तेरहवे गुणस्थान मे केवल ज्ञान होता है। ऐसा नियम है शास्त्रो मे लिखा है इसलिए सयम धारण कीजिये। पुद्गल और जीव भिन्न है। यह सर्व श्रुत है। सत्य को नही समझा। अगर सत्य समझते तो भाई-बन्धु माता-पिता आदि की भावना उनमे न रहती। यह सब पुद्गल से सबधित है। जीव का कोई भी साथी नही है। जीव बिल्कुल अकेला है। जीव अकेला ही परिभ्रमण करता रहता है। मोक्ष की प्राप्ति भी अकेले को ही होती हे।

देव पूजा, गुरूउपासना, स्वाध्याय, सयम, तप और दान यह छः क्रियाए हैं। असि, मसि, कृषि, शिल्प, वाणिज्य और

विद्या इन छः क्रियाओ से होनेवाले पाप का इन छः क्रियाओं से क्षय होता है, इन्हीं से इन्द्रिय-सुख मिलता है। पुण्य प्राप्त होता है। पंच पाप का त्याग करने से पन्चेन्द्रिय सुख मिलता है लेकिन मोक्ष नहीं मिलता। सन्तति, वैभव, राज्यपद, इन्द्र पद पुण्य से ही प्राप्त होता है। किन्तु मोक्ष आत्म-चिंतन से ही प्राप्त होता है। नय, शास्त्र, अनुभव इन तीनों को मिला कर देखिये, मोक्ष किससे प्राप्त होता है, मोक्ष आत्म-चिंतन से ही प्राप्त होता है। यह भगवान की वाणी है। यही एक सत्य-वाणी है इस वाणी का एक ही शब्द सुनने से जीव 'मोक्ष पद' पाता है। कौन-सी वाणी ? 'आत्म-चिंतन' इसके अतिरिक्त कुछ करने से मोक्ष प्राप्त नही होता। मोक्ष प्राप्त करने के लिए आत्म-चिंतन ही आवश्यक है, यह कार्य करना ही चाहिए।

सारांश यह है कि धर्म का मूल दया है, जिन धर्म का मूल सत्य, अहिंसा है, किन्तु सत्य और अहिंसा हम सब मुख से कहते हैं, लेकिन पालन नही करते। क्या स्वय पाक और भोजन कहने से ही पेट भर जाता है ? क्रिया करने के सिवाय बिना खाना खाये पेट नही भरता। क्रिया आवश्यक है इसके अतिरिक्त सब छोड दीजिये।

सत्य-अहिंसा का पालन कीजिये। सत्य में सम्यक्त्व होता है और अहिंसा से सब जीवों का रक्षण होता है, इस लिये सत्य अहिंसा का व्यवहार कीजिये। इसी व्यवहार का पालन कीजिये। इसीसे कल्याण होता है। ॐ सिद्धाय नमः

ध्यान का स्वरूप

वैराग्यं तत्व विज्ञानं. नैर्ग्रंथ्यं समभावना ।
जयः परीषहाणं च, पंचैते ध्यानहेतवः ॥

अर्थ—वैराग्य भाव, तत्वो का ज्ञान, निर्ग्रन्थ अवस्था, साम्य भावना तथा परीषहों के कष्टों पर विजय प्राप्त करना ये पाच ध्यान के कारण हैं ।

धर्म-ध्यान के प्रकार व स्वरूप

पदस्थं मंत्र वाक्यस्थं पिण्डस्थस्वात्म चिंतनम्
रूपस्थं सर्व चिद्रूपं रूपातीतं निरंजनम् ॥

१. मत्र वाक्य मे स्थित पदस्थ धर्म ध्यान है । २ स्वात्म चिन्तन पिण्डस्थ ध्यान है । ३ सर्व चिद्रूप का विचार, स्वरूप ध्यान है । ४ रूपातीत निरजन का ध्यान रूपातीत धर्म ध्यान है।

प्रथम उस परम ब्रह्म परमात्मा का मन वचन काय से एकाग्र होकर ध्यान करना चाहिए । जिसके ध्यान के निमित्त से आत्म शक्ति प्रकट होती है ।

अरहन्त भगवान के स्वरूप मे तन्मय होकर उनका ध्यान करें । किसी तीर्थंकर को ऋषभ, पार्श्व, नेमि, महावीर को या श्री सीमंधर स्वामी को नीचे प्रमाण ध्यावे ।

१—समवशरण के श्री मडप मे १२ सभाए हैं । उनमें चार प्रकार के देव देविया, मुनि, आर्यिका, मानव व पशु सब बैठे हैं । तीन कटनी पर गन्धकुटी है । उसमे अन्तरिक्ष चार अगुल ऊचे श्री अर्हन्त प्रभु पद्मासन मे विराजमान है ।

२—जिनका परमौदारिक शरीर कोटि सूर्य की ज्योति को मन्द करनेवाला है । जिसमे मासादि सात धातुए नहीं

हैं, परम शुद्ध रत्न व्रत चमक रहा है।

३—प्रभु परम शांत स्वरूप मग्न विराजमान हैं, इनके सर्व शरीर में वीतरागता झलक रही है।

४—श्री अरहन्त भगवान के क्षुधा, तृषा, रोग शोक, चिंता, राग, द्वेष, जन्म, मरण आदि अठारह दोष नहीं है।

५—जिनके ज्ञानावरणी कर्म के क्षय से अनंतज्ञान प्रगट हो गया है। जिससे सर्व लोक अलोक को एक समय में जान रहे है। दर्शनावरणी कर्म के क्षय से अनत दर्शन प्रगट हो गया है, जिससे लोकालोक को एक समय मे देख रहे है। मोहनीय कर्म के क्षय से क्षायिक सम्यग्दर्शन व यथाख्यात चारित्र या वीतरागत्व प्रगट हो रहा है। अन्तराय कर्म के क्षय से अनन्त वीर्य, अनंत दान, अनन्त लाभ, अनत भोग, अनंत उपभोग प्रगट हो रहे हैं अर्थात् नव केवल लब्धियों से विभूषित है। अनन्त लाभ शक्ति प्रगट होने से प्रभु के परमौदारिक शरीर को पुष्ट करनेवाली आहारक वर्गणाए स्वयं शरीर में मिलती रहती है। जिससे साधारण मानवों की तरह उनको ग्रास लेकर भोजन करने की जरुरत नही पड़ती।

६—जिन प्रभु के आठ प्रातिहार्य शोभायमान है १. अति मनोहर रत्नमय सिंहासन पर अन्तरिक्ष विराजमान है। २. करोडों चद्रमा की ज्योति को मन्द करनेवाला उनके शरीर की प्रभा का मडल उनके चारों तरफ प्रकाशमान हो रहा है। ३. चंद्रमा के समान तीन छत्र ऊपर शोभित होते हुए प्रभु तीन लोक के स्वामी है, ऐसा झलका रहे है। ४ हस के समान अति श्वेत चामरो को दोनो ओर देवगण ढोर रहे है। ५. देवो के द्वारा कल्पवृक्षो के मनोहर पुष्पों की वर्षा हो रही है। ६. परम रमणीक अशोक वृक्ष शोभायमान है। उनके नीचे प्रभु का सिहासन है। ७ दुंदभि बाजों की

परम मिष्ट वं गभीर ध्वनि हो रही है। (८) भगवान की दिव्य ध्वनि मेघ-गर्जना के समान हो रही है। भगवान निश्चय सम्यक दर्शन, निश्चय सम्यक ज्ञान व निश्चय सम्यक चारित्र रूप होते हुए परम अद्वैत आत्म स्वभाव मे तल्लीन उनको इन नामो मे स्मरण करें।

कामनाशक, अजन्मा, अव्यक्त, अतीन्द्रिय, जगत वद्य, योगिगम्य, महेश्वर, ज्योतिर्मय, अनाद्यनंत, सर्वरक्षक, योगीश्वर जगदगुरु, अनत, अच्युत, शात, तेजस्वी, सन्मति, सुगत, सिद्ध जगत श्रेष्ठ, पितामह, महावीर, मुनिश्रेष्ठ, पवित्र, परमाक्षर, सर्वज्ञ, परमदाता सर्वहितैषी, वर्धमान, निरामय, नित्य. अव्यय, परिपूर्ण, पुरातन, स्वयम्भू, हितोपदेशी, वीतराग, निरंजन, निर्मल, परम गम्भीर, परमेश्वर, परमतृप्त, परमामृत पानकर्ता, अव्याबाध, निष्कलंक, निजानदी निराकुल निष्पृह, देवाधिदेव, महाशकर, परब्रह्म, परमात्मा, पुरुषोत्तम परमबुद्ध, अमर, अशरण-शरण, गुण समुद्र, शिवनारी समोहि सकल तत्वज्ञानी, आत्मज्ञ, शुक्लध्यानी, परम सम्यकदृष्टि तीर्थंकर, अनुपम, अनत लोकावलोकन शक्तिधारी, परम पुरुषार्थी, कर्म पर्वत चूरक वज्र, विश्वज्ञाता, निरावरण, स्वरूपासक्त, सकलागम, उपदेश कर्ता, परम कृतकृत्य, परम संयमी, परम आप्त, स्नातक निर्ग्रन्थ, परम निर्जरारूढ, परम सवर पति, आश्रव निवारिक, शुद्ध जीव, गणधर नायक, मुनिगण श्रेष्ठ, तत्व वेत्ता, आत्मरमी, मुक्ति नारि भर्ता, परम वैरागी-परमानदी, परम तपस्वी, परम क्षमावान, परम सत्य धर्मारूढ, परम शुचि, परम त्यागी, अद्भुत ब्रह्मचारी, शुद्धोपयोगी, निरालम्ब, परम स्वतत्र. निर्वैर, निर्विकार, आत्मदर्शी, महाऋषि, इत्यादि। कहा तक कहे भगवान के अनत नाम हैं।

श्री जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा से ध्यान की सिद्धि

सत्यार्थदर्शन नामक ग्रथ में परमपूज्य १०८ आ० कुन्थु-सागर जी महाराज लिखते है—

निर्दोषमीश्वरं भक्त्या, स्मरन्तोऽपि ह्यकामतः ।
भवतु सुखिनः, सुज्ञा, स्वकर्त्तव्य परायणा ॥३५॥

अर्थ—इस प्रकार सर्व दूषणो से रहित ईश्वर की भक्ति और निष्काम भाव से याद करते हुए बुद्धिमान जन अपने-अपने कर्तव्य में तत्पर व सुखी बने ।

निर्द्वन्द्वोनिस्पृहः शांतो, भगवांस्तु निरंजन ।
कस्याध्यतः पदार्थस्य, कर्ता हर्ता भवेन्नसः ॥३६

अर्थ—वह भगवान निर्द्वंद, निस्पृह, शात और निरंजन हैं इसलिए किसी भी पदार्थ का बनाने और विगाडने वाला नहीं है, और वह ईश्वर किसीको सुख-दुख नही देता है ।

ईश्वर की मूर्ति स्थापना के हेतु

पूर्वोक्तचिह्नमुक्तस्य, भगवतः प्रमाणतः ।
निर्विकारा च तन्मूर्तिः बोधार्थ च प्रमोहिनाम् ॥३७
स्थाप्यते शांतिदा कौ तत्कृतीनां स्मृति हेतवे ।
तदाकृतिं च तद्धर्मस्थापनार्थं सदाहृदि ॥३८

तन्मूर्ति ध्यानतो भक्त्या वा मूर्ति सतवन्स्वयम्
भवितुमिच्छया भव्यैः क्रियते भक्ति वन्दना ॥३९
अयमेव सदुद्देश स्तन्मूर्ति स्थापनस्य वौ ॥४०

अर्थ—निरजन निर्विकार भगवान की निर्विकार मूर्ति स्थापना से राग, द्वेष, मोह मे दुखी ससारी जीवो को शांति और आराम मिलता है, उस परम कृपालु के कार्यों की याद आती है, सदा हृदय में उस प्रभु के आकार (छबि) और गुणो को मूर्ति के सहारे से धारण किया जाता है और उसके ध्यान से खुद को तादृश (उसके समान) बनाने की इच्छा से ही मूर्ति की भक्ति और वन्दना की जाती है यही मूर्ति स्थापना का समीचीन ध्येय है। इसके द्वारा उस मूर्तिमन देव के अनुपम और श्रेष्ठ गुणो का अपने जीवन मे उतार कर समार के समक्ष अनुकरणीय आदर्श उपस्थित करे।

भगवान के दर्शन करने का उद्देश्य

जन्म कल्याणक के समय या राज्याभिषेक का अभिषेक करते समय निम्न प्रकार भावना भानी चाहिए।

हे प्रभो ! पूर्वजन्म मे आपने विश्व सेवा करने की भावना को अपनाया था और जगत के हितार्थ समस्त वैभव को छोड कर अपना तन-मन धन सर्वस्व अर्पण किया था। इसलिए आज आप जगत्पूज्य पद को प्राप्त हो गये हे।

तीन भुवन के समस्त नागेन्द्र, इन्द्र, चक्रवर्ति आदि महान् पुरुष आपके चरण कमलो की सेवा मे संलग्न होकर मधुकर के भाव को प्राप्त हो रहे हैं। नम्रीभूत हो रहे हैं। सुरेन्द्रादिक आपकी भक्ति कर अपने को कृत कृत्य मानते है। भूचर खेचर समस्त माण्डलिक राजा गण आपकी सेवा कर

अपने-नर जन्म को सफल मानते है। और अलौकिक राजसी वैभव को प्राप्त करते है। यह सब आपके सातिशय पुण्य को प्रगट करता है। यहां तक कि आपके अवतरण होने के समय नरक समान अशुभ क्षेत्र में भी जहा निरतर मारण, काटण, छेदन के सिवाय और कुछ सुनने-देखने को भी नही मिलता है, क्षण भर के लिये शाति का साम्राज्य छा जाता है। आपके वचनातीत पुण्य से प्रभावित होकर सौधर्मेन्द्र और शची नामा इन्द्राणी आपको भक्ति और सेवा में इतने तन्मय हो जाते है कि वे एक भवतारी बनकर अनादि कालीन ससार का अत कर देते है। वे प्रत्येक कार्य को सिर्फ शब्द के द्वारा न कहकर ससार के सामने अपनी निर्मल और पवित्र कृति का आदर्श रखते है। प्रत्येक प्राणी के जीवन का यही प्राथमिक ध्येय होना चाहिये। अगर वह अपनी आत्मा को पतन से बचाकर उन्नत और विकास मय बनाना चाहता है तो निरतर इसका उद्योग करते रहने से यह कार्य अति सुलभ साध्य बन सकता है।

भगवान राज्यावस्था मे होवे तो निम्न भाति विचार करना चाहिए। हे प्रभो! पूर्व भाव में आपने हृदय को ज्ञान रूपी जल से सिंचन करके समस्त लोक में विश्व उद्धार के पवित्र पावन इस अहिंसामय जैनधर्म की भावना को प्रत्येक मानव की नस-नस में कूटकूट कर भरने का घोराति घोर प्रयत्न किया था और भू-मडल पर समस्त भू-पतियों को किस प्रकार इस अहिंसा सिद्धात का अनुयायी जानकर उसमें नियोजित करूं और प्राण रक्षा करना है लक्षण जिसका ऐसा समीचीन धर्म का प्रचार किस प्रकार करू और इस संसार से अन्याय और

अत्याचार का नाम निशान मिटा दू । ऐसी उत्तम और शुभ भावनाओं को अपनाने से पुण्यानुबंधी पुण्य को उत्पन्न कर आपने तीर्थंकर पद को प्राप्त किया है जिसका वर्णन इन्द्र का गुरु बृहस्पति भी करने मे असमर्थ है तो औरों की क्या बात। उस पुण्य से खिचे हुए बत्तीस हजार मुकुट बद्ध राजा आपके चरणो में लोटते है। आपकी आज्ञा की प्रतीक्षा करते है। आपके अनुग्रह की भीख मागते हैं। आपकी सेवा करने में अपने नर जन्म की पूर्णता समझते है और अनेकानेक अनुपम रत्न आपको समर्पित करते हैं। यह सब पूर्वोपार्जित पुण्य का फल है। ऐसा जानकर प्रत्येक आत्मार्थी को अपनी विचार धारा भी इस प्रकार रखना चाहिए। और कार्य रूप में परिणमन कर अपने जीवन मे उतारना चाहिये।

दीक्षा, ज्ञान और मोक्ष कल्याणक के सबंध में दर्शन करते समय मनन योग्य विषय

(१) हे प्रभो आप पाँव पर पांव धर के क्यो विराजमान है? पाव पर पाव धरने का आपका आशय यही होना चाहिये कि ससार मे अर्थात् तीन लोक और तीन भुवन में चलने फिरने योग्य सब स्थानो मे चल फिर चुके। लोकाकाश में एक भी प्रदेश ऐसा नही बचा कि जिस पर चलना फिरना नही हुआ हो। तात्पर्य यह है कि इस कार्य से पूर्ण निवृत्त हो चुके है। इसलिए पाव पर पाव धर विराजमान हो। व्यवहार मे भी यह प्रचलित रिवाज है कि मा, बहन, बेटी जब घर का सब काम कर चुकती है तो पाँव पर पाव धर कर बैठ जाया करती हैं।

(२) हे प्रभो, आप हाथ पर हाथ रखकर क्यों विराजमान है ? हस्त पर हस्त आरोपित करने का आपका अभिप्राय यही मालूम पडता है कि करने योग्य सर्व कार्यो से आप फुरसत पा चुके है। आपके लिए कोई भी कार्य करना बाकी न रहा। आप पूर्ण कृत कृत्य हो चुके है।

(३) हे प्रभो ! आप आंख बद कर नासाग्र दृष्टिकर क्यो विराजमान हो ? आख बद करने का आपका ध्येय यही होना चाहिये कि देखने योग्य सर्व पदार्थ आप देख चुके हैं। संसार मे कोई पदार्थ ऐसा न रहा, जो आपके ज्ञान चक्षु के गोचर नही हो रहा हो। सब आशाएं भी आपकी पूर्ण हो चुकी है। इसलिए आप सौम्य दृष्टि को धारण किये हुए विराजे है। देखा जाता है कि आशा रूपी पिशाचनी से ग्रसित प्राणियो के नेत्र अवश्य चलायमान होते रहते है परंतु इससे आप बिलकुल रहित है।

(४) हे प्रभो, आपने अस्त्र, शस्त्र, वस्त्र, आभूषण, अलकार आदि सर्व का परित्याग क्यो कर दिया है ?

आपका कोई शत्रु नही और आप अत्यन्त निडर अपने आत्म स्वरूप मे अचल स्थिर और अडिग हो, इसलिए आप को शस्त्रास्त्र की आवश्यकता नही रही।

वस्त्र-आभूषण, अलकार, स्नान, गध, लेपन आदि सब भोगोपभोग सामग्री है। ससार मे कोई भी पदार्थ ऐसा नहीं रहा जो आपके भोगने मे न आया हो। आप तो अपने शाश्वत आत्म जनित स्वराज्य को भोगने में मग्न है, इन क्षणिक भोगोपभोग पदार्थो में आपको क्या प्रयोजन है ? जब आप बाल्यावस्था या बाल लीला अवस्था में और राज्या

वस्था मे थे तब आप इतना अनुभव कर चुके हैं और तब भले ही ये आपके लिये कार्यकारी और उपयोगी सिद्ध हुए हो, परन्तु अब निरंजन निर्विकार कृत कृत्य अवस्था मे ये आपके लिये बिलकुल अनावश्यक है। ये सब मोही जीवो के लिये उपयोगी हो सकते हैं, जैसे ये आपके बाल्यावस्था और गृहस्थावस्था में थे। इसलिये इन सब को आपने छोड दिया है।

नोटः—भगवान की मूर्ति मे जन्मावस्था या राज्यावस्था का आरोपण करके जो पूजा, अभिषेक, स्तुति, स्तोत्र आदि करते है। उनको सातिशय पुण्यबध तो होता है परतु निरजन, निर्विकार, निराकार अवस्था का ध्येय रखना आवश्यक है और तद्‌वत् प्रतिमा वन्दनीक है, उसके बिना सब निष्प्रयोजन है। यह उपदेश प्राणीमात्र के लिए है। वह वीतराग अवस्था सन्यास अवस्था पच कल्याणक पूर्वक मत्र सस्कार की गई प्रतिमा ही परम पूज्य मानी गई है। इसी से इष्ट सिद्धि हो सकती है, तीन लोक में अकृत्रिम चैत्यालयो मे पाँच सौ धनुप और पद्‌मासन सहित सम्पूर्ण प्रतिबिम्ब, नौ अरब, पच्चीस करोड, त्रेपन लाख, सत्ताईस हजार, नौ सौ अडतालीस है। उनकी पूजा, अभिषेक इन्द्रादिक सदैव करते रहते है। मनुष्य की सज्जाति, सुसस्कारित होते हुये पूजा अभिषेक भक्ति कर सातिशय पुण्य प्राप्त करते है। अतएव ये ध्यान सबो को करना चाहिए।

भगवान जिनेन्द्रदेव ने नौ देवता परम पूज्य बतलाये है। अरहत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु इनको प्रतिमाए, व इन्ही के चैत्यालय, जिनेन्द्र वाणी, जैनधर्म इनकी भक्ति पूजा के द्वारा मोक्ष मार्ग चलता है—बहुत से भाई कहते है कि

पच परमेष्ठियो का तो अभिपेक होता नहीं फ़िर ये अभिषेक क्यों किया जाय, उन्हे जानना चाहिये, अभिषेक प्रतिमाओं का ही होता है। देव लोग नित्य ही अभिषेक पूजन करते रहते है। हम लोग भी अभिपेक पूजन कर महान् पुण्य उपार्जन करते हैं। प्रत्येक सदगृहस्थ का परम कर्त्तव्य है नित्य ही देव पूजा, गुरु सेवा, स्वाध्याय, सयम, तप और दान करता रहे, जिससे अपने सद्गृहस्थपने का लाभ मिलता रहे।

आत्म-ध्यान से मुक्ति की सिद्धि

जो सज्जन परमात्मा का ध्यान करते है वे इस लोक में स्वर्गादिक सुखों को भोगकर क्रमशः कर्मो का ध्वस करते हैं। एव मुक्तिश्री को पाते है।

दूर नही है, वह परमात्मा सब के शरीर रूपी मकान में विद्यमान है। उसे पाकर मुक्ति प्राप्त करने के मार्ग को नहीं जानकर लोग ससार में भ्रमण कर रहे है।

जिस देह को उसने धारण किया है उस देह में वह सर्वांग में भरा हुआ है। वह सुज्ञान, सुदर्शन, सुख व शक्ति स्वरूप से युक्त है। स्वतः निराकार होने पर भी साकार शरीर में प्रविष्ट है। उसका क्या वर्णन करे। वह आत्मा ब्राह्मण नहीं है, क्षत्रीय नही है, वैश्य नही है, शूद्र भी नही है। ब्राह्मणादिक सज्ञा से आत्मा को इस शरीर को अपेक्षा से सकेत करते हैं। वह आत्मा योगी नहो है। ग्रहस्थ भो नही है। योगी, जोगी, श्रमण, सन्यासी इत्यादि सभी सज्ञाये कर्मो की अपेक्षा से है।

वह आत्मा स्त्री नहीं है। स्त्री की अपेक्षा करने वाला भी नही है, पुरुष व नपुंसक भी नहीं है। मीमासक, सांख्य, नैयायिक, आर्हत इत्यादि स्वरूप में भी वह नही है। यह सब मायाकार के खेल हैं। वह शुद्ध है, बुद्ध है, नित्य है, शुद्ध भाव से सहज गोचर है, सिद्ध है, जिन है, शकर है, निरजन सिद्ध है, अन्य कोई नहीं है।

वह ज्योति स्वरूप है, ज्ञान स्वरूप है, वीतराग है, निरामय है, जन्म जरा मृत्यु से रहित है, कर्म सघात में रहने पर भी निर्मल है। यह आत्मा वचन व मन के गोचर नहीं है। शरीर से मिश्रित न होकर इस शरीर में वह रहता है। स्वसवेदनानुभव से यह गम्य है। उसकी महिमा विचित्र है। विवेकीजन स्वत के ज्ञान से स्वतः को जो जानता है उसे स्वसवेदन कहते है। जब यह मोक्ष के लिये समीप पहुच जाता है तब अपने आप वह स्वसवेदन ज्ञान प्राप्त होता है। इस परमात्मा को स्वय अनुभव कर सकते है। परन्तु दूसरो को बोलकर बता नही सकते। सुननेवालो को तो सब बाते आश्चर्यजनक है। परन्तु ध्यान का अनुभाव करनेवालो को बिल्कुल सत्य मालूम होती है।

आत्मा में विकार उत्पन्न करने वाले इन्द्रियो को बाधकर, श्वास के वेग को मद कर, मन को दाब कर, चारो तरफ देखने वाली आखो को मीचकर, सुज्ञान नेत्र से देखने पर यह आत्मा प्रत्यक्ष होता है। वह जिस समय दिखता है, उस समय मालूम होता है कि शरीर रूपी घडे मे दूध भरा हुआ है, व शरीर रूपी घर मे भरे हुए शीतल प्रकाश के समान मालूम होता है। दूध व प्रकाश तो इन्द्रिय गम्य है।

परन्तु यह आत्मा इन्द्रिय गम्य नहीं है।

लोक में जो अप्रतिम है ऐसे चिद्रूप को किस पदार्थ के साथ रखकर कैसे बराबरी कर बताया जावे, वह अनुपम है। यह आत्मा एक ही दिन में नही दिखता है क्रम से दिखता है। एक दफे अनेक चन्द्रमा व सूर्यों के प्रकाश के समान उज्वल होकर दिखता है फिर एक दफे (चचलता आने पर) वह प्रकाश मन्द होता है स्थिरता आने पर फिर उज्जवल होता है। एक दफे सर्वांग में वह दिखता है। फिर हृदय, मुख व गर्भ में प्रकाशित होता है। इस प्रकार एक दफे प्रकाश दूसरी दफे मन्द प्रकाश इत्यादि रूप से दिखता है। क्रम-क्रम से वह साध्य होता है। ध्यान के समय जो प्रकाश दिखता है वह सुज्ञान है, दर्शन है, उस समय कर्म झरने लगते हैं तब आत्म सुख की वृद्धि होती है।

नासिका, जिव्हा, अल्प इन्द्रियो का क्या सुख है? उस समय उसके सर्वांग से आनन्द उमड पड़ता है। शरीर भर वह सुख का अनुभव करता है।

वह वैभव, वह आनंद इन्द्र, नागेन्द्र, नरेन्द्र, व अहमिन्द्र को भी नही होता है। उस समय बोलचाल नही है। श्वांसोच्छवास नही है। शरीर नहीं है, कोई कल्मष नहीं है। इधर उधर कम्प नहीं है। आत्मा पुरुष रूप उज्जवल प्रकाशमय दिखता है। शरीर के थोड़े हिलने पर आत्मा भी थोड़ा हिल जाता है। जिस प्रकार जहाज के हिलने पर उसमें बैठे हुए मनुष्य भी थोड़ा सा हिल जाते हैं। जिस समय आत्मा समस्त क्षोभ रहित होता है उसका वर्णन कौन कर सकता है।

प्रकाश की वह पुतली है। प्रभा की वह मूर्ति है। चित्र-

कला की वह प्रतिमा है। क्रांति का वह पुरुष है, चमक का वह बिम्ब है। प्रकाश का वह चित्र है, लबालब पूर्ण ज्ञानामृत का समुद्र है।

जिस प्रकार स्वच्छ दर्पण में वाह्य पदार्थ प्रतिबिम्ब होते हैं,उसी प्रकार अनेक प्रकार के ससार सबघी मोह क्षोभ से रहित उस निर्मल आत्मा में आत्मा जब ठहर जाता है तब उसे अखिल प्रपंच ही देखने मे आते हैं।वे उस समय उसे स्वयं आश्चर्य होता है कि यह आत्मा इस अल्प देह मे आया कैसे? इसमें तो समस्त जगत में पसरने योग्य प्रकाश है। फिर इसे शरीर रूपी जरा से स्थान में किसने भरा ? सर्व आकाश प्रदेश में व्याप्त होने पर निर्मलता व ज्ञान इसमें है। फिर इस थोडे से स्थान में वह क्यों रुका ? आश्चर्य है। उस समय झरझर होकर कर्म समूह झरने लगते है। और चित्कला घग-घग होकर प्रज्वलित होती है। एव अगणित सुख झूम-झूम कर बढ़ता जाता है। यह ध्यानी व्यक्ति ही जान सकता है दूसरों को दिखता नही। गर्मी की कडी धूप के बढने पर जिस प्रकार बर्फ के पहाड़ पिघल जाते है,उसी प्रकार आत्म सूर्य प्रकट होने पर कार्माण व तेजस शरीर पिघल जाता है। उस समय आत्मा को देखने वाला भी वही है। देखे जाने वाला भी वही है। इसे सुनकर भारी आश्चर्य होगा कि ध्यान के फल से आगे प्राप्त होनेवाली मुक्ति भी वही है। इस प्रकार वह स्व स्वरूप है। तीन शरीर के अन्दर रहने पर उस आत्मा को ससारी आत्मा कहते हैं। ध्यान के द्वारा उन तीन शरीरो का जब नाश किया जाता है। तब वह अपने आप लोकाग्र स्थान में

जा विराजमान होता है। उसे ही मुक्ति कहते हैं।

यह आत्मा स्वयं अपने आपको देखने लग जावे तो शरीर का नाश होता है। दूसरे कोई हजार उपायों से नाश करने के लिये प्रयत्न करे तो भी वह अशक्य है। अपने से भिन्न कर्मों को नाश कर स्वयं यह आत्मा मुक्ति साम्राज्य को पाता है। उसे वहां ले जाने वाले वहां रोकन वाले और कौन है? कोई नहीं है।

देखो लोक में मुक्ति प्रदान करने वाले गुरू और देव कहलाते है। गुरु और देव तो केवल मुक्ति के मार्ग को बतला सकते हैं। कर्म नाश तो स्वयं ही इस आत्मा को करना पड़ता है। गारुड़ी विद्या का गुरु क्या रण भूमि में आ सकता है? कभी नही। शत्रुओं को जीतने के लिये तो स्वयं ही को प्रयत्न करना पड़ता है। ज्ञान की अपूर्णता जब तक रहती है तव तक वह अरहंत बाहर रहता है। जब वह आत्मा अच्छी तरह जानने लगता है तब अरहंत का दर्शन अपने शरीर के अन्दर होने लगता है। इसमें छिपाने की क्या बात है? आत्मा को ही अपना देव समझ कर जो वन्दना कर श्रद्धान करता है, वही सम्यकदृष्टी है।

आज तक अनन्त जिन सिद्ध अपनी आत्म भावना से कर्मो को नाशकर मोक्ष सिधार गये हैं। उन्होंने अपनी कृति से जगत को ही यह शिक्षा दी है कि सब जीव उनके समान ही स्वतः कर्म नाश कर उनके पीछे मुक्ति पावें। इस बात को भव्य गण स्वीकार करते हैं। अभव्य इसे गप्प बाजी समझ कर विवाद करते हैं। आत्मानुभव विवेकियों को ही हो सकता है? अविवेकियों को वह क्यों कर हो सकता है?

तीन शरीरों के अन्दर स्थित आत्मा ससारी है। जब तीन देहों का अन्त हो जाता है तब यह आत्मा मुक्त हो जाता है। इसलिये शरीर भिन्न है, मैं भिन्न हूं। इस प्रकार के ध्यान का अभ्यास करने पर शरीर नाश होकर मुक्ति की प्राप्ति होती है। तिलो के भीतर तेल है, दूध में घी है, लकडी मे आग है, उसे घर्षण करने पर उसी लकडी को जला देती है, इसी प्रकार आत्मा ध्यानाग्नि के द्वारा आत्मा का निरीक्षण करे तो तीन शरीर जल जाते हैं कर्म और तीन देह इन दोनों का एक अर्थ है, धर्म का अर्थ निर्मल आत्मा है। धर्म का ग्रहण करो, कर्म का परित्याग करो धर्म के ग्रहण करने पर कर्म अपने आप दूर हो जाते हैं, एव मोक्ष पद की प्राप्ति होती है, इस प्रकार भगवान ने बनाया, वही ज्ञान सार है। वही चारित्र सार है। वही सम्यक्त्व सार है, वही उत्तम तप सार है, ध्यान से बढ़कर कोई चीज नही।

माला प्रतिष्ठा मन्त्र

ॐ ह्रीं रत्नै सुवर्णसूत्रै बीजेर्या रचिता जपमालिका सर्वजपेषु सर्वाणि वाञ्छितानि प्रयच्छतु।

यानी—रत्न सुवर्ण, सूनादि की नवीन माला बनाने के पश्चात् उसे भगवान का अभिषेक करते समय पीठ में रखना चाहिए। तदनतर एक थालो में केशर से स्वास्तिक बनाकर माला उसके ऊपर रखना चाहिये। ऊपर का प्रतिष्ठा-मत्र सात बार शुद्ध उच्चारण करके दोनो हाथों से सुगन्धित पुष्प या लवग अथवा केशर मिश्रित चावल माला पर प्रक्षेपण करें इसके बाद वह माला जप करने योग्य हो जाती है। माला पृथ्वी पर न रखकर उच्च स्थान पर रखनी चाहिए।

णमोकार मंत्र राज की महिमा

सुनो णमोकार की महिमा मेरे भाई।
इसके जपने से सब दुख दूर नशाई ।। टेक
यह प्राकृत रूप अनादि मन्त्र तुम जानो,
इसमें अक्षर पैंतीस इन्हें सरधानो।
डाकिन शाकिन भी भय न कर सके कोई,
इसकी महिमा को कह सकता क्या कोई।
इक चपापुर में मूर्ख ग्वालिया जानो,
तिन सुमरा मन में महा मन्त्र परधानो।
वह सेठ सुदर्शन हुआ लक्ष्मीपति भारी,
अरु उसही भव में हुआ मुक्ति अधिकारी।
जब बिंध्यश्री को सर्प डसा उपवन में,
तब सुलोचना ने दीना मन्त्र सु मन में।
वह मन्त्र शक्ति से गंगा देवी होई,
उनकी महिमा का पार न पावे कोई।
हा नाग नागिनी जले जा रहे क्षण में,
तब देख पार्श्व प्रभु दया विचारी मनमे।
हुए पद्मावती धरणेन्द्र एक ही छिन में।
इक वृषभ मृतक सम पड़ा अहो मगमें था,
अरु अन्तिम सासें हाय हाय गिनता था।
तब पद्म सेठ ने दीना मन्त्र महाना,
हुआ महावीर सुग्रीव राव परधाना।
यह मन्त्र दिया जीवन्धर ने कुत्ते को,
हा वह भी तत्क्षण में ही था मरने को।

तब किया ध्यान वह इसका मनके अन्दर,
हो गया यज्ञों का राजा वह अति सुन्दर।
इसकी अचित्य महिमा से इक तस्कर ने,
आकाश गामिनी विद्या साधी क्षण में।
वह आणं ताण न जाणं कहता था,
पर सेठ बचन परमाण ही कहता था।
वह फसी हस्तनी जब भीषण दल दल में,
तब महा मंत्र का पाठ सुनाया खग ने।
वह भव लेकर कुछ समय बाद ही भाई,
सीता बन प्रकटी परम सती जग मांही।
जब रुद्रदत इक पर्वत के ऊपर जा,
मारा था इक बकरे को पापी ने हा।
तब चारुदत्त ने दीना मन्त्र महाना,
वह गया स्वर्ग में तत्क्षण जग ने जाना।
सो चलते उठते सोते जाते आते,
अरु हँसते रोते मरते पीते खाते,
यह मन्त्र जो पढ़े पढ़ावे चीते,
कहे 'शाह' वह निस्संशय लोकत्रय जीते।

णमोकार मन्त्र माहत्म्य

उपदेष्टा—मुनि श्री जयसागरजी महाराज

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं,
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ॥

प्रातः काल मत्र जपो णमोकार भाई,
अक्षर पैंतीस शुद्ध हृदय में धराई।
नर भव तेरो सफल होत पातक टर जाई
विघन जासों दूर होत संकट में सहाई।
कल्पवृक्ष कामधेनु चिन्तामणि पाई,
ऋद्धि सिद्धि पारस तेरो प्रगटाई।
मत्र जंत्र तंत्र सब जाहि से बनाई,
सम्पति भंडार भरे अक्षय निधि पाई।
तीन लोक मांहि सारे वेदन में गाई,
जग में प्रसिद्ध धन्य मंगलीक भाई।

अर्थ—णमोकार मन्त्र यह नमस्कार मन्त्र है इसमें समस्त मल दुष्कर्मों को भस्म करने की शक्ति है। बात यह है कि णमोकार मन्त्र हृदय में धारण करने से आत्मा में अन्तरंग बहिरंग दोनों प्रकार की अद्भुत शक्तियां उत्पन्न होती हैं, जिससे कर्म कलंक भस्म हो जाता है। यही कारण है कि तीर्थंकर भगवान भी विरक्त होते हुये इसी मन्त्र का उच्चारण करते हैं तथा वैराग्य भाव की वृद्धि के लिये आये हुए लौकान्तिक देव भी इसी महामन्त्र का उच्चारण करते है, यह

अनादि मन्त्र है, प्रत्येक तीर्थंकर के कल्पकाल में इसका अस्तित्व रहता है। काल दोष से मुक्त हो जाने पर अन्य लोगो को तीर्थंकर की दिव्यध्वनि द्वारा यह अवगत हो जाता है है कि णमोकारमन्त्र समस्त द्वादशाग जिनवाणी का सार है उसमें समस्त द्वादशांग की अक्षर सख्या निहित है। जैन दर्शन के तत्व पदार्थ द्रव्य गुण पर्याय नय निक्षेप आस्त्रव बध आदि इस मन्त्र में विद्यमान हैं। समस्त मन्त्र शास्त्रो की उत्पत्ति इसी महामन्त्र से हुई है।

अनादिमूलमंत्रोयं सर्व विघ्न विनाशतः।
मगलेषु च सर्वेषु प्रथमं मंगलं मतः ॥

द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा से यह मगल सूत्र अनादि हैं और पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा से यह सादि है। इस प्रकार यह नित्यानित्य रूप भी है। आगम में इस मन्त्रकी बडी भारी महिमा बतलाई गई है यह सभी प्रकारकी अभिलाषाओ को पूर्ण करनेवाला है। आत्म शोघन का हेतु है। इसका नित्य जाप करनेवाले के रोग, शोक आदि सभी बाधाएं दूर हो जाती हैं।

पवित्र अपवित्र रोगी दुखी सुखी आदि किसी भी अवस्था में इस मंत्र का जप करने से समस्त पाप भस्म हो जाते हैं तथा वाह्य और आभ्यतर पवित्र हो जाता है। यह समस्त विघ्नो को दूर करने वाला तथा समस्त मंगलों में प्रथम मगल है। किसी भी कार्य के आदि में इसका स्मरण करने से वह कार्य निर्विघ्नतया पूर्ण हो जाता है।

ऐसो पंच णमोयारो सव्व पावप्पणासणो ।
मंगलाणं च्च सव्वेंसि पढमं होइ मंगलं ।।

मंत्रं संसारसारं त्रिजगदनुपमं सर्वपापारिमंत्रं ।
ससारोच्छेद मंत्रं विषं विषहर कर्म निर्मूलमन्त्रं ।।
मंत्रं सिद्धिप्रधानं शिवसुखजननं केवलज्ञानमंत्रं ।
मंत्रं श्रीजैनमंत्र जप जप जपितं जन्मनिर्वाणमंत्रं ।। १
आकृष्टिं सुरसम्पदां विदधते मुक्तिश्रियो वश्यतां ।
उच्चाटं विपदां चतुर्गतिभुवां विद्वेषमात्मैनसाम् ।।
स्तम्भं दुर्गमन प्रति प्रयततो मोहस्य सम्मोहनं ।
पायात्पंचनमस्क्रियाक्षरमयी साराधना देवता ।। २
अपवित्रः पवित्रो वा सुस्थितो दुःस्थितोऽपि वा ।
ध्यायेत्पंचनमस्कारं सर्वं पापैः प्रमुच्यते ।। ३
अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्था गतोऽपि वा ।
य. स्मरेत्परमात्मानं स वाह्याभ्यंतरे शुचि : ।। ४
अपराजितमन्त्रोऽयं सर्वविघ्नविनाशनः ।
मगलेषु च सर्वेषु प्रथमं मगलं मतः ।। ५
विघ्नौघा प्रलय यान्ति शाकिनी भूत पन्नगाः ।
विषो निर्विषतां याति स्तूयमाने जिनश्वरे ।। ६
अन्यथा शरण नास्ति त्वमेव शरण मम ।
तस्मात् कारुण्य भावेन रक्ष रक्ष जिनेश्वरः ।। ७

यह महामन्त्र ससार का सार है, जन्म-मरण रूप संसार से छूटने का सरल अवलंबन सार तत्व है, तीनों लोकों में अनुपम है इस मन्त्र के समान चमत्कारी और प्रभावशाली अन्य कोई मन्त्र नहीं है। अतः यह तीनों लोकों में अद्भुत

है, समस्त दुष्कर्मों का अरि है। इस मंत्र का जाप करने से किसी भी प्रकार का पाप नष्ट हुए बिना नही रहता है। जिस प्रकार अग्नि का एक कण घास-फूस के बडे-बडे ढेरो को नष्ट कर देता है उसी प्रकार यह णमोकार मत्र समस्त कर्मों को नष्ट करने वाला होने के कारण पाप हारी है। यह मन्त्र ससार का उच्छेदक है। व्यक्ति से भाव संसार राग द्वेषादि और द्रव्य ससार ज्ञानावरणादि कर्मो का विनाशक है तीक्ष्ण विषों का नाश करने वाला है। अर्थात इस मन्त्र के प्रभाव से सभी प्रकार की विष बाधाएँ नष्ट हो जाती हैं। यह सब कर्मों का निर्मूल विनाश करने वाला है। इस मन्त्र का भाव सहित उच्चारण करने से कर्मों की निर्जरा होती है तथा इसका स्मरण करने से कर्मों का विनाश होता है। यह मंत्र सभी प्रकार की सिद्धियों को देने वाला है। भाव सहित और विधि सहित इस मन्त्र का अनुष्ठान करने से सभी तरह के लौकिक और अलौकिक सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं।

साधक जिस वस्तु की कामना करता है वह उसे प्राप्त हो जाती है। दुर्लभ और असभव कार्य भी इस महामन्त्र को आराधना से पूर्ण हो जाते हैं। और मन्त्र मोक्ष सुखको उत्पन्न करने वाला है। यह केवलाज्ञान मन्त्र कहलाता है। इसके जाप से केवलज्ञान की प्राप्ति होतो है। तथा यही मन्त्र निर्वाण सुख का देने वाला भी है।

यह णमोकार मन्त्र देवों की विभूति और सम्पति को आकृष्ट कर देने वाला है। मुक्ति रूपी लक्ष्मी को वश करने वाला है। चतुर्गति मे होने वाले सभी तरह के कष्ट और

विपत्तियों को दूर करने वाला है। आत्मा के समस्त पापों को भस्म करने वाला है। दुर्गति को रोकने वाला है, सम्पत्ति को जगाने वाला है, आत्म श्रद्धा को जाग्रत करने वाला है मोह का स्तंभन करने वाला है, विष या और सभी प्रकार से प्राणियों की रक्षा करने वाला है।

किसी भी स्थान पर, सोते समय, जागते, चलते, फिरते, किसी भी अवस्था में इस णमोकार मंत्र का स्मरण करने से आत्मा सर्व पापों से मुक्त हो जाता है। शरीर और मन पवित्र हो जाते हैं। यह सप्त धातु मय शरीर सदा अपवित्र रहता है, इसकी पवित्रता णमोकार मंत्र के स्मरण से उत्पन्न निर्मल आत्म परिणित द्वारा होती है। अतः निसन्देह यह आत्मा को पवित्र करने वाला है। इसका स्मरण किसी भी अवस्था में किया जा सकता है। यह णमोकार मंत्र अपराजित है। अन्य किसी मंत्र द्वारा इसकी शक्ति प्रतिहत है—अवरुद्ध नहीं की जा सकती है इसमें अद्‌भुत सामर्थ्य निहित हैं। समस्त विघ्नोंको क्षणभर में नष्ट करने में समर्थ हैं। इसके द्वारा भूत, पिशाच्च, शाकिनी, डाकिनी, सर्प, सिह, अग्नि आदि के विघ्नों को क्षणभर में ही दूर किया जा सकता है। जिस प्रकार हलाहल विष तत्काल अपना फल देता है और उसका फल अव्यर्थ होता है उसी प्रकार णमोकारमंत्र भी तत्काल शुभ पुण्य का आस्रव करता है तथा अशुभोदय के प्रभाव को क्षीण करता है। मत्र सम्पति प्राप्त करने का एक प्रधान साधक है तथा पुण्य की वृद्धि में सहायक होता है। मनुष्य जीवन भर पापास्रव करने पर भी अन्तिम समय में इस महामंत्र के स्मरण के प्रभाव से स्वर्गादि सुखों को प्राप्त कर लेता है, इसलिये महा

मंत्र का महत्व बतलाते हुए कहा गया है—

कृत्वा पाप सहस्त्राणि हत्वा जन्तु शतानि च ।
अमुं मंत्रं समाराध्य तिर्यंचोपि दिवंगताः ॥ ज्ञानार्णव

अर्थात् तिर्यंच (पशु पक्षी) जो मासाहारी क्रूर हैं जैसे सर्प सिहादि जीवन मे सहस्रो प्रकार के पाप करते हैं वे अनेक प्राणियो की हिंसा करते है, मासाहारी होते हैं तथा इनमे क्रोध मान माया और लोभ कषायो की तीव्रता होती है फिर भी अतिम समय मे किसी दयालु द्वारा णमोकार मत्र का श्रवण करने मात्र से तिर्यंच पर्याय का त्यागकर स्वर्ग मे देव गति को प्राप्त होते हैं। इस मत्र के चिन्तन, स्मरण और मनन करने से भूत प्रेत जन्य सभी कष्ट दूर हो जाते हैं, राग द्वेष अशाति तथा राज भय, चोर भय, कष्ट भय, रोग भय आदि भी इस मत्र के प्रभाव से दूर हो जाते हैं ।

णमोकार मत्र का जाप करने के लिये सर्व प्रथम आठ प्रकार की शुद्धि की अति आवश्यकता है ।

द्रव्य शुद्धि—पंचेन्द्रिय तथा मन को वश कर कषाय और परिग्रह का शक्ति के अनुसार त्यागकर कोमल और दयालु चित्त हो जाप करना चाहिये। मन शुद्धि पात्र की अतरग शुद्धि है। जाप करने वाले को यथाशक्ति अपने विकारों को हटाकर ही जाप करना चाहिए। अंतरग से काम क्रोध मान माया आदि विकारो को हटाने की आवश्यकता है।

क्षेत्र शुद्धि—निराकुल स्थान जहां हल्ला गुल्ला न हो, जहा डास मच्छर आदि बाधक जन्तु न हों, चित्त में क्षोभ उत्पन्न करने वाले उपद्रव एवं शीत उष्ण की बाधा न हो।

ऐसा एकांत निर्जन स्थान जाप करने के लिए उत्तम है। घर के किसी एकांत प्रदेश में, जहां अन्य किसी प्रकार की बाधा न हो, पूर्ण शांति रह सके, ऐसी जगह पर जाप किया जा सकता है।

समय शुद्धि—प्रातः, मध्यान्ह और संध्या समय कम-से-कम पूर्ण लगन से इस महामत्र की जाप करना चाहिये। जाप करते समय निश्चिन्त रहना एवम् निराकुल होना परमावश्यक है।

आसन शुद्धि—काष्ट शिला भूमि चटाइयां शीतलपट्टी पर पूर्व दिशा या उत्तर दिशा की ओर मुंह करके पद्मासन, खड्गासन या अर्ध पद्मासन होकर क्षेत्र तथा काल का प्रमाण करके मौन पूर्वक इस मत्र का जाप करना चाहिये।

विनय शुद्धि—जिस आसन पर बैठकर जाप करना है, उस आसन को सावधानो पूर्वक ईर्यापथ शुद्धि के साथ साफ करना चाहिये तथा जाप करने के लिए नम्रता पूर्वक भीतर का अनुराग भी रहना आवश्यक है। जब तक जाप करने के लिए भीतर का उत्साह नहीं होगा तब तक सच्चे मन से जाप नही किया जा सकता है।

मनः शुद्धि—विचारों की गंदगी का त्याग कर, मन को एकाग्र करना, चचल मन इधर उधर भटकने न पावे, इसकी चेष्टा करना, मन को पूर्णतया पवित्र बनाने का प्रयास करना ही इस शुद्धि में अभिप्रेत है।

वचन शुद्धि—धीरे धीरे साम्यभाव पूर्वक इस मंत्र का शुद्ध जाप करना अर्थात् उच्चारण करने में अशुद्धि न होने पाये तथा उच्चारण मन ही मन में होना चाहिये।

काय शुद्धि—शौचादि शकाओ से यत्नाचार पूर्वक शरीर शुद्ध करके हलन चलन क्रिया से रहित होकर जाप करना चाहिये, जाप के समय शारीरिक शुद्धि का भी ध्यान रखना चाहिये। इस मंत्र का जाप यदि खड़े होकर करना हो तो तीन तीन श्वासोच्छास मे एक बार पढ़ना चाहिए। एक सौ आठ वार के जाप मे कुल तीन सौ चौबीस श्वासोच्छवास (सास) लेना चाहिये। जाप करने की तीन विधियां हैं—कमल जाप हस्तांगुली जाप और माला जाप।

कमल जाप की विधि :—अपने हृदय में आठ पांखुडी मे श्वेत कमल का विचार करे। उसकी प्रत्येक पाखुडी पर पीत वर्ण १२-१२ विन्दुओं की कल्पना करें तथा मध्य के गोल वृत कर्णिका में वारह वृतविन्दुओ का चिंतन करे। इन १०८ बिन्दुओ में प्रत्येक विन्दु पर १-१ मत्र का जाप करता हुआ १०८ वार इस मत्र का जाप करे। मत्र जाप का हेतु —

प्रति दिन व्यक्ति १०८ प्रकार के पाप करता है अतः १०८ वार इस मंत्र का जाप करने से पापों का नाश होता है। समरम्भ समारम्भ आरम्भ इन तीनों को मन वचन काय से गुणा किया तो (३×३=९) नौ हुआ। ९स को कृत कारित अनुमोदना और चार कपायों से गुणा किया तो (९×३×४ =१०८) एकसौ आठ हुआ। वीच वाले गोल वृत्त में १२ बिंदु हैं और आठ दलों में से प्रत्येक पर १२,-१२ बिंदु हैं इन १२×८=९६+१२=१०८ विंदुओं पर १०८ वार यह मंत्र पढ़ा जाता है।

हस्तांगुलि जाप—अपने हाथ की अंगुलियों पर जाप करने की प्रक्रिया यह है कि मध्यमा (बीच की अंगुली) के बीच के पोरुये पर इस मंत्र को पढ़ें, फिर उसी अंगुली के ऊपरी पोरुये पर फिर तर्जनी—अंगूठे के पास वाली अंगुली के ऊपरी पोरुये पर मत्र जाप करे, फिर उसी अंगुली के बीच के पोरुये पर मत्र पढ़े, फिर नीचे के पोरुये पर जाप करे। अनंतर बीच की अंगुली के निचले पोरुये पर मत्र पढ़ें फिर अनामिका सबसे छोटी अंगुली के साथ वाली अगुली के निचले पोरुये पर फिर बीच तथा ऊपर के पोरुयों पर क्रम से जाप करें। इसी प्रकार पुनः बीच की अंगुली के बीच के पोरुये से जाप प्रारम्भ करें।

इस प्रकार नौ-नौ बार मंत्र जपता रहे। इस तरह १२ बार जपने से १०८ बार में पूरा एक जाप होता है।

माला जाप—१०८ दाने की माला द्वारा जाप करे।

इन तीनों जाप की विधियों में उत्तम कमल जाप विधि है इसमें उपयोग अधिक स्थिर रहता है तथा कर्म बन्ध को क्षीण करने के लिए अधिक सहायक है। सरल विधि माला जाप है। इसमें किसी तरह का झझंट नहीं है—सीधे माला लेकर जाप करे। इसके पश्चात भगवान का दर्शन करना चाहिए।

ततः समुत्थाय जिनेद्रबिंबं पश्येत्परं मंगलदानदक्षम्।
पापप्रणाशं परपुण्यहेतु सुरासुरैः सेवितं पादपद्मम्॥

अर्थात् प्रातः काल की जाप के पश्चात चैत्यालय में जाकर सब तरह के मंगल करने वाले, पापों का क्षय करने वाले सातिशय पुण्य के कारण एवं सुरासुरों द्वारा वन्दनीय श्री जिनेन्द्र भगवान का दर्शन करना चाहिए।

ज्ञान-गुणमंजरी-शतक

(ले० मुनि श्री १०८ श्री जयसागर जी)

यह भोला जीव अपनी आत्म शक्ति को सभाले बिना संसार में जन्म-मरण के दुख उठा रहा है। उन दुखो से छुटकारा पाने के लिये श्री गुरु हृदय मे दया धारण कर आत्म-शक्ति के उपाय बता रहे हैं। इन उपायो पर चलने से आत्मा में शक्ति प्रगट होगी।

१. आत्म कल्याण के लिए शुद्ध भोजन पूर्वक ब्रह्मचर्य से रहकर स्वाध्याय करना अति आवश्यक है।

२ आत्म विश्वास के बिना मोक्ष-मार्ग की प्राप्ति दुर्लभ है।

३. पर पदार्थों को पर जानने के साथ उससे राग-द्वेष और मोह मत मरो।

४. जो उदय में आया कर्म फल है, उसे ऋण के सदृश जान कर हर्ष-विषाद मत करो।

५ किसी से उपकार की इच्छा मत करो। अपनी आत्मा के भरोसे पर रहो।

६. जो कष्ट काल में धीरता से विचलित नही होता सुख और शान्ति का अनुभव करता है।

७. ससार दुखःमय है। इसमें वही जीव सुखी हो सकता है, जो इसकी मूर्छा को छोड़ता है।

८. साधु-समागम सुख-शान्ति का श्रेष्ठ निमित्त कारण है।

९. गृहवास सुख-शान्ति का बाधक इसलिए है कि उसमें रहने से मूर्छा बढ़ जाती है।

१०. जो कोई तुम्हारा अपकार करे उसको तथा तुम किसी का उपकार करो उसको भूल जाओ।

११. अपने गुणों अथव अवगुणों का यथार्थ चितवंन करो।

१२ राग-द्वेषादि करना निश्चय हिंसा है, और यही संसार की जननी है,

१३ इच्छाओं का अभाव ही शान्ति का मार्ग है।

१४. पूर्ण निराकुलता ही परमात्म पद व मोक्ष है।

१५. यह मनुष्य जन्म महादुर्लभ है। इसे पाकर आलस्य प्रमाद और मोह में दिन नही गँवाना चाहिए।

१६. धर्म की सब सामग्री पाकर आत्मा का हित साधन करना चाहिए।

१७. जो पुण्यरूपी पूँजी तो साथ में लाया नहीं और सुखी होने के लिए रात दिन परिश्रम करता है, अधिक तृष्णा बढ़ाता है वह अज्ञानी है।

१८. पूर्व पुण्य के उदय से ज्ञानावरण के क्षयोपशम से ज्ञान की प्राप्ति हुई, लोभ शत्रु को दुखदायी समझा, फिर भी संतोष न रखे तो वह अज्ञानी है।

१९. किसी सद्गुरु की कृपा से ज्ञान रत्न पाया, उससे अधीरज को बुरा समझा, अतः संसार सम्बन्धी कष्ट आ जाने पर धीरज छोड़ देवे तो वह अज्ञानी है।

२०. ज्ञान की प्राप्ति होने से संसार को असार जान,

फिर संसार में फँसाने वाले झूठ को बोले, माया कपट न करे, क्लेश की वृद्धि न करे वह ज्ञानी है ।

२१. आत्मा की शक्ति के अनुसार सौगन्ध व्रत (पच्चखाण) करना चाहिये, और सौगन्ध (ली हुई प्रतिज्ञा) को भंग करे तो धिक्कारने योग्य है, अज्ञानी है ।

२२. पूर्व पाप के उदय से दुख आजावे, उस समय आत्मज्ञान के वल से शान्ति धारण करना चाहिये, अगर न करे तो अज्ञानी है ।

२३. साता वेदनीय कर्म के उदय से सुख पाकर अभिमान नही करना चाहिये । अभिमान से धर्म कर्म को भूल जावे तो वह अज्ञानी है ।

२४ ज्ञान आदि गुणों को बढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिये यदि उसके विपरीत ससार के बढाने वाले खोटे खोटे काम करे तो वह अज्ञानी है ।

२५ उत्तम ज्ञानी लोगों की सगति पाकर भी अपनी आत्मा को निर्मल न बनावे अर्थात् राग-द्वेष दूर नही करे तो वह अज्ञानी है ।

२६. ज्ञानवानों की संगति मिलने पर उनकी सेवा भक्ति करके अपने आपको उज्ज्वल, पाप रहित करना चाहिये, अगर न करे तो अज्ञानी है ।

२७. व्रत (पच्चखाण) में दृढता रखनी चाहिये, कष्ट आ जाने पर प्रतिज्ञा ली हुई को न छोड़े । संकट में धर्म को छोड़ दे वह अज्ञानी है ।

२८. संसारिक कामों में तो नियमों का पालन करता है,

किन्तु धार्मिक कामों के लिये नियम को परवाह नहीं करता तो वह अज्ञानी है।

२६. काई उत्तम मनुष्य धर्म का उपदेश देवे तो उसका अहसान मानना चाहिये, किन्तु उल्टा उस पर क्रोध करे तो अज्ञानी है।

३०. ज्ञान सूर्य का उदय होने पर, संसार को असार समझ कर हिंसा आदि पापों को संसार का वृद्धि का कारण जानकर भी जो व्यक्ति त्याग नही करता वह अज्ञानी है।

३१. थोड़े से जीवन के लिये बहुत सा आरम्भ करता है कषाय करता है दूसरों को दुख देता और भय उत्पन्न करता है वह अज्ञानी है।

३२. अपनी आत्मा अनादि काल से काम, क्रोध, मान, माया, लोभ, मोह और अज्ञान के बन्धन में पड़ी है, उससे छूटने का उपाय करना चाहिये। इस उपाय को न करने वाला अज्ञानी है।

३३. पर की ऋद्धि-विभूति को देखकर उससे ईर्षा करने वाला व दुर्ध्यान करने वाला अज्ञानी है।

३४. दुष्ट जीव पर के औगुण देखता है, लेकिन अपने औगुण नहीं देखता, इसलिये दूसरे उत्तम गुण वाले महापुरुष की निन्दा करता है, वह अज्ञानी है।

३५. सुखी होने के लिए छल-कपट से परिग्रह इकट्ठा करने वाले तथा जिव्हा के स्वाद व काम भोग का सेवन करने वाले अज्ञानी हैं।

३६. देह का पोषण करने के लिये रसना इन्द्रिय व

काम भोग सेवन करने के लिये जीवों का घात करने वाला अज्ञानी है ।

३७ सब जीवो को अपने समान जानकर हृदय में दया नही रखे तो वह अज्ञानी है ।

३८ सोच-विचार कर वचन बोलना चाहिये । पाप सहित हास्य और भय सहित हानिकारक और अयोग्य वचन बोलने वाला अज्ञानी है ।

३९. मनुष्य भव का एक पल भी बहुमूल्य रत्न के समान है। उसे व्यर्थ गपशप में गवाने वाला अज्ञानी है ।

४०. ज्ञानवान होकर पांचो इन्द्रियो की इच्छाओ को और मन को वश में रखना चाहिये, यदि ऐसा न करे तो वह अज्ञानी है ।

४१ ज्ञानी अभिमान न करे, पाप कार्य करते हुए मन मे शंका और भय रखे, यदि ऐसा न करे तो वह अज्ञानी है ।

४२ बिना मतलब मन को ऊच-नीच जगह मत दौड़ाइये । कुरूप अथवा रूपवती पर स्त्री को देखकर चाह न करे, अगर करे तो वह अज्ञानी है ।

४३. निरोग शरीर पाकर यथाशक्ति तपस्या आदि उत्तम कार्य करना चाहिये, यदि न करे तो वह अज्ञानी है ।

४४. पूर्व जन्म में पैदा किये हुए अशुभ कर्म को भोगते समय हृदय में विलाप और रौद्र ध्यान न करना चाहिये, यदि करे तो वह अज्ञानी है ।

४५. मनुष्य जन्म पाकर अपनी आत्मा के स्वरूप का विचार न करे, धर्म कार्यो का चिंतवन न करे तो वह अज्ञानी है ।

४६. धर्मात्मा पुरुष को आत्मा का साधन करते हुए देखकर उसकी निंदा न करनी चाहिये, द्वेष व ईर्ष्या न करनी चाहिये। उसके अवगुण प्रकट न करना चाहिये। हंसी न करना चाहिये यदि ऐसा करे तो वह अविवेकी है।

४७ श्री वीतराग अरहन्तदेव के वचन में श्रद्धा-प्रतीति करनी चाहिए, शंका कांक्षा आदि उत्पन्न कर जन्म नही गंवाना चाहिए। यदि इसके विपरीत करे तो वह अविवेकी है।

४८. गुणवान महापुरुषों को देखकर अति आनन्द मनाना चाहिए, उनकी सेवा भक्ति तथा गुण कीर्तन करना चाहिए। यदि ऐसा न करे तो वह अविनेकी है।

४९. संसार रूपी बन काम, क्रोध, लोभ और मोहरूपी दावानल से जल रहा है, मनुष्य इस जलते हुए संसार को शान्ति, क्षमा और निर्लोभता आदि जल से शान्त कर इसमें से सत्यभूत धर्मरूपी रत्न को निकाल लेवे तो वह ज्ञानी है और न निकाले तो वह अविवेकी है।

५०. संसार रूपी वन में अनंत काल से भटकते-भटकते भारी पुण्य के उदय से सुखकारी मनुष्य जन्म रूपी विश्राम पाया, उसे पाकर क्लेश न करना चाहिए, आत्मा को फिर दुख में न पटकना चाहिए।

५१. बीते काल में अनतानत जन्म मरण किए, अनंत दुख भोगे, इसे न भूलना चाहिए। यदि भूले तो वह अविवेकी है।

५२. मनुष्य जन्म पाकर अच्छे-अच्छे काम करना चाहिए। यथाशक्ति पर उपकार अवश्य करना चाहिए यदि उपकार न करे तो वह अविवेकी है।

५३. आयु को अंजुली के जल समान अस्थिर जानकर ससार में लीन नही होना चाहिए, तेरा-मेरा नही करना चाहिए यदि ऐसा करे तो वह अविवेकी है।

५४ बिना घृत डाले ही तृष्णा रूपी अग्नि की ज्वाला उठती रहती है, उसमें परिग्रह रूपी घृत डालकर शीतल होने की आशा न करनी चाहिए, जो शीतल होने की आशा रखता है, वह अविवेकी है ।

५५. शास्त्र में कही गई नरक की अनत वेदना को सुनकर और अच्छी तरह समझ कर आत्मा को समझाना चाहिए और पाप से डरना चाहिए, अगर न डरे तो वह अविवेकी है।

५६ वृद्धावस्था आजाने पर शक्ति नष्ट होजाती है. हाथ पाव शिथिल हो जाते हैं। नेत्र की शक्ति क्षीण हो जाती है। ऐसी हालत में धन की लालसा न रखनी चाहिए। वृद्धावस्था मे जो धन की तृष्णा रूपी अग्नि से नित्य जलता रहता है वह अज्ञानी है।

५७. अज्ञानी जीव सारे दिन हाय धन, हाय धन करता हुआ धधे में मग्न रहता है, रात्रि प्रमाद में बिताता है, लेकिन दो घन्टे भी समता धारण कर धर्म साधन नही करता वह अज्ञानी है क्योकि ५० हाथ की रस्सी कुए डालकर दो हाथ रस्सी भी अपने हाथ में नही रखता है।

५८. झूठ तथा पाप का उपदेश नही देना चाहिए, आत्मा को हानि पहुंचाने वाली कुविद्या लोगों को नहीं सिखाना चाहिए अनर्थ नही करना चाहिए क्योकि इन कार्यों से आत्मा नरक गति पाकर अनन्त दुख भोगता है।

५९. संसार में जीवों को मरते हुए प्रत्यक्ष देखकर मरने का भय रखना चाहिए। अपने को अविनाशी नहीं समझना चाहिए। लक्ष्मी को चचल तथा कुटुम्ब परिवार आदि को क्षणभंगुर समझना चाहिए, अगर ऐसा न समझे तो वह अज्ञानी है।

६०. ज्ञानी पुरुष ससार के निकम्मे काम नहीं करते, किन्तु अनत काल को दूर करने के लिए निज ज्ञान प्रकट करने वाले श्रेष्ठ कार्य करते है, लेकिन अज्ञानी लोग इससे उल्टा करते हैं।

६१. अज्ञानी लोग ससार में निकम्मे कामों को अच्छा मसझते हैं और उसी में परिश्रम करते हैं तथा निज ज्ञान को प्रगट करने वाले श्रेष्ठ कार्यों को व्यर्थ समझते हैं।

६२. अज्ञानी जीव अपना नाम करने के लिए, कीर्ति विस्तार के लिए अनेक आरम्भ करते है, बड़े-बड़े पाप करते हुए भी भय नहीं खाते, लेकिन वे ऐसा नहीं समझते कि उसका फल हमें अनेक भवों में दुख भोगना पडेगा।

६३. पूर्व जन्म के पुण्य से लक्ष्मी प्राप्त हुई है, उस लक्ष्मी के निमित्त से अनेक कुकर्म करे वह अविवेकी है।

६४. अज्ञानी जीव शक्ति होने पर धर्म कार्य नहीं करते आत्मा का कल्याण नही करते, किन्तु जब इन्द्रियां शिथिल और बलहीन हो जाती है, तब धर्म पालन की इच्छा करते हैं। भला अग्नि लग जाने पर कुआं खोदना वृथा नही तो क्या है।

६५. हर एक प्राणी को क्षमा, दया, विनय नियम, शील, संतोष, धैर्य और गंभीरता आदि उत्तम गुणों को बढ़ाने का

अभ्यास करना चाहिये ।

६६ हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, दुराचार, ईर्षा और कपट इत्यादि अनेक दुर्गुणो को छोडना चाहिये । जो नहीं छोड़ता वह अविवेकी है ।

६७ धर्म पर श्रद्धा रखनी चाहिए, धर्म की प्रभावना करनी चाहिए, काल का चक्र सिर पर घूम रहा है, इसलिये एक क्षण का भरोसा नही । सदैव धर्म सेवन करते रहना चाहिए, जो नही करते वे अविवेकी हैं ।

६८ अज्ञानी लोगो को ठगने के लिए तथा प्रश्न करने के लिए धर्म का नाम रखकर उपदेश देने वाला व्यक्ति ख्याति, लाभ और पूजा का इच्छुक अविवेकी है ।

६९ अपने को और दूसरो को सुखी बनाने का प्रयत्न करना चाहिये । जो मनुष्य अपने को सुखी और दूसरो को दुखी देखकर खुश होता है, दुखी जीवों की हसी करता है, दुर्बल अपग तथा दरिद्र को देखकर करुणा नही करता वह अविवेकी है ।

७० ज्ञान पाने का सार अपनी आत्मा का कल्याण करना, दूसरे जीवों को उपदेश देना, ज्ञान के साधन—पुस्तक, कलम, दवात आदि देना, ज्ञान दान देना तथा दिलाना आदि है । लेकिन जो ज्ञान-शक्ति होने पर भी परोपकार नही करता, वह अज्ञानी है ।

७१ धर्म ध्यान, व्रत, नियम, पच्चखाण, दान और तपस्यादि धर्म कार्य करते किसी को नही रोकना चाहिये जो रोकता है, वह अविवेकी है, और तीव्र अन्तराय का बन्ध करता है ।

७२. कुव्यसनी, हिसक, झूठा, गंवार, कायर, चोर, अन्यायी, चुगलखोर, ईर्षा भाव वाला, क्रोधी, मानी, मायावी, लोभी और धैर्य रहित आदि दुर्जनों की संगति नही करना चाहिये। जो इनकी संगति करके अपने ज्ञानादि गुण की इज्जत बढ़ाना चाहता है, वह अविवेकी है।

७३. क्रोध, लोभ, भय और हँसी इन चार कारणों द्वारा जो झूठ बोला जाता है, वह झूठ बोलना महापाप है। अब हे चेतन! जो तू अपना आत्मा का कल्याण करना चाहता है तो असत्य का त्याग कर दे। जो उक्त बातों को जानकर भी त्याग न करे, वह अविवेकी है।

७४. क्लेश, हँसी, मैथुन, राग, शोक, चिन्ता, निद्रा, बैर, तृष्णा और परनिन्दा ये दस बातें घटाने से घट सकती हैं, बढ़ाने से बढ़ सकती हैं। इसलिये ज्ञानी को घटानी चाहिये।

७५. ज्ञान बढ़ाने के लिये निम्न लिखित दस उपाय हैं—आहार थोड़ा करना, निद्रा थोड़ी लेना, थोड़ा बोलना, विद्वानों की संगति, क्रोध नहीं करना, विनय का पूर्ण पालन करना, पंचेन्द्रियों को वश में करना, अनेक शास्त्रों का मनन करना, ज्ञानवान गुरु से पढ़ना, पूर्ण उद्यम करना, इन उपायों से ज्ञान की वृद्धि करना चाहिये, यदि न करे तो अज्ञानी है।

७६. जीव को निम्नलिखित दस प्रकार की सामग्री मिलना महादुर्लभ है—मनुष्य जन्म, आर्य देश, उत्तम कुल, लम्बी आयु, इन्द्रियों की पूर्णता, निरोग शरीर, साधु संतों की सेवा, सूत्र सिद्धांत का सुनना, धर्म की श्रद्धा करना, काय क्लेश करके धर्म ध्यान करना, यह सामग्री मिलने से जो धर्म में

रुचि रखकर परिग्रह त्यागकर ज्ञान ध्यान तप में लीन न हो, उसे अविवेकी समझना ।

७७ अत्यन्त दुर्लभ वस्तु को पाकर उसकी बडी यत्न से रक्षा करनी चाहिए । अज्ञानी लोग मोहवश कुटुम्ब परिवार ऐश्वर्य आदि मे फसे रहते हैं। मेरा-तेरा करते रहते है, परन्तु यह नही समझते कि यह सब यही पडा रह जायेगा और कुछ भी साथ नही जाएगा, एक धर्म ही साथ जाने वाला है। जो इस धर्म को नही सम्भालता वह अज्ञानी है।

७८. धर्म-धर्म सभी कहते है, लेकिन धर्म वह है जो ससार के दुःखो से छुडाकर असली सुख का स्थान मोक्ष—जो सब प्रकार के कर्मों से रहित अवस्था है—उसमे पहुचा दे, क्रोध मान माया लोभ का त्याग करने से चारित्र बढता है, उस चारित्र से ज्ञानावरणीय आदि कर्मो का क्षय होकर अनंत ज्ञान-दर्शन आदि गुण प्रगट होते है, फिर जीव को मोक्ष प्राप्त होता है।

७९. ससार के सब जीव विषय-कषाय मे फंसे हुए अपनी स्वार्थ की बातें करते है। स्वार्थ का शुभ मार्ग बडा कठिन है। एक सम्यग्दृष्टि भव्य आत्मा स्वार्थ और परमार्थ का सच्चा मार्ग जानता है। उसका हृदय सब विषयो से रहित है, सत्य वचन बोलता है। वह किसी का विरोधी नही है, उसे पर्याय सम्बन्धी वुद्धि नही है, इसलिए वह मोक्ष-मार्ग में लगा है। अपनी आत्मा को देह से भिन्न समझकर मुनि व्रत धारण किए है, उसकी सेवा करना ज्ञानी का कर्त्तव्य है।

८० ससार मे कोई प्राणी सुखी नही है, जहां देखो वहाँ

जीव कर्मो के कारण दुखी ही दिखाई देते हैं, कितने ही अज्ञानी जीव संसार में ही सुख मान रहे हैं, परन्तु यह मानना भूल है। यदि अग्नि मे शीतल गुण हो तो संसार में सुख हो, इसलिए जब तक ससार का त्यागकर मोक्ष-मार्ग प्राप्त न हो अर्थात् मुनि व्रत स्वीकार न करे, तब तक दुखी ही है।

८१. हे चेतन! तू इस ससार मे क्यों भुला रहा है? अज्ञान दशा में पड़ा हुआ मेरा-तेरा कर रहा है ? संसार में कोई किसी का नही है। जिसका स्वार्थ सिद्ध होता है वह प्रसन्न और स्वार्थ सिद्ध नही होता वह नाराज हो जाता है। अरे भोले जीव, तुझे कुछ नही सूझता, लेकिन फिर बहुत दुख भोगना होगा। ऐसा विचार करके मोह को हटा दे। जो नही हटाता तो वह अज्ञानी है।

८२. हे जीव ! तूने पूर्व जन्म में अच्छा पुण्य उपार्जन नहीं किया था, अतः दुख पा रहा है, अगर अब भी पुण्य संग्रह नही करेगा तो आगे भो दुख भोगना पड़ेगा। तेरी आजीविका पराधीन है, अतः पाप कर्म छोड़ पुण्य कर्म कर। जो नही करेगा तो वह अज्ञानी है।

८३. हे जीव ! तू पाप से धन संग्रह करके यह सोचता है कि यह दुख में काम आवेगा, यह सोचना तेरी भूल है। पापोदय से लक्ष्मी नष्ट हो जाएगी। इसलिए आत्मोद्धार कर अगर न करेगा तो तू अज्ञानी है।

८४. हे जीव ! तू पेट के लिए अनर्थ कर्म से पाप बन्ध क्यों करता है ? प्रारब्ध के अनुसार जरूर मिलेगा। पाप से कुछ नहीं मिल सकेगा। ऐसा विचार कर, आत्मा में लीन हो।

यदि आत्मा में लीन न होगा तो अज्ञानी है।

८५. दीपक सबको प्रकाश देकर भी अपने नीचे अन्धकार रखता है, ऐसे ही अज्ञानी जीव पर उपदेश में निपुण होकर भो अपनी तरफ से अयोग्य रहते हैं। अपने अज्ञान को नहीं मिटाते। हे जीव ! तू कर्मों का नाश करके मोक्ष प्राप्त कर ले। क्षमा, विनय, सतोष, सत्य को धारण कर। इनको यदि धारण न करेगा तो अज्ञानी है।

८६ संसारी जीव इच्छानुसार बात बना झगडते हैं, तत्व की बात नहीं समझते। काम, क्रोध, लोभ के त्याग से जीव की विशुद्धि होती है। इसके बिना त्यागे मुक्ति असम्भव है। कामी, क्रोधी के त्याग और नियम व्यर्थ हैं। ऐसा विचार वाद विवाद मे अपना अमूल्य समय न खोवो।

८७ मनुष्य वही है जो आत्मोद्धार में प्रयत्नशील हो।

८८ मनुष्य का सब से बड़ा गुण सदाचार औए विश्वास-पात्रता है।

८९. मनुष्य वही है जो अपनी प्रवृत्ति को निर्मल करता है।

९०. आत्म-गौरव इसीमें है कि विषयों की तृष्णा से बचा जावे। मानव पर्याय का अमूल्य समय न खोवो।

९१ वह मनुष्य मनुष्य नही, जो निरोग होने पर भी आत्म कल्याण से विमुख हो।

९२. मनुष्य वही है जो अपने वचनों का पालन करे।

९३ संसार स्नेहमय है। इस स्नेह पर जिसने विजय प्राप्त करली वही मनुष्य है।

९४. मनुष्य पर्याय की सार्थकता ईसी में है कि निष्कपट रहे ।

९५. सब से ममत्व त्यागकर अपना भविष्य निर्मल करो ।

९६. सत्संग से इन्द्रिय संयम और मन की शुद्धि होती है। इसलिए सत्संग का निरंतर प्रयत्न करते रहो ।

९७. सांसारिक आत्मा के तीन बलहो ते हैं—(१)कायिक, (२) वाचनिक, (३) मानसिक । जो बलिष्ठ होते हैं, वे ही जीवन का वास्तविक लाभ ले सकते है ।

९८. जिनका कायबल श्रेष्ठ है, वे ही मोक्ष पथ के पथिक्र बन सकते हैं । इस प्रकार जब मोक्ष मार्ग में भी कायबल की श्रेष्ठता आवश्यकता है तो सांसारिक कार्य इसके बिना कैसे हो सकते हैं !

९९. जिनमें बचन बल था, उन्हीके द्वारा आजतक मोक्षमार्ग की पद्धति का प्रकाश हो रहा है । उन्हीं की अकाट्य युक्तियों और तर्कों द्वारा बड़े बड़े वादियों का गर्व दूर हुआ है ।

१००. मनोबल में वह शक्ति मौजूदा है, जो अनंत जन्म जित कलकों की कालिमा को एक क्षण में पृथक कर देती है ।

स्त्रियों के मूल गुण

ससार में समाज रूपी शकट (गाडी) दुनियन्त्रित पद्धति से तब ही चल सकता है, जब उसके पुरुष और स्त्री रूपी दोनों चक्र एक सरीखे सुदृढ और सदाचारी होवें।

जैसे पुरुष का विद्वान होना आवश्यक है, उसी प्रकार किंबहुना उससे भी अधिक स्त्री का विदुषी होना आवश्यक क्योंकि स्त्री पुरुष की जननी है। विदुषी माता का पुत्र अवश्यय, ही विद्वान होता है।

बालको में अनुकरण करने की शक्ति बहुत तीव्र होती है। विदुषी माता का पुत्र अपनी माता के सम्पूर्ण सद्‌गुणो का अनुकरण करके जगत मान्य हो जाता है।

गृह (घर) वही है, जिसमे सदाचारिणी और विदुषी गृहणी (घर वाली हो,) काष्ठ मिट्टी के ढेर को गृह नही कहते हैं।

स्त्री की शोभा पतिव्रत है, और उस पतिव्रत की सच्ची पालन तब तक नही हो सकती, जब तक कि वह सुशिक्षिता विद्यावती नही हो। अतए पतिव्रतव धर्म से सुशोभित होने के लिये स्त्री का विद्या पढ़ना मुख्य कर्तव्य है।

शील रत्न को जो स्त्री अपने हृदय मे धारण किये है, उसे संसार के अन्य चमकते हुए रत्नो के आभूषणो को आवश्यकता नही है।

उस रति-रभा के रूप को जीतने वाली स्त्री से जो कि

पर-पुरुष रत है, वह कुरूपिनी, दरिद्रा, भिखारिणी हजार गुणी अच्छी है जो कि अपने पति को ही अपना सर्वस्व समझती है।

विचार दृष्टि से देखा जावे तो स्त्री के लिये पति सेवा के अतिरिक्त और कोई व्रत उपवासादि महत् फलप्रद नही है। जो स्त्री पतिव्रता है, उसके सम्पूर्ण व्रतों का पालन स्वयं हो जाता है, परन्तु जो दुराचारिणी है वह नाना प्रकार के व्रत उपवास करती हुई भी दुर्गति की पात्र होती है।

स्त्रियों का परम सुन्दर आभूषण लज्जा है सदाचारिणी स्वतन्त्रता का तिरस्कार करती है। वे बालापन मे पिता के, युवावस्था में पति के और वृद्ध काल में पुत्री के अधीन ही रहती है वह पारतन्त्र्य स्त्रियों के शीलरक्षा का अजेय किला है।

स्त्रियों को एक शरीर से दो जन्म धारण करने पडते हैं। जिस दिन पति के घर में प्रवेश होता है, स्त्री के द्वितीय जन्म का वही पहला दिन है। पहले जन्म की शिक्षा दूसरे जन्म में उसे सुखी और यशस्वी बनाती है। दूसरा जन्म बड़ी सावधानी से अतिवाहित करना चाहिये।

अपने पति के प्रत्येक कार्य में जो मंत्री का कार्य देती है, सेवा करने में जो दासो के समान हैं, भोजन कराने में जो माता का भाव धारण करती है, शय्या में जो रभा के तुल्य सुखदायिनी है। पृथ्वी के समान जिनमें क्षमा है और जो सम्पूर्ण गृह को धर्म मार्ग पर चलती हैं। वह स्त्री, स्त्री हैं।

पति के प्रत्येक आचार विचार और शरीर की व्यवस्था जो सहस्त्र नेत्रों से देखती हैं, परन्तु पर पुरुष की ओर देखने में जो नेत्र शक्ति हीन है वही स्त्री सुदृशी हैं।

स्त्रियों के नष्ट होने के सात द्वार हैं। पिता के घर स्वतंत्रता से रहना, मेलो मे जाना, पर पुरुषों के साथ वार्तालाप का सम्बन्ध रखना, पति का निरतर विदेश में रहना, पुंश्चलि संगति रखना, अक्षर शत्रु रहना और पति का बुढ़ापा।

द्रोपदी, सीता, अंजना सुन्दरी, मनोरमा सुलोचना आदि जितनी पुराण प्रसिद्ध सच्चरित्र स्त्रियां हुई हैं वे पढ़ी लिखी पडित थी, अतएव कहा जा सकता है कि स्त्रियों को सच्चरित्रा बनने मे निर्मल विद्या एक कारण है।

जब तक स्त्रियाँ शास्त्र विहित श्रावक कर्मो को अर्थात् गृहस्थ के आचार विचारो में दक्ष नही होगी, तब तक पुरुष अपने धर्म की भली भाति रक्षा करने में समर्थ नही हो सकते।

स्त्रियाँ स्वभावत. पडिता होती हैं। उनके कोमल, कमनीय हृदय पर सविद्या बहुत शीघ्र अपना अधिकार जमा लेती हैं, स्त्रियो को धर्म शिक्षा देना गृहस्थ जीवन का धर्म है।

स्त्री का अपने धर्म से एक बार ही पतित होना असह्य अक्षम्य और कुल विप्लवकर है। इसलिये उसे अपने धर्म में स्थिर रहने के लिये अपने प्राणों से भी अधिक सचेत रहना चाहिये।

क्षण भर के सुख के लिये कामाध होकर जो स्त्रियां पतित हो जाती हैं, वे अपने को अपने हाथ से एक बड़े भारो भारी भयानक समुद्र में पटक देती हैं, नरकों के घोर दु.खों में उन्हें अनेक सागर पड़े-पडे बिलबिलाना पड़ता है।

स्त्री की पर्याय स्वभाव से ही निंद्य और पामर कही जाती है, परन्तु वह सद्विद्या सदाचार और सुशीलता से

जगद्वन्द्य और परम पवित्र भी मानी गई है। पुराण प्रसिद्ध स्त्रियों का लोग आज आदर दृष्टि से नामोच्चारण करते है।

स्त्री से जगत पूज्य सर्वज्ञ देव उत्पन्न होते हैं। सर्वज्ञ देव तीर्थंकर से मोक्ष मार्ग का प्रकाश परम हितकारी शास्त्र उत्पन्न होता है। शास्त्र से संसार के पाप समूह नष्ट होते हैं और पापों के नाश होने से बाधा रहित सुख की प्राप्ति होती है। इस प्रकार परम्परागत मोक्ष सुख की देने वाली सदाचारिणी कुलीन स्त्री को पवित्र जानकर सज्जन स्वीकार करते है।

मंगल रूप भक्ति रस के सुमन

चाहे अक्षर ज्ञान से, अज्ञानी हूं नाथ।
फिर भी भक्ती प्रबल है, तुम्हे नमाऊं माथ ॥१

सोकर उठते ही प्रातः जो, जिनवर के दर्शन करता है।
उसका हो जाता जन्म सफल, तीर्थंकरपद को पाता है ॥२

सकल महोत्सव उस घर होंगें, जहँ जिनवाणी होय प्रकाश।
भव्य जीव पढ़ समकित धारें, करते अष्ट कर्म का नाश ॥३

अन्ध कूप सम मातृ उदर मे, पड़ा हुआ था मै भगवान।
पुण्य योग से बाहर निकला, मिला आपका दर्श महान ॥४

दिन में रवि से निशि मे शशि से, नहीं प्रयोजन रहा मुझे।
नाश हो गया सारा ही तम, प्रभु की वीतराग छवि से ॥५

श्वेत सुगन्ध कोटि पुष्पों से, मन्त्र राज जो जपते है।
चक्रीपद को सहज पाय कर, मुक्ति वधू को वरते है ॥६

धर्म भावना

(श्री १०८ स्व०मुनि श्री सुधर्मसागरजी रचित)

इस संसार में यह दयामय धर्म चिन्तामणि रत्न के समान है अथवा महा कल्पवृक्ष के समान है, यही धर्म समस्त सिद्धियों की निधि है और यही धर्म संसार से पार कर देने वाला है। इसी धर्म को भगवान जिनेन्द्र देव ने निश्चय और व्यवहार के भेद से दो प्रकार का बतलाया है—इनमें से पहिला निश्चय धर्म परमार्थरूप है, वस्तु स्वभाव रूप है, अमूर्त है, क्रियारहित है, नित्य है, आत्ममय तत्व से अभिन्न है और शुद्ध आत्ममय है। यह निश्चय धर्म सिद्धों में ही होता है, अन्य किसी जीव में नहीं होता। दूसरा व्यवहार धर्म दयामय है, सबका हित करने वाला है, लौकिक है, व्यवहार है और चारित्रमय है। जो व्यवहार धर्म है वही लौकिक धर्म है। भगवान जिनेन्द्र देव के शासन में व्यवहार धर्म और लौकिक धर्म में कोई भेद नहीं है वह व्यवहार धर्म क्रियारूप है, चारित्ररूप है, और स्वर्ग, मोक्ष के समस्त सुखों को देने वाला है। जो धर्म इन संसारी जीवों को पाप रूपी कीचड़ से उठाकर मोक्ष पद में विराजमान कर दे, उसको व्यवहार धर्म कहते हैं। जैन शास्त्रों में अणुव्रत और महाव्रत के भेद से उसके दो भेद बतलाये हैं

भगवान जिनेन्द्र देव ने साध्य-साधक के भेद से उस धर्म के दो भेद बतलाये हैं। परमार्थ धर्म साध्य है और लौकिक वा व्यवहार धर्म साधक है। जैनधर्म में जितने

लौकिकाचार निरूपण किये गये हैं अथवा गृहस्थ और मुनियों के जो-जो धर्म निरूपण किये गये है, वह सब धर्म का स्वरूप समझना चाहिये ।

वत्थुसुहावो धम्मो उत्तमखमादि दस लक्खणो धम्मो ।
रयणत्त पंचधम्मो जीवाणं रक्खण धम्मो ॥

प्रायश्चित्तादिक सब उसी धर्म के उत्तर भेद हैं । उसी धर्म के उत्तम क्षमादिक दस भेद हैं, अथवा रत्नत्रय आदि अनेक भेद है, यही धर्म ससार रूपी समुद्र से पार कर देने वाला है और कर्मों को नाश कर देने वाला है । इसी धर्म के बिना इस जीव मे अनेक महा दु खो की परम्परा प्राप्त की है । इसलिए समस्त प्रयत्न करके इस श्रेष्ठ धर्म को धारण करूगा और व्यामोह उत्पन्न करने वाले समस्त मिथ्या मतों का त्याग करूंगा । भव्य जीवों को मोक्ष प्रदान करने वाले इस निर्मल श्रेष्ठ धर्म को सदा पालन करते रहना चाहिये, जिससे कि आकुलता रहित, रोग रहित, नित्य सुख की प्राप्ति हो जाय । जो ससार, शरीर, धन और भोगो से विरक्त हैं, ऐसे महात्माओं को बारह भावनाओं का चिन्तवन कर विषयों की इच्छा छोड़ देनी चाहिये, आत्मा को शुद्ध करने वाले और भावनाओ से भरपूर, ऐसे उस भव्य पुरुष को श्रेष्ठ चारित्र के पालन करने में लग जाना चाहिये और जैन दीक्षा को धारण कर सुधर्म या श्रेष्ठ धर्म को धारण करना चाहिये ।

श्री श्री श्री १००८ देवाधिदेव भगवान ऋषभदेव की स्तुति

(श्री १०८ श्री मुनिराज सुधर्मसागरजी महाराज विरचित)

श्री नाभिसूनोः पदपुंडरीकः,
श्रियंविधत्तात्सुख शांति रूपम् ।
यं प्राप्य भव्या अति दुर्लभंतं,
गच्छन्ति पारं भवदुःख वार्धेः ॥१॥

अर्थ—भगवान श्री ऋषभदेव के चरण कमल हम भव्य जीवों को सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र रूपी लक्ष्मी देवें। वह रत्नत्रय रूपी लक्ष्मी सुख स्वरूप है तथा शांति स्वरूप है, उन भगवान ऋषभदेव के अत्यन्त दुर्लभ चरण को पाकर ही भव्य जीव इस अपार संसार के महादुःख रूपी समुद्र से पार हो जाते हैं ॥१॥

वैदेहतो वर्णमयीं व्यवस्थां, संस्थापयामास जगद्धिताय ।
अनादिसृष्टेः प्रभवस्य बीजं, कार्यक्रमं यो व्यरचत्सुसृष्टा ॥२

अर्थ—विदेह क्षेत्र में क्षत्रिय वैश्य शूद्र जैसी वर्ण व्यवस्था अनादि काल से चली आ रही है यही वर्ण व्यवस्था आदि सृष्टा भगवान ऋषभदेव नें संसारी जीवों का हित करने के लिए स्थापना की। तथा अनादि काल से चली आई इस सृष्टि को सदा प्रचलित रहने के कारण जो भी कार्य क्रम थे वे सब भगवान ने प्रगट किये ॥२॥

अनादि सस्कार बिध तदानीमुद्‌घोषयामास स आदिसृष्टा ।
सस्कार योगेन च कर्मभूमौ, शिव प्रवृत्तिश्च भवेत्सदैव ॥३

अर्थ—आदि सृष्टा भगवान ऋषभदेव ने उसी समय अर्थात कर्म भूमि के प्रारम्भ में ही अनादि काल से चली आई सस्कार विधियो की भी घोषणा की थी सो ठीक है क्योकि इस कर्म भूमि मे संस्कारों के निमित्त से ही सदा मोक्ष की प्रवृति होती है ॥३॥

अनादि रत्नत्रय चिन्ह रूप, यज्ञोपवीतं स्वयमत्र येन ।
धृतनिजान्‌ तान्‌ भरतादि पुत्रान्‌,सस्कारशुद्धयै भुविधारयतत्‌ ॥४

अर्थ—रत्नत्रय का चिन्ह स्वरूप यह यज्ञोपवीत अनादि काल से चला आ रहा है । इस ससार में सस्कारों को शुद्ध बनाये रखने के लिए भगवान ऋषभदेव ने उसं यज्ञोपवीत को स्वय धारण किया और अपने भरत बाहुबलि आदि समस्त पुत्रों को धारण कराया था ॥४॥

राज्य व्यवस्थां नगरादि रूपा, नीतिं चतुर्द्धाशुभ कार्य रूपाम्‌ ।
सम्राट जिनेन्द्रः पुरुदेवराजः, सस्थापयामास जगद्धिताय ॥५

अर्थ—सम्राट जिनेन्द्रदेव भगवान ऋषभदेव ने संसारी जीवो का हित करने के लिये शुभ कार्यो की प्रचलित करने वाली नगर गाव पट्टनादि रूप राज्य व्यवस्था स्थापना की थी तथा साम-दाम-दड-भेदरूप चार प्रकार की नीति स्थापना की थी ॥५॥

तदा प्रजानो सजानो युगादौ, हित समस्तनिरपेक्षवृत्या ।
शुभ सदाचारमय चकार, सृष्टाततोसौ सजिनस्तदानीम्‌ ॥६

अर्थ—उस समय कर्म भूमि के प्रारम्भ में भगवान ऋषभ देव ने निरपेक्ष वृत्ति से प्रजा का हित करनेवाले, कल्याण करनेवाले और सदाचार को बढ़ाने वाले ऐसे समस्त कार्यों की प्रवृत्ति बतलाई थी। इसलिये वे भगवान ऋषभदेव उस समय सृष्टा विधाता, ब्रह्मा व आदि ब्रह्मा के नाम से कहे जाते थे ॥६॥

दीर्घेण कालेन गतंप्रणष्टं
श्रेयः स्वरूपं भुवि मोक्षमार्गम् ।
दैवीं सभायां प्रकटीचकार
बंदामि तं ब्रह्मजिनं युगेशम् ॥७

अर्थ—समस्त जीवों का कल्याण करने वाला यह मोक्ष मार्ग इस भरत क्षेत्र में बहुत दिनों से नष्ट हो रहा था। उसको भगवान ऋषभदेव ने अपनी समवशरण-सभा में प्रगट किया था। ऐसे आदि ब्रह्मा को और इस युग के स्वामी भगवान ऋषभदेव को मैं त्रियोग द्वारा नमस्कार करता हूं ॥७॥

ससार सौख्याय जलांजली यो,
दत्वा च त्यक्त्वा सुख राज्य भोगम् ।
कृत्वा तपस्तीव्रतरं प्रदीप्त,
कर्माणि चोद्भद्य जगाम मोक्षम् ॥८

अर्थ—भगवान ऋषभदेव ने सबसे पहले सांसारिक सुख को तिलांजलि दी। फिर सुख और राज्य के भोगों का त्याग किया तथा अत्यन्त तीव्र और घोर तपश्चरण किया। उस तप-

श्चरण से कर्मो का नाश किया और फिर वे भगवान मोक्ष में जा विराजमान हो गये ॥८॥

त्वं नाथ ! मीतोसिपुराण वेदे,
जगत्पिता शासक आदि सृष्टा।
विभुः स्वयमूः शिव भूरजन्मा,
आदीश्वरो लोकपिता महोवा । ६

अर्थ—हे नाथ ! अनादि काल से चले आये स्याद्वादमय श्रुत ज्ञान से आप जगत्पिता, शासक, आदि सृष्टा, विभु (ज्ञान के द्वारा सर्वत्र व्यापक), स्वयभू (अपने आप उत्पन्न होनेवाले) शिवम (जिनका जन्म सब जीवो को कल्याणमय हो), अजन्मा (जन्म रहित), आदीश्वर और तीनो लोको के पितामह आदि नामों से कहे जाते है ॥६॥

वेद प्रकाशाय नमोस्तु तुभ्य,
संस्कारदात्रे च नमोस्तु तुभ्यम् ।
वर्णादि कर्त्रेहि नमोस्तु तुभ्यं,
मोक्षस्वरूपाय नमोस्तु तुभ्यम् ॥१०

अर्थ—हे प्रभो ! आप स्याद्वादमय (श्रुतज्ञान) को प्रकाशित करने वाले हैं, इसलिये आप को नमस्कार हो । आप संस्कारो का प्रचार करने वाले हैं, इसलिये आप को नमस्कार हो । आप वर्ण व्यवस्था को स्थापन करने वाले हैं, इस लिये आपको नमस्कार होवे और आप साक्षात मोक्ष स्वरूप हैं, इसलिये आपको नमस्कार होवे ॥१०॥

जगद्वन्द्य और परम पवित्र भी मानी गई है। पुराण प्रसिद्ध स्त्रियों का लोग आज आदर दृष्टि से नामोच्चारण करते हैं।

स्त्री से जगत पूज्य सर्वज्ञ देव उत्पन्न होते हैं। सर्वज्ञ देव तीर्थंकर से मोक्ष मार्ग का प्रकाश परम हितकारी शास्त्र उत्पन्न होता है। शास्त्र से संसार के पाप समूह नष्ट होते हैं और पापो के नाश होने से वाधा रहित सुख की प्राप्ति होती है। इस प्रकार परम्परागत मोक्ष सुख की देने वाली सदाचारिणी कुलीन स्त्रो को पवित्र जानकर सज्जन स्वीकार करते हैं।

मंगल रूप भक्ति रस के सुमन

चाहे अक्षर ज्ञान से, अज्ञानी हू नाथ।
फिर भी भक्ती प्रबल है, तुम्हे नमाऊं माथ ॥१

सोकर उठते ही प्रातः जो, जिनवर के दर्शन करता है।
उसका हो जाता जन्म सफल, तीर्थंकरपद को पाता है ॥२

सकल महोत्सव उस घर होगें, जहँ जिनवाणी होय प्रकाश।
भव्य जीव पढ़ समकित धारें, करते अष्ट कर्म का नाश ॥३

अन्ध कूप सम मातृ उदर मे, पडा हुआ था मै भगवान।
पुण्य योग से बाहर निकला, मिला आपका दर्श महान ॥४

दिन में रवि से निशि मे शशि से, नही प्रयोजन रहा मुझे।
नाश हो गया सारा ही तम, प्रभु की वीतराग छवि से ॥५

श्वेत सुगन्ध कोटि पुष्पो से, मन्त्र राज जो जपते है।
चक्रीपद को सहज पाय कर, मुक्ति वधू को वरते हैं ॥६

धर्म भावना

(श्री १०८ स्व०मुनि श्री सुधर्मसागरजी रचित)

इस संसार में यह दयामय धर्म चिन्तामणि रत्न के समान है अथवा महा कल्पवृक्ष के समान है, यही धर्म समस्त सिद्धियों की निधि है और यही धर्म संसार से पार कर देने वाला है। इसी धर्म को भगवान जिनेन्द्र देव ने निश्चय और व्यवहार के भेद से दो प्रकार का बतलाया है—इनमें से पहिला निश्चय धर्म परमार्थरूप है, वस्तु स्वभाव रूप है, अमूर्त है, क्रियारहित है, नित्य है, आत्ममय तत्व से अभिन्न है और शुद्ध आत्ममय है। यह निश्चय धर्म सिद्धों में ही होता है, अन्य किसी जीव में नही होता। दूसरा व्यवहार धर्म दयामय है, सबका हित करने वाला है, लौकिक है, व्यवहार है और चारित्रमय है। जो व्यवहार धर्म है वही लौकिक धर्म है। भगवान जिनेन्द्र देव के शासन में व्यवहार धर्म और लौकिक धर्म मे कोई भेद नही है वह व्यवहार धर्म क्रियारूप है, चारित्ररूप है, और स्वर्ग, मोक्ष के समस्त सुखों को देने वाला है। जो धर्म इन संसारी जीवों को पाप रूपी कीचड़ से उठाकर मोक्ष पद में विराजमान कर दे, उसको व्यवहार धर्म कहते हैं। जैन शास्त्रों में अणुव्रत और महाव्रत के भेद से उसके दो भेद बतलाये हैं

भगवान जिनेन्द्र देव ने साध्य-साधक के भेद से उस धर्म के दो भेद बतलाये है। परमार्थ धर्म साध्य है और लौकिक वा व्यवहार धर्म साधक है। जैनधर्म में जितने

लौकिकाचार निरूपण किये गये हैं अथवा गृहस्थ और मुनियों के जो-जो धर्म निरूपण किये गये हैं, वह सब धर्म का स्वरूप समझना चाहिये।

वत्थुसुहावो धम्मो उत्तमखमादि दस लक्खणो धम्मो।
रयणत्त पंचधम्मो जीवाणं रक्खणं धम्मो ॥

प्रायश्चित्तादिक सब उसी धर्म के उत्तर भेद हैं। उसी धर्म के उत्तम क्षमादिक दस भेद हैं, अथवा रत्नत्रय आदि अनेक भेद है, यही धर्म ससार रूपी समुद्र से पार कर देने वाला है और कर्मो को नाश कर देने वाला है। इसी धर्म के बिना इस जीव ने अनेक महा दु खों की परम्परा प्राप्त की है। इसलिए समस्त प्रयत्न करके इस श्रेष्ठ धर्म को धारण करूंगा और व्यामोह उत्पन्न करने वाले समस्त मिथ्या मतो का त्याग करूंगा। भव्य जीवों को मोक्ष प्रदान करने वाले इस निर्मल श्रेष्ठ धर्म को सदा पालन करते रहना चाहिये, जिससे कि आकुलता रहित, रोग रहित, नित्य सुख की प्राप्ति हो जाय। जो संसार, शरीर, धन और भोगो से विरक्त हैं, ऐसे महात्माओं को बारह भावनाओ का चिन्तवन कर विषयों की इच्छा छोड़ देनी चाहिये, आत्मा को शुद्ध करने वाले- और भावनाओं से भरपूर, ऐसे उस भव्य पुरुष को श्रेष्ठ चारित्र के पालन करने में लग जाना चाहिये और जैन दीक्षा को धारण कर सुधर्म या श्रेष्ठ धर्म को धारण करना चाहिये।

श्री श्री श्री १००८ देवाधिदेव भगवान ऋषभदेव की स्तुति

(श्री १०८ श्री मुनिराज सुधर्मसागरजी महाराज विरचित)

श्री नाभिसूनोः पदपुंडरीकः,
श्रियंविधत्तात्सुख शांति रूपम् ।
यं प्राप्य भव्या अति दुर्लभंतं,
गच्छन्ति पारं भवदुःख वार्धेः ॥१॥

अर्थ—भगवान श्री ऋषभदेव के चरण कमल हम भव्य जीवों को सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र रूपी लक्ष्मी देवें। वह रत्नत्रय रूपी लक्ष्मी सुख स्वरूप है तथा शांति स्वरूप है, उन भगवान ऋषभदेव के अत्यन्त दुर्लभ चरण को पाकर ही भव्य जीव इस अपार संसार के महादुःख रूपी समुद्र से पार हो जाते हैं ॥१॥

वैदेहतो वर्णमयीं व्यवस्थां, संस्थापयामास जगद्धिताय ।
अनादिसृष्टेः प्रभवस्य बीजं, कार्यक्रमं यो व्यरचत्सुसृष्टा ॥२

अर्थ—विदेह क्षेत्र में क्षत्रिय वैश्य शूद्र जैसी वर्ण व्यवस्था अनादि काल से चली आ रही है यही वर्ण व्यवस्था आदि सृष्टा भगवान ऋषभदेव नें संसारी जीवों का हित करने के लिए स्थापना की। तथा अनादि काल से चली आई इस सृष्टि को सदा प्रचलित रहने के कारण जो भी कार्य क्रम थे वे सब भगवान ने प्रगट किये ॥२॥

अनादि सस्कार बिध तदानीमुद्घोषयामास स आदिसृष्टा ।
सस्कार योगीन च कर्मभूमो, शिव प्रवृत्तिश्च भवेत्सदैव ॥३

अर्थ—आदि सृष्टा भगवान ऋषभदेव ने उसी समय अर्थात कर्म भूमि के प्रारम्भ में ही अनादि काल से चली आई सस्कार विधियो की भी घोषणा की थी सो ठीक है क्योंकि इस कर्म भूमि मे संस्कारो के निमित्त से ही सदा मोक्ष की प्रवृति होती है ॥३॥

अनादि रत्नत्रय चिन्ह रूप, यज्ञोपवीत स्वयमत्र येन ।
धृतनिजान् तान् भरतादि पुत्रान्,संस्कारशुद्धचै भुविधारयतत् ॥४

अर्थ—रत्नत्रय का चिन्ह स्वरूप यह यज्ञोपवीत अनादि काल से चला आ रहा है। इस ससार में सस्कारो को शुद्ध बनाये रखने के लिए भगवान ऋषभदेव ने उस यज्ञोपवीत को स्वय धारण किया और अपने भरत वाहुवलि आदि समस्त पुत्रों को धारण कराया था ॥४॥

राज्य व्यवस्थां नगरादि रूपा, नीतिं चतुर्द्धाशुभ कार्य रूपाम् ।
सम्राट जिनेन्द्रः पुरुदेवराजः, सस्थापयामास जगद्धिताय ॥५

अर्थ—सम्राट जिनेन्द्रदेव भगवान ऋषभदेव ने ससारी जीवो का हित करने के लिये शुभ कार्यो को प्रचलित करने वाली नगर गाव पट्टनादि रूप राज्य व्यवस्था स्थापना की थी तथा साम-दाम-दड-भेदरूप चार प्रकार की नीति स्थापना की थी ॥५॥

तदा प्रजानो सजानो युगादौ, हित समस्तनिरपेक्षवृत्या ।
शुभ सदाचारमय चकार, सृष्टाततोसौ सजिनस्तदानीम् ॥६

अर्थ—उस समय कर्म भूमि के प्रारम्भ में भगवान ऋषभ देव ने निरपेक्ष वृत्ति से प्रजा का हित करनेवाले, कल्याण करनेवाले और सदाचार को बढ़ाने वाले ऐसे समस्त कार्यों की प्रवृत्ति बतलाई थी। इसलिये वे भगवान ऋषभदेव उस समय सृष्टा विधाता, ब्रह्मा व आदि ब्रह्मा के नाम से कहे जाते थे ॥६॥

दीर्घेण कालेन गतंप्रणष्टं
श्रेयः स्वरूपं भुवि मोक्षमार्गम् ।
दैवी सभायां प्रकटीचकार
बंदामि तं ब्रह्मजिनं युगेशम् ॥७

अर्थ—समस्त जीवों का कल्याण करने वाला यह मोक्ष मार्ग इस भरत क्षेत्र में बहुत दिनों से नष्ट हो रहा था। उसको भगवान ऋषभदेव ने अपनी समवशरण-सभा में प्रगट किया था। ऐसे आदि ब्रह्मा को और इस युग के स्वामी भगवान ऋषभदेव को मैं त्रियोग द्वारा नमस्कार करता हूं ॥७॥

संसार सौख्याय जलांजली यो,
दत्वा च त्यक्त्वा सुख राज्य भोगम् ।
कृत्वा तपस्तीव्रतरं प्रदीप्तं,
कर्माणि चोद्भद्य जगाम मोक्षम् ॥८

अर्थ—भगवान ऋषभदेव ने सबसे पहले सांसारिक सुख को तिलांजलि दी। फिर सुख और राज्य के भोगों का त्याग किया तथा अत्यन्त तीव्र और घोर तपश्चरण किया। उस तप-

श्चरण से कर्मों का नाश किया और फिर वे भगवान मोक्ष में जा विराजमान हो गये ॥८॥

त्वं नाथ ! मीतोसिपुराण वेदे,
जगत्पिता शासक आदि सृष्टा।
विभुः स्वयम्भूः शिव भूरजन्मा,
आदीश्वरो लोकपिता महोवा । ९

अर्थ—हे नाथ ! अनादि काल से चले आये स्याद्वादमय श्रुत ज्ञान से आप जगत्पिता, शासक, आदि सृष्टा, विभु (ज्ञान के द्वारा सर्वत्र व्यापक), स्वयंभू (अपने आप उत्पन्न होनेवाले) शिवम (जिनका जन्म सब जीवो को कल्याणमय हो), अजन्मा (जन्म रहित), आदीश्वर और तीनों लोको के पितामह आदि नामों से कहे जाते है ॥९॥

वेद प्रकाशाय नमोस्तु तुभ्य,
सस्कारदात्रे च नमोस्तु तुभ्यम् ।
वर्णादि कर्त्रेहि नमोस्तु तुभ्य,
मोक्षस्वरूपाय नमोस्तु तुभ्यम् ॥१०

अर्थ—हे प्रभो ! आप स्याद्वादमय (श्रुतज्ञान) को प्रकाशित करने वाले हैं, इसलिये आप को नमस्कार हो। आप सस्कारों का प्रचार करने वाले है, इसलिये आप को नमस्कार हो। आप वर्ण व्यवस्था को स्थापन करने वाले हैं, इस लिये आपको नमस्कार होवे और आप साक्षात मोक्ष स्वरूप हैं, इसलिये आपको नमस्कार होवे ॥१०॥

भगवान महावीर स्वामी की स्तुति

रचयिता—स्व० पूज्य आ० सुधर्मसागर जी महाराज

श्रीकुण्डनाख्ये नगरे विशाले, कृतावतारो नृसुरैश्च पूज्यः ।
कामेभसिंहःशुभसिंह चिन्हः, वंद्योस्तिवीरोजिनवर्द्धमानः ।१

अर्थ—जिन्होनें कुण्डनपुर नाम के विशाल नगर में अवतार लिया है, जो नरेन्द्र आदि सब के द्वारा पूज्य हैं, काम रूपी हाथी को मर्दन करने के लिये सिंह हैं और सिंह के शुभ चिन्हों से शोभायमान हैं, ऐसे श्रीवीर जिनेन्द्रदेव सब के द्वारा वंदनीय हैं ।

यस्येह धर्मोस्ति परं पवित्रः, अर्थस्य कामस्य सुखस्य दाता ।
स्वर्गापवर्गस्य च साधकोऽत्र, तं वीरनाथं प्रणमामि देवम् ।२

अर्थ—जिन भगवान वीरनाथ का धर्म परम पवित्र हैं, अर्थ-काम और सुख को देने वाला है, और स्वर्ग-मोक्ष का साधक है; ऐसे देवाधिदेव भगवान् वीरनाथ को मैं नमस्कार करता हूं ।

क्षेत्रे विदेहेऽस्ति च योऽहि धर्म, नाभेयनाथेन चयः प्रवृत्तः ।
द्वाविंशतीर्थेश्वरपालितो यः, वीरेणोन्त्रोक्तोहि स एव धर्म ।३

अर्थ—जो धर्म विदेह क्षेत्र में अनादि काल से चला आ रहा है, भगवान् ऋषभदेव ने इस युग में जिसकी प्रवृत्ति की है तथा भ० अजितनाथ से लेकर पार्श्वनाथ भगवान् तक

बाईस तीर्थंकरो ने जिसका पालन किया है वही धर्म भगवन् महावीर स्वामी ने निरूपण किया है।

सनातनो नित्यमनादिकोसौ, क्षेत्रेक्वचित्क्वापिकदापिकाले।
केन प्रकारेण कथञ्चिदत्र, नोपैति धर्मः परिवर्तन सः।४

अर्थ—यह धर्म सनातन है, नित्य है और अनादि काल से चला आ रहा है। यह धर्म किसी भी क्षेत्र में तथा किसी भी काल में किसी भी प्रकार और किसी भी रूप से वदल नही सकता। यह सदा जैसा का तैसा ही उसी प्रकार वना रहता है।

धर्म क्रियाया. परिवर्तन चेत्, हिसा भवेद्धर्म इहापि कुत्रः।
पुण्यं भवेदाव्यभिचारतश्च, एवं न भूतो न भविष्यतीह।५

अर्थ—यदि काल के अनुसार धर्म क्रियायें वदल जायें तो इस संसार में किसी क्षेत्र में हिंसा भी धर्म हो सकता है अथवा व्यभिचार सेवन से भी पुण्य की प्राप्ति हो सकती है, परन्तु ऐसा न कभी हुआ है और न कभी हो सकता है।

कालद्भवेत्सोपि जनानुकुलः, अक्षानुरक्ता. कथयन्ति जीवाः।
शोच्याः कथंते नविवेकशून्याः, पापक्रिया क्वापि भवेन्नधर्मः।६

अर्थ—इन्द्रियों के विषयो के लोलुपी कितने ही जीव यह कहते हैं कि काल के अनुसार यह धर्म भी मनुष्यों के अनुकूल हो जाता है, परन्तु ऐसे लोग विवेक शून्य हैं और सदा शोचनीय हैं, क्योकि पाप रूप क्रियायें कभी धर्म रूप नही हो सकती।

त्वच्छाशनं पूततमं विशुद्धं, त्वदीयधर्मोऽस्ति परं पवित्रः।
द्वयोस्तयोर्नो मलिनप्रवृत्तिः,ततोऽसि धन्यो जिन वीरनाथ ।७

अर्थ—हे भगवान् ! आपका शासन परम पवित्र है और विशुद्ध है। आपका धर्म भी परम पवित्र है। इन दोनों की प्रवृत्ति कभी मलिन नही होती। इसलिये हे जिन ! हे वीरनाथ ! आप बहुत ही धन्य हैं।

अनादिधर्म स तु जैनधर्मः, द्वेधा मतो निश्चयधर्म आद्यः।
द्वितीयधर्मो व्यवहारनामा, वीरेण चोक्तो जनताहिताय ।८

अर्थ—यह जैन धर्म अनादि काल से चला आ रहा है। वह धर्म दो प्रकार है—पहला निश्चय धर्म और दूसरा व्यवहार धर्म। इन दोनों का स्वरूप भगवान् वीरनाथ ने भव्य जीवों के हित के लिए निरूपण किया है।

क्रियाविहीनो हि सदात्मरूपः, वस्तुस्वभावः स च निर्विकल्प ।
अमूर्तको निश्चयधर्म एष, वीरेण चोक्तो जनता हिताय ।९

अर्थ—यह निश्चय धर्म क्रिया रहित है, सदा आत्म स्वरूप है, आत्म वस्तु के स्वभाव रूप है, निर्विकल्प रूप है और अमूर्त है ऐसा यह निश्चय धर्म भव्य जीवों के हित के लिये भगवान् वीर नाथ ने निरूपण किया है।

क्रियात्मको यो व्यवहारनामा, क्रियास्ति सा या चरणानुकूला
आज्ञानुरूपा तवशासनस्य, क्रियैव सा वीरजिनस्य धर्मः ।१०

अर्थ—जो क्रियात्मक धर्म है वह व्यवहार धर्म कहलाता है तथा क्रिया वह कहलाती है जो सम्यक् चारित्र के अनुकूल

हो और आपके शासन की आज्ञा के अनुकूल हो। ऐसा यह क्रियात्मक धर्म का स्वरूप भगवान् वीरनाथ का कहा हुआ समझना चाहिए।

अस्तीह मुख्यो व्यवहारधर्मः, न तं विना निश्चयधर्मसिद्धिः।
गृहोशिनांचास्ति यतीशिनांवां, क्रियाकरोसौव्यवहारधर्म ११

अर्थ—व्यवहार धर्म भी इसी संसार में मुख्य धर्म है। उसके बिना निश्चय धर्म की सिद्धि कभी नहीं हो सकती। गृहस्थ और मुनि दोनों के लिये क्रिया रूप व्यवहार धर्म का निरूपण किया गया है।

आसप्तमान्तं व्यवहारधर्मः, न तं विना क्वचन मोक्षसिद्धि।
स्वर्गापवर्गस्यचसाधकोस्ति, प्रोक्तःस मुख्योव्यवहार धर्मः१२

अर्थ—सातवे गुण स्थान तक व्यवहार धर्म माना जाता है उसके बिना मोक्ष की सिद्धि कभी नही हो सकती। यह व्यवहार धर्म मुख्य धर्म है और मोक्ष को सिद्ध करने वाला कहा गया है।

शिवस्य मार्गो व्यवहारधर्मः, मार्गो मुनीनां व्यवहारधर्मः।
गुप्त्यात्मकोसौव्यवहारधर्मः, वीरेणचोक्तो जनताहिताय १३

अर्थ—मोक्ष का मार्ग रत्नत्रय भी व्यवहार धर्म है, मुनियों का मार्ग भी व्यवहार धर्म है तथा तीन गुप्तियों का पालन करना भी व्यवहार धर्म है। यह सब व्यवहार धर्म का स्वरूप भगवान वीरनाथ ने भव्य जीवों का हित करने के लिये निरूपण किया है।

महाव्रतस्याचरणं स एव, अणुव्रतस्याचरणं स एव ।
वीरागमेऽसौ व्यवहारधर्मः,वीरेण चोक्तो जनताहिताय ।१४

अर्थ—महाव्रतों का पालन करना भी व्यवहार धर्म है और अणुव्रतों का पालन करना भी व्यवहार धर्म है । भगवान् वीरनाथ के आगम में यह व्यवहार धर्म लोगों का हित करने के लिए भगवान् वीरनाथ ने निरूपण किया है ।

पापाप्रवृत्तिर्जिनमार्गरूपा,यो यो विचारोस्ति स आगमोक्त ।
सएव धर्मोव्यवहारनामा,वीरेणचोक्तोजनता हिताय ॥१५

अर्थ—जिन मार्ग के अनुसार होनेवाली जो-जो शुभ प्रवृत्तियां हैं तथा आगम के अनुकूल जो-जो विचार है, वह सब व्यवहार धर्म है और भव्य जीवों का कल्याण करने के लिये भगवान वीरनाथ ने उस धर्म का निरूपण किया है ।

रीतिः प्रवृत्तिश्च कुलस्य यत्र,आचार अस्तीह जनस्य लोके ।
आज्ञा स्वरूपो जिनशासनस्य,स एव धर्मो व्यवहारनामा ।१६

अर्थ—इस संसार में लोगों के जिनशासन की आज्ञा के अनुकूल जो-जो कुल की रीति और कुल की प्रवृत्ति है, वह सब व्यवहार धर्म कहलाता है ।

शुद्धिश्च पिंडस्य सुभोजनस्य,अपत्यशुद्धिश्च चरित्रशुद्धिः ।
रजःस्वलासूतकपातशुद्धिः,गर्भस्य शुद्धिश्च मलस्यशुद्धिः ।१७

यास्तीह शुद्धिश्चरणानुकूला, वाज्ञानरूपा जिनशासनस्य ।
शुद्धिःसमस्ता व्यवहारधर्मः,वीरेण चोक्तोजनताहिताय ।१८

अर्थ—पिंड की शुद्धि, भोजन की शुद्धि, संतान की

शुद्धि, चरित्र की शुद्धि, रजस्वला की शुद्धि, सूतक-पातक की शुद्धि, गर्भ की शुद्धि, मल की शुद्धि तथा और भी जो-जो सम्यक चारित्र के अनुकूल शुद्धि है, जो-जो शुद्धि जिन-शासन की आज्ञा के अनुकूल है, वह सब प्रकार की शुद्धि व्यवहार धर्म है और वह शुद्धि रूप व्यवहार धर्म भव्य जीवों का कल्याण करने के लिये भगवान वीरनाथ ने निरूपण किया है।

जातिव्यवस्था व्यवहारधर्मः, वर्णाश्रमोसौ व्यवहारधर्मः।
भुक्तिक्रियाचास्तिसएवधर्मः,वीरेणचोक्तोजनताहिताय।१९

अर्थ—जाति-व्यवस्था व्यवहार धर्म है, वर्णाश्रम को मानना व्यवहार धर्म है, शुद्ध और आहारदान पूर्वक भोजन की क्रिया करना भी व्यवहार धर्म है। वह सब धर्म का स्वरूप भव्य जीवो के हित के लिये भगवान वीरनाथ ने निरूपण किया है।

जातिश्च वर्णश्च भवत्यनादिः,स्वरूपभेदाच्च तयोर्विभेदः।
द्वयोस्ततो लक्षणतोपि भेदः,वीरेण चोक्तो व्यवहारधर्मः।२०

अर्थ—इस ससार में वर्ण व्यवस्था भी नित्य है, और जाति व्यवस्था भी नित्य है। तथा दोनो का स्वरूप अलग-अलग है। इसलिये दोनों में भेद भी है और लक्षण दोनों अलग-अलग होने से भी दोनों में भेद हैं। यह सब व्यवहार धर्म भगवान वीरनाथ ने निरूपण किया है।

संस्कारमुख्यो व्यवहारधर्मः,सस्कार हीनस्य च नाधिकारः।
दीक्षासु दानेषु जिनार्चनेषु, द्विजस्यवीरेण जिनेनचोक्तः।२१

अर्थ—इस व्यवहार धर्म में गर्भाधानादिक संस्कार ही मुख्य माने जाते हैं जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य संस्कार-हीन हैं, उनको दीक्षा-दान और जिन पूजा करने का कोई अधिकार नहीं है। यह सब कथन भगवान वीरनाथ ने निरूपण किया है।

कुलेन जात्या भुवि योविशुद्धःसंस्कारभाक्सोस्तु मतोजिनेन
शूद्रस्य नास्तीह च सोधिकारः कार्यं सदा कारणतोनुमेयं।२२

अर्थ—इस संसार में जो कुल और जाति से शुद्ध है उसी के संस्कार हो सकते हैं, ऐसा भगवान जिनेन्द्र देव का मत है। संस्कार करने का अधिकार शूद्रों को नहीं है। क्योंकि वे कुल जाति से शुद्ध नहीं है। किसी भी कार्य का अनुमान उसके कारणों से किया जाता है। इसलिये शूद्रों को संस्कारों के न होने के कारण कुल-जाति अशुद्धता ही समझनी चाहिए।

निकृष्टगोत्रोदयतोऽघपाकात्, सावद्यकर्माश्रितजीवनत्वात्।
जैनस्य मातंगसुतस्य नास्ति,स्पर्शाधिकारोव्यवहार धर्मे।२३

अर्थ—चांडाल यदि जैनधर्म को भी धारण करता हो, तो भी उसके नीचे गोत्र का उदय होने के तथा पाप कर्म का तीव्र उदय होने से उसका जीवन पाप रूप कर्मो के आश्रय होने से व्यवहार धर्म में उसको स्पर्श करने का अधिकार नहीं बतलाया गया है।

संस्पर्शनेऽस्पृश्यजनस्य लोके,स्नानं मुनीनां च सहोपवासैः।
वीरागमे वीरजिनेन चोक्तः, सर्वत्रनाथेन जगद्धिताय।२४

अर्थ—इस संसार में चांडाल आदि अस्पृश्य लोगो का स्पर्श हो जाने मात्र से मुनियों को भी उपवास के साथ-साथ स्नान करना बतलाया है। मुनि स्नान के त्यागी होते हैं तथापि चाडाल आदि का स्पर्श हो जाने पर वे स्नान करते हैं और उपवास करते हैं। इस प्रकार सर्वज्ञ देव भगवान वीर नाथ ने ससार का अन्त करने के लिये अपनें आगम में निरूपण किया है।

न स्पर्श्यशूद्रस्य च पूजनेषु,द्विजेन सार्द्धं सह भोजनेषु।
वैवाहिके कर्मणिवीरधर्मे,नचाधिकारोस्तिकदापिकाले।२५

अर्थ—भगवान वीरनाथ के धर्म में स्पृश्य शूद्रों को न तो भगवान की पूजन करने का भी अधिकार है और न विवाह आदि कार्यों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों के साथ पंक्ति-भोजन करने का अधिकार है।

विवाह सस्कारइहस्वजात्यां,जात्यन्तरेनापिभवेद्विजात्याम।
वीरेण चोक्तो निजशासनेषु, सर्वज्ञनाथेन जगद्धिताय।२६

अर्थ—विवाह संस्कार अपनी ही जाति में होता है, दूसरी जाति वा विजाति मे कभी नही होता है। यही मत सर्वज्ञदेव भगवान् वीरनाथ ने संसार के प्राणीमात्र का हित करने के लिए अपने शासन मे निरूपण किया है।

वैधव्यदीक्षा तव शासनेस्ति,पुनर्विवाहो न मतो हि तासाम।
स्त्रीणाद्विजानां पतिरेक एव,हेवीर ते शासनमस्तिपूतम २७

अर्थ—हे प्रभो! वीरनाथ भगवान्! आपके मत मे

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों की विधवा स्त्रियों को वैधव्य-दीक्षा निरूपण की है। विधवा हो जाने पर उनके लिये पुनर्विवाह का विधान नहीं है। क्योंकि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों की स्त्रियों के एक ही पति होता है। इसीलिए हे वीरनाथ ! आपका शासन अत्यन्त पवित्र माना जाता है।

कथं कदाचारकुरीतिवृत्तिः, पूते पवित्रेस्ति च वीरधर्मे।
कालात्कदाचारमिहात्र धर्मे,वदन्ति ते नाथ विवेकशून्यः।२८

अर्थ—हे नाथ ! यह भगवान् वीरनाथ का धर्म अत्यन्त पवित्र और शुद्ध है। इसमें कदाचार और कुरीतियों की प्रवृत्ति भला कैसे हो सकती है ? जो पुरुष इस पवित्र धर्म में भी काल के अनुसार कदाचार की प्रवृत्ति मानते हैं तथा कहते हैं, वे अवश्य ही विवेकरहित है।

श्रद्धानमात्रागमकस्य मुख्यं, वीरस्य ते तद् व्यवहार धर्मे।
श्रद्धानहीनस्यनचास्तिधर्मः,श्रद्धानमादोहिजिनेनचोक्तम्२९

अर्थ—हे वीरनाथ भगवान् ! आपके कहे हुए उस व्यवहार धर्म में आगम का श्रद्धान करना ही मुख्य धर्म बतलाया है। जो पुरुष आगम का श्रद्धान नहीं करता, उसके किसी प्रकार का धर्म धारण नहीं हो सकता, इसीलिए भगवान् जिनेन्द्र देव ने सबसे पहले श्रद्धान का ही निरूपण किया है।

सुदृङ्निमित्तं जिनदर्शनं हि, भव्य प्रभाते जिनदेवभक्त्या।
करोतियःश्रीजिनबिम्बकस्य,दृष्टिःस एवास्तिचवीरधर्मे।३०

अर्थ—सम्यग्दर्शन का कारण प्रति दिन भगवान्

जिनेन्द्रदेव के दर्शन करना है। जो भव्य पुरुष भगवान जिनेन्द्रदेव की भक्ति पूर्वक प्रातःकाल जिन-बिम्ब का दर्शन करता है उसीको वीरनाथ के धर्म में सम्यग्दृष्टि कहा है।

सम्यक्त्वभावेन यदा विशुद्ध, मनो भवेच्चारुचरित्ररूपम्।
तदा सजैनोजिनराधकोस्ति,आज्ञाप्रधानी भुवि वीरधर्मे।३१

अर्थ—भगवान् वीरनाथ के धर्म में जब यह जीव सम्यक् दर्शन पूर्वक सुन्दर विशुद्ध चरित्र को धारण कर अपने मन को उन दोनो में लगा देता है अर्थात् सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र से जिसका मन शुद्ध हो जाता है, उसी समय वह जैन, भगवान् जिनेन्द्र देव को आराधन करने वाला और आज्ञा प्रधानी माना जाता है।

मिथ्यात्वलीन च सरागभेषा,मूढा न मान्य भुवि देवता सा।
मिथ्यात्वरागादिकदोषहीनः, देवो भवेदेव स वीरधर्मे।३२

अर्थ—भगवान् वीरनाथ के पवित्र धर्म में मिथ्यात्व में लीन रहने वाले और राग-द्वेष रूप भेष को धारण करने वाले मूढ कुदेवता कभी नही माने जाते हैं। जो मिथ्यात्व राग आदि समस्त दोषो से रहित हैं, वे ही देव भगवान् वीरनाथ के धर्म में माने जाते हैं।

क्षुधादयो दोषगणा न देवे, सन्तीह मोहादिककर्मनाशात्।
भुक्ति च देवेकवलादिरूपा,मूचुश्च ये ते हि विवेकशून्याः३३

अर्थ—भगवान् अरहत देव के मोहादिक घातिया कर्मों का नाश हो जाता है, इसी लिये उनके भूख प्यास आदि कोई भी दोष नही होता हैं। जो पुरुष भगवान् अरहन देव

के भी कवलाहार का सद्भाव मानते हैं, वे अवश्य ही विवेक रहित हैं।

दोषो भवेच्चेद्यदि देव एव, सदोषदेवो न कदापि मान्यः।
नोचाखिलज्ञोपिभवेज्जिताक्षो, निर्दोषदेवोस्त च वीरधर्मे।३४

अर्थ—यदि देव में भी भूख-प्यास आदि दोष माने जायं तो इस संसार में दोष सहित देव कभी मान्य नहीं हो सकता है। और न वे सदोष देव कभी भी सर्वज्ञ हो सकते है। जो समस्त इन्द्रियों को जीतने वाला और समस्त दोषों से रहित है, भगवान् वीरनाथ के धर्म में वही देव हो सकता है।

निवृत्तरागस्य जिनस्य वाथ, तदीयमूर्तेरपि वीर धर्मे।
मान्यो न वस्त्रादिकवेषभूषा, समोहरूपो कथितो जिनेन।३५

अर्थ—भगवान् वीरनाथ के धर्म में राग-द्वेष से रहित भगवान् जिनेन्द्र देव के अथवा उनकी मूर्ति के वस्त्राआभरण आदि वेष-भूषा भी नहीं माना जाता। क्योंकि वह वस्त्रभरण की वेष-भूषा मोह रूप है, मोह उत्पन्न करनें वाला है और मोह के उदय से होता है ऐसा भगवान वीरनाथ ने निरूपण किया है।

नैर्ग्रंथ्यरूपं हि शिवस्य मार्गः, वस्त्रादिकं रागकरन्तु तत्र।
अतोयतीनां चजिनेशिनां च, दैगम्बरीतेऽस्ति★सुधर्ममुद्रा।३६

अर्थ—मोक्ष का मार्ग समस्त प्रकार के परिग्रहों से रहित निर्ग्रंथ रूप है, उसमे वस्त्रादि को धारण करना, राग

★ इस सस्कृत स्तुति के रचियतापरम पूज्य मुनिराज सुधर्मसागर महाराज की मुद्रा भी दिगम्बर है।

उत्पन्न करने वाला है। इसोलिये मुनियो की धर्म मुद्रा और जिनेन्द्र देव की धर्म मुद्रा दिगम्बर रूप ही मानी जाती है। हे भगवान्! आपका यही निर्मल मत है।

मुक्तिर्नवासंहननाद्यभावात्,स्त्रीणांहि निर्ग्रंथकताद्यभावात।
प्रमाणभूतो भुविवीरधर्मः,न शासने तेश्तिकदापि बाधा।३७

अर्थ—स्त्रियों के न तो वज्र वृषभ नाराच संहनन होता है और न उनके कभो निर्ग्रंथ अवस्था होती है। इसीलिये उनकी स्त्री पर्याय में कभी मोक्ष-प्राप्ति नही हो सकती। हे वीरनाथ! आपके शासन मे कभी किसी प्रकार की बाधा नहीं आती। इसीलिए भगवान् वीरनाथ का धर्म इस संसार मे प्रमाण माना जाता है।

स्नानेन गंगादि नदीषु मोक्षो, भवेन्न सत्यं बहुजीवघातात्।
तपो हि कर्मक्षयमूल हेतु, मोक्षो भवेत्तेन च वीरधर्मे।३८

अर्थ—हे भगवान् महावीर स्वामिन्! आपके धर्म मे गंगा आदि नदियो में स्नान करने से मोक्ष की प्राप्ति नही मानी है। सो ठीक ही है। क्योकि नदियो में स्नान करने से अनेक जीवो का घात होता है। समस्त कर्मों के नाश होने का मूल कारण तपश्चरण है। इसलिये हे नाथ! आपके धर्म में तपश्चरण से ही मोक्ष होती है।

न वा पशूनां भुवि यज्ञहिंसा, क्रूरा विगर्ह्या तव शासनेषु।
त्वत्तःपरो नास्तिदयामयोहि, धर्मोपि तेवीर दयापरोऽत्र।३९

अर्थ—हे प्रभो वीरनाथ भगवान्! आपके शासन मे अत्यन्त क्रूर और अत्यन्त निंदनीय ऐसी यज्ञ मे होनें वाली

पशुओं की हिंसा कभी नही बतलाई है। इसलिये हे नाथ ! आपके सिवाय अन्य कोई भी मनुष्य आपके समान दयामय नहीं कहलाता है।

स्त्रीणां सतीत्व तव शासनेषु, घातात्मकं प्राणहरं न देव।
दीक्षाविधानं परमं सतीत्वं,तासां मृते भर्तरि दीक्षिते वा।४०

अर्थ—हे देव ! आपके शासन में स्त्रियों का सतीत्व धर्म प्राणों को हरण करने वाला आत्म-हत्या रूप नही बतलाया है। जैसे पति के साथ-साथ स्त्री अग्नि प्रवेश करे। यदि स्त्रियों का पति मर जाय व दीक्षा ले लेवे तो फिर उन स्त्रियो को दीक्षा ही ले लेनी चाहिये, यही उनका परम सतीत्व है। यही आपके शासन में बतलाया है।

बलिप्रदानं लघुदेवनानां, भवेत्पशूनां भुवनेऽतिनिंद्यं।
न चास्ति धर्मस्तव शासनेहि, हिंसाकरं दुःखकरं सुवीर।४१

अर्थ—हे वीरनाथ भगवान् ! चंडी, मुण्डी आदि छोटे-छोटे देवताओं को तीनों लोकों में अनंत निंद्य हिसा करने वाला और तीव्र दुःख देने वाला पशुओं का बलिदान आपके शासन में कभी धर्म रूप नहीं बतलाया है।

सुराप्रदानं ह्यतिनिन्द्यरूपं, कुत्सं न योग्यं लघुदेवतानाम्।
नापि द्विजानां तव शासने च,ह्यतोस्तितेवीर पवित्रधर्मः।४२

अर्थ—हे वीरनाथ भगवान् ! आपके शासन में न तो चंडी मुण्डी आदि छोटे-छोटे देवताओं को अत्यन्त निंद्य और घृणित ऐसा मद्य-सेवन बतलाया है और न ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों के लिए मद्य-पान का विधान बतलाया है। हे वीर !

इसीलिये आपका यह धर्म अत्यन्त पवित्र माना जाता है।

धर्मस्य कार्ये च शुभे प्रसगे,हिंसान मान्या तव शासनेऽस्ति ।
जीवस्य बाधा न दयामयेषु, हे वीर धर्मेषु सुखाकरेषु ।४३

अर्थ—हे वीरनाथ ! आपके शासन में किसी भी धर्म कार्य के समय अथवा किसी भी शुभ कार्य मे हिंसा करने का विधान नही वतलाया है। सो ठीक ही है, क्योकि समस्त जीवो को सुख देने वाले और दयामय धर्म मे जीवो को किसी प्रकार की बाधा कभी हो ही नही सकती।

अपक्वपक्वस्य पलस्य नास्ति,शुष्कस्यवा भक्षणमत्र मान्यं ।
जीवाभिघातादघकारणत्वाद्दयामये वीर सुशासने ते ।।४४

अर्थ—हे वीरनाथ भगवान् ! आपके दयामय शासन मे कच्चे पक्के वा सूखे हुए मास का भक्षण करना कभी भी योग्य नही माना गया है। क्योकि सव तरह मास-भक्षण में अनन्त जीवो का घात होता है और इसीलिये उससे महा पाप उत्पन्न होता है।

देवस्य धर्मस्य च कारणेन, मांसो न भक्ष्यस्तव शासनेऽत्र ।
दयामयो वीर यतोहि धर्मः,जीवाभिघातो न कदापियोग्यः४५

अर्थ—हे प्रभो वीरनाथ भगवान् ! आपके दयामय शासन में किसी भी देव वा धर्म के कारण भी मांस-भक्षण करना योग्य नही बतलाया है सो ठीक ही है, क्योकि धर्म का स्वरूप दयामय है। फिर उसमें कभी भी जीवो का घात करना योग्य नही हो सकता।

निरागसानां न मृगादिकानामांखेटक क्वापि कदापि योग्यं ।
प्राणाभिघातादिहशासनेते,गीतोह्यहिंसापरमोहि धर्मः ।४६

अर्थ—हे वीरनाथ भगवान् ! आपके पवित्र शासन में निरपराध हिरण आदि जीवों का शिकार खेलना कभी किसी क्षेत्र में भी योग्य नहीं बतलाया है। क्योंकि उसमें जीवों की हिंसा अवश्य होती है। हे नाथ ! इसीलिये आपका यह धर्म "अहिंसा परमो धर्मः" अर्थात् अहिंसा ही परम धर्म है, इस प्रकार संसार भर में प्रसिद्ध है।

वेश्यापरस्त्र्यादिकसेवनं हि,न शासने वीर तवास्ति धर्मः ।
द्यूतोतिनिंद्यश्च यतो न धर्मः,परंपवित्रोभुवि वीरधर्मः ।४७

अर्थ—हे भगवान् वीरनाथ ! आपके शासन में वेश्या-सेवन वा पर स्त्री-सेवन भी धर्म नहीं माना है। और न अत्यन्त निंदनीय ऐसा जूआ खेलना धर्म माना है। इसका भी कारण यह है कि इस संसार में आपका ही धर्म पवित्र है और इसीलिये इन सब का निषेध है।

धर्मो न वाऽगलितनीरपानं, भुक्तिर्निशायामघपंचसेवा ।
वीर प्रभोस्तेस्ति च शासनेवा,दयाकरे शान्तिकरे पवित्रे ।४८

अर्थ—हे महावीर स्वामिन् ! आपका शासन दया करने वाला और अत्यन्त पवित्र है। इसीलिए आपके धर्म में बिना छना पानी पीना नही बतलाया है, न रात्रि-भोजन बतलाया है और न पांच प्रकार के पापों का सेवन करना बतलाया है।

इज्या महेज्या नवदेवतानां, चैत्यप्रतिष्ठा स्नपनं दिनस्य ।
वात्सल्यभावंनिजधार्मिकेषु,वीरेणचोक्तो व्यवहारधर्मः ।४९

अर्थ—अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, जिन-वाणी, जिन धर्म, जिनालय और जिन-प्रतिमा, ये नौ देवता कहलाते हैं। इन नौ देवताओं की पूजा व महापूजा करना, जिन प्रतिमा की प्रतिष्ठा करना, भगवान् जिनेन्द्र देव का अभिषेक करना और अपने धर्मात्मा भाइयो में वात्सल्य भाव धारण करना आदि सबको भगवान् वीरनाथ ने व्यवहार धर्म बतलाया है।

वीरस्य धर्मस्य कथास्ति लोके, परं पवित्रा निरवद्यकस्य।
ता वक्तुमोशोनसुराधियोपि,धन्यस्ततस्त्वंजिनवीरनाथ ।५०

अर्थ—हे जिन ! हे वीरनाथ भगवान् ! आपका धर्म सदा पाप रहित है, इसीलिए उसकी कथा भी इस संसार में परम पवित्र मानी जाती है। हे प्रभो ! ऐसी उस आपके धर्म की कथा को कहने के लिये इन्द्र भी समर्थ नही है। हे वीरनाथ ! इसीलिये आप इस समस्त ससार में धन्य महाधन्य माने जाते हैं।

धीरोसि वीरोस्यतिवीरकोऽसि. योवीरनाथोभुविवर्द्धमान,ः।
पूज्योमहावीरइतिप्रसिद्धस्त्वं, सन्मतीशस्त्वमसिप्रबुद्धः ।५१

अर्थ—हे भगवन् वीरनाथ स्वामिन् ! आप धीर वीर हैं, पूज्य हैं, अनन्त ज्ञानवान् हैं, वीरनाथ हैं, वर्द्धमान हैं, महावीर हैं, सन्मति है। हे स्वामिन् ! आप अनन्त नामों से प्रसिद्ध हैं।

आदर्श भावना

(रचयिता—ब्र० सुन्दरलाल जैन)

(दोहा)

ब्रह्म ज्ञान को प्रणमि कर, सुमत खड्ग ले हाथ ।
भवछंदन हित भावना, भावों भवि दिन रात ।।

(छद हरिगीतिका)

है जिन कथन का ये मथन, जिनवर धरम की बाट ले ।
नर भव मिले का सार ये, बधन करम का काट ले ।। १

घटती हुई घटना हमेशा, सामने दिखलात है ।
फिर भी न हो होशियार तो, इस भूल की क्या बात है ।। २

आया यहाँ ऐ आत्मन, जिस मनसुआ को बांध के ।
जुट जा उसी में गति बदल ले, कार्य निज को साध ले ।। ३

अब भी अगर गाफिल रहा, तो निशि अधेरी आयेगी ।
पथ भ्रष्ट हो भ्रमता फिरे, ना राह घर की पायेगी ।। ४

जीवन संगाती मित्र से ना, फेर मिलना होयेगा ।
भव बन विकट मे हो हताश, निराश हुआ रोयेगा ।। ५

ले खोल आंखें शीघ्रता से, चेत क्या कर रहा है ।
क्यो मोह मद के नशे में, बन बावला फिर रहा है ।। ६

तृप्ती करन के हेत फिरता, करत दिन को रात है ।
तू सोचता सो होय ना, आशा असम्भव बात है ।। ७
होती तो अबतक होय जाती, आश पूरण बावरे ।
एक ना दो चार ना, बीते अनन्ते काल रे ।। ८

पूरव भवों में आत्मन, क्या क्या न तूने पा लिया ।

फिर भी हमेशा तरसता ही, रहा ऐ मोरे जिया ॥ ९

थोड़ा सा इतना और हो, ये लालसा करता रहा ।
सो आस पूरी हो न पाई चिरकाल मे रटता रहा ॥ १०

अब आनकर मौका मिला, तर समुद्र तट पर आय जा ।
दे तोड वधन तज झिझक मन का मनोरथ पाय जा ॥ ११

आनन्द उदधि मे मार गोता हृदय के पट खोल ले ।
आतम अनुपम रतन को ला, ढूंढ करके तोल ले ॥ १२

यदि आ किनारे पर न चेता, लौट वापिस जायगा ।
नर तन अमोलक रतन को, ले डालकर पछितायगा ॥ १३

ले जीत वाजी मिली को, कर से न जाने दीजिये ।
ऐसा न मौका फेर पावे, जान साची लीजिये ॥ १४

काल की चक्की हमेशा, चल रही तैयार हो ।
जावे अचानक पिस मनसुआ, किया सब वेकार हो ॥ १५

तू सोचता कुछ और है, यहा हो रहा कुछ और है ।
है सूझ पक्की काल की, तेरी वृथा की दौड है ॥ १६

इसलिये मन के मथन को, दे छोडकर तत्काल ही ।
मतकर भरोसा काल का बन काल का तू काल ही ॥१७

अय लाल सुन्दर फिरत क्या, तू देखता चहु ओर है ।
जहां काल की न दाल गलती, ढूढ ले वह ठौर है ॥ १८

कर यतन जो तुम से बने, जितना जलद हो दीजिये ।
आदर्श बनना चाहता तो, आशा को तज दीजिये ॥१९

(दोहा)

सोचत सोचत ही गये, बीत अनन्ते काल ।
इस भव समुद्र अथाह को, बाध सका ना पाल ॥

मंगलाष्टक

संघ सहित श्री कुन्दकुन्द गुरु, वदन हेत गये गिरनार।
वाद पर्‌यो तहँ सशयमति सों, साक्षी बदी अम्बिकाकार॥
सत्य पथ निर्ग्रन्थ दिगम्वर, कही सुरी तहँ प्रकट पुकार।
सो गुरु देव बसो उर मेरे, विघ्नहरण मंगल करतार॥ १

स्वामी समंतभद्र मुनिवर सों, शिवकोटि हट कियो अपार।
वदन करो शंभु पिंडी को, तब गुरु रच्यो स्वयम्भू भार॥
वदन करत पिंडी का फाटी, प्रगट भये जिन चन्द्र उदार।
सो गुरुदेव० ॥ २

श्री अकलंकदेव मुनिवरसों, वाद रच्यो जहं बौद्ध अवार।
तारादेवी घट में थापी, पटके ओट करन उच्चार॥
जीत्यो स्याद्वाद बल मुनिवर, बौद्ध बोध तारा मद गार।
सो गुरुदेव० ॥ ३

श्रीमत विद्यानंदि जबै, श्रीदेवागम थुति सुनि सुधार।
अर्थ हेतु पहुंच्यो जिनमन्दिर, मिल्यो अर्थ तहं सुखदातार॥
तब व्रत परम दिगम्बर को धर, परमत को कीनो परिहार।
सो गुरुदेव० ॥ ४

श्रीमंत मानतुंग मुनिवर पर, भूप कोप जब कियो गवार।
बंद कियो तालों मे तब ही, भक्तामर गुरु रच्यो उदार॥
चक्रेश्वरी प्रगट तब व्है के, बंधन काट कियो जयकार।
सो गुरुदेव० ॥ ५

श्रीमत वादिराज मुनिवरसो, कह्यो कुष्ठि भूपति जिह वार ।
श्रावक सेठ कह्यो तिह अवसर, मेरे गुरु कचन तन धार ।।
तबहि एकीभाव रच्यो गुरु, तन सुवरण दुति अपार ।
सो गुरुदेव० ।। ६

श्रीमत कुमुदचन्द्र मुनिवरसो, वाद पर्यो जह सभा मझार ।
तबहि की कल्याण धाम थुति, श्रीगुरु रचना रची अपार ।।
तब प्रतिमा श्री पार्श्वनाथ की, प्रगट भई त्रिभुवन जयकार ।
सो गुरुदेव० ।। ७

श्रीमंत अभयचन्द्र गुरु सो, जब दिल्लीपति इमि कही पुकार ।
कैं तुम मोहि दिखावहु अतिशय, कै पकरो मेरो मत सार ।।
तब गुरु प्रगट अलौकिक अतिशय,तुरत हर्यो ताको मद सार ।
सो गुरुदेव० ।।८

दोहा—विघ्न हरण मगल करण वाछित फल दातार ।
वृन्दावन अष्टक रच्यो, करौ कठ सुखकार ।।

॥ श्री जिनाय नम ॥

१००८ देवाधिदेव महावीर की स्तुति

सकल श्रेष्ठ गुण राशि विराजित जिसमे फैला सुयश महान्
उस यश से प्रभु आप सुशोभित महावीर जिनपति भगवान ।
ज्यो नक्षत्र वृंद से वेष्टित कुद पुष्प सम अति अवदात ।
शशि मडल नभ में शोभित हो त्यों भामंडल से आप उदात ॥

अर्थ—हे वीर भगवान् ! आप अपने महान गुणो से उत्पन्न दीप्तमति निर्मल कीर्ति से प्रकाश मान हुये जैसे कि आकाश मे तारागणो के बीच चन्द्रमा अपनी कुन्द पुष्प के समान घवल कीर्ति वाली चान्दनी से शोभित होता है ।

प्रभो ! आपका शासन वैभव गुण अनुशासित महाविशाल ।
सदा रहा जयवंत आज भी, जबकि चल रहा खल विकराल ।
दोष चाबुकों से बचने में जो होते हैं पूर्ण समर्थ ।
स्तुति करते वे, ज्ञान ज्योति से अन्य मतो को करके व्यर्थ ॥

अर्थ—हे जिनदेव ! इस कलिकाल मे भी आपके श्रद्धा, ज्ञान, चरित्र गुनमय अनुशासन (आज्ञा के पालन) मे तत्पर भव्य जीवो को ससार से छुडाने वाला आपका शासन वैभव (धार्मिक विधान रूपी वैभव) जयवन्त है। आपके इस घर्म शासन की मिथ्यात्व, राग द्वेष आदि कुशाघात चाबुको की मार को दूर करने वाले यानि आध्यात्मिक दोषो से रहित तथा लौकिक देवों के प्रभावको क्षीण करने वाले गणधर आदि ऋषिगण आपके शासन की स्तुति (प्रशसा) करते है ।

स्याद्वाद सिद्धान्त आपका इष्ट दृष्ट अविरोध स्वरूप।
इसीलिये निर्दोष यही है और सभी हैं वाद विरूप।
अन्य वाद स्याद्वाद नही है दृष्ट इष्ट से उनका घात।
हे मुनिनाथ ! सभी वे दूषित अनपेक्षित शिवहर एकान्त ॥

अर्थ—हे मुनीश्वर ! आपका 'स्यात्' पदयुक्त स्याद्वादमत (विभिन्न दृष्टिकोणो से वस्तु के समस्त धर्मो का यथार्थ प्रतिपादन करने वाला अनेकान्तवाद) प्रत्यक्ष, वा अनुमान आगम आदि प्रमाणो के अविरुद्ध (अनुकूल) होने से निर्दोष है। इसके सिवाय अन्य एकान्तवाद वास्तव मे वाद वस्तुत्व का प्रतिपादन या प्रतिपादक) नही है क्योकि वह स्याद्वाद रूप नही है तथा प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रमाण से वाधित है।

आप सुरासुर पूजित हो प्रभु ! केवल लब्धि रमा के कन्त।
नास्तिक और परिग्रह प्रेमी नही चाहे तुमको भगवन्त।
तीन लोक के मगलकारी हितकारी हो आप जिनेन्द्र।
आवृत रहित ज्योति के धारी उज्ज्वल धामा श्री वीरेन्द्र ॥

अर्थ—हे वीर भगवान् ! आप सुर-असुर आदि भव्य प्राणियो के द्वारा पूज्य है। मिथ्यादृष्टि जीव अपने दुराशय (मिथ्यात्व दुर्भावना) से आपको प्रणाम नही करते। आप त्रिलोकवर्ती जीवो के हितकारी है। तथा निरावरण केवलज्ञान, ज्योति से प्रकाशवान मोक्षथल को प्राप्त कर चुके हैं। हमारे पास वह जीभ नही हम कैसे गुण वर्णन करें।

उस गुण भूषण के धारी हो जो सभ्यो को रुचता है।
अन्तर्वाह्य विभव लक्ष्मीयुत विज्ञ जनों का जचता है।
निज प्रकाश जिन ज्योतिमग्न हो नही किसी के हो आधीन।
स्वीय काति से दीप चन्द्र भी हार मानता बनकर दीन ॥

अर्थ—हे वीर प्रभो ! आप समवशरण सभा मे विद्यमान सभी भव्य सभ्यों को सुरुचिकर है। आप अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान यथाख्यात

चरित्र, अनन्तवीर्य आदि गुणो से विभूषित है तथा आठ प्रातिहार्य आदि लक्ष्मी से रमणीय है। आप अपनी आध्यात्मिक तथा शारीरिक कान्ति द्वारा अपनी कान्ति मे निर्भर, लौकिक जनता की रुचिकर हिरण के लाछनवाले चन्द्रमा को जीतने वाले है।

सब लक्ष्मीयुत वीर आप ही माया मद का कुछ नहीं लेश।
यम दम नियम त्याग, जप तप का दिया सदा सुन्दर उपदेश।
जन मुमुक्ष, मन वाछित-दाता लक्ष्मीप्रद निर्माय अशेष।
शिवकारी सब दुःख हारी तुमसे रहे कर्म नहि शेष ॥

अर्थ—हे जिनवीर ! आप मुमुक्ष भव्यजनो की कामना पूर्ण करने वाले है और मद (अभिमान) माया (छलकपट) आदि दोषो से रहित है। आपका समस्त पदार्थों का ज्ञान सबके लिए कल्याणकारी है। आपने आध्यात्मिक लक्ष्मीवाले निष्कपट यम (अहिंसादिक व्रत) और इन्द्रियो का दमन करने वाले सम्यक् चारित्र का उपदेश दिया है।

ज्यों गिरि भेदन करने वाले मद जल निर्भर युक्त कपोल।
सकल सुलक्षणयुत गजेन्द्र का गमन होय स्वाधीन अमोल।
त्यों शम शान्ति सुरक्षण दाता अप्रमत्त जन के आधार।
वीर ! आपका ज्ञान जगत में अति विशिष्ट शिव मगल कार ॥

अर्थ—जिस प्रकार मद भरता हुआ उत्तम बश का महान् मदोन्मत्त गजराज (हाथी) अपने मार्ग मे रुकावट डालने वाली पर्वत की भीतो (कटनियो) की अपनी विशाल दृढ़ दान्तो द्वारा उखाड़ फेंककर अपना गमन निरावधान बनाता है। उसी प्रकार कषायों का शान्त करने वाले सिद्धान्तो (आगमो) की रक्षा करने वाली अहिंसा, अभयदान करने वाले आपका बिहार भी निरावाध हुआ। यानी अरहन्त अवस्था मे आपने सर्वत्र निरावाध बिहार करके विषय कषायो के उपशमनरूप शान्ति का तथा अहिंसा रूप अभयदान का प्रचार किया।

यद्यपि परमत भी गुण सपत्तियुत जिनमें मधुर वचन-विन्यास।
जनता के मन को भो मोहे तद्‌पि विकल एकान्त प्रयास।
नय त्रिभाग अवतस कलायुत प्रभो ! आपका मत अवदान।
है समतभद्रान्वित यह ही सव दोपो से रहित उदात॥

अर्थ—हे जिनेन्द्र देव ! अन्य एकान्तवादी मत प्रचारको की वचनकला (वोलने का ढग) वाहर मे (कानो के लिये) प्रिय मधुर प्रतीत होती है परन्तु वे वचन वास्तव मे आध्यात्मिक हितकारी गुणो से विकल (रहित या अधूरे) हैं। यानी उनके द्वारा आत्मा के समस्त गुणो का अभ्युदय नही होता। परन्तु आपके वचन समस्त नयो से (स्याद्वाद से) एव भक्ति (श्रद्धा) से सुशोभित (अलकृत) है। अत आपका शासन (मत्त) सव तरफ से पूर्ण और भद्र कल्याणकारी है। आपके स्याद्वाद द्वारा ज्ञान परिष्कृत होता है। पारस्परिक विचार सघर्ष दूर होता है और आपके द्वारा निरूपित सिद्धान्त द्वारा आत्मश्रद्धा एव देव, आगम, गुरू की भक्ति जाग्रत होती है। जिससे मत् श्रद्धा ज्ञान चरित्र द्वारा आत्मा का पूर्ण उत्थान होता है।

इस प्रकार महान् प्रभावक, महान् तार्किक विद्वान सदा, शास्त्रार्थ विजेता, आद्य स्तुतिकार भविष्यवक्ता तीर्थंकर श्री समन्तभद्र आचार्य रचित श्री भगवान महावीर की स्तुति।

पूज्य श्री उमा स्वामी जी महाराज
रचियता तत्वार्थ सूत्र तथा श्रावकाचार
(श्री दि० जैन नया मन्दिर जी से फोटो प्राप्त)
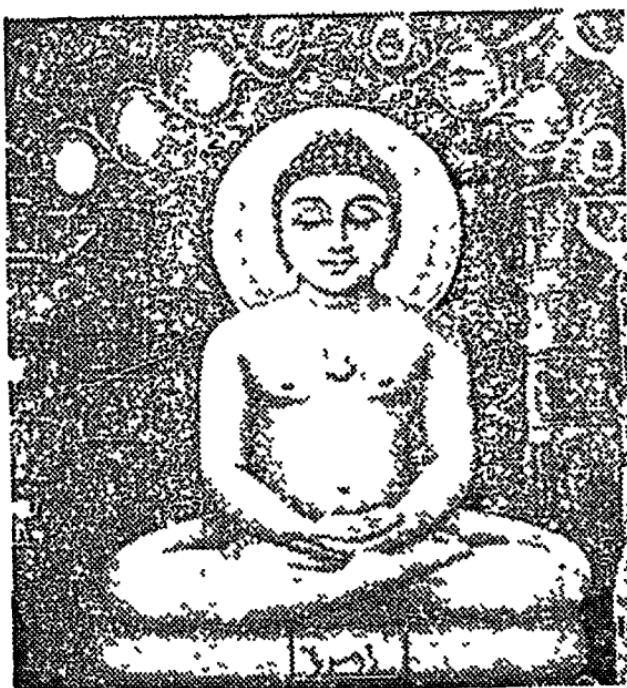
भगवान महावीर

श्री शान्तिसागराय नमः

भगवान् श्री उमास्वामी आचार्य विरचित

श्री उमास्वामी श्रावकाचार

टीकाकार का मङ्गलाचरण

श्रीमत वीर जिनेश के, नमूं चरण चितलाय ।
भवभय भञ्जन जानके, लही शरण सुखदाय ॥

अर्थ—जिन भगवान् वीरनाथ परम तीर्थंकरका कहा हुआ समस्त तत्त्वोका अनेकान्तमय स्वरूपधर्म, समस्त विद्वानोंको मान्य है। और इसीलिये जिनका ज्ञान सर्वश्रेष्ठ माना जाता है ऐसे भगवान् महावीर स्वामी आप सब लोगोको श्रेष्ठ बुद्धि प्रदान करे ॥१॥

अर्थ—पहलेके आचार्योंने जो श्रावकचार निरूपण किये हैं उनको देखकर केवल मोक्ष प्राप्त करनेके लिए मैं इस श्रावकाचारका निरूपण करता हूँ। भावार्थ—अन्तिम तीर्थंकर श्रीवीर भगवान्‌ने जो उपदेश दिया है उसकी द्वादशांगरूप रचना गणधरदेवोने की है। उन बारह अगोमे से सातवे अगमें उपासकाध्ययनका निरूपण है। उसको जानकर अर्हद्वली आदि आचार्यों ने श्रावकाचारोका निरूपण किया है, उन्हीको देखकर आचार्य उमास्वामीने यह श्रावकाचार बनाया है। उन्होंने अपने मनसे इसमें कुछ नही लिखा है। इस ग्रन्थमें जो कुछ वर्णन है वह सब वीर भगवान् का ही वचन समझना चाहिये ॥२॥

अर्थ जो इस अपार ससारके दु.खोसे निकालकर जीवोको कभी नाश न होनेवाले अक्षय अनन्त मोक्षसुख में धारण कर देता है उसी को यथार्थ धर्म समझना चाहिये। भावार्थ—भगवान् जिनेन्द्रदेवका कहा हुआ दयामय धर्म ही इन ससारी जीवोको जन्ममरणरूपी दुःखसे निकालकर मोक्षसुखमे पहुँचा देता है इसलिये कहना चाहिये कि इस ससारमें दया ही धर्म है ॥३॥

अर्थ—सम्यग्दर्शन, सम्यग्यज्ञान और सम्यक्चारित्रकी एकता ही मोक्षका मार्ग है। धर्म कार्योमे अन्यन्त निपुण ऐसे गणधरदेव इस रत्नत्रयको ही मोक्षमार्ग बतलाते है तथा यही रत्नत्रय एक देश रूप गृहस्थोका धम कहलाता है ॥४॥

अर्थ—भगवान् तीर्थंकर परमदेवको देव मानना, दयामय धर्मको धम मानना और निर्ग्रंथ गुरु को गुरु मानना सम्यग्दर्शन है। तथा देव शास्त्र गुरुका यह श्रद्धान निर्दोष होना चाहिये तभी सम्यग्दर्शन होता है। ऐसा गणधर देवोने कहा है ॥५॥

अर्थ—अदेव वा कुदेवको देव मानना, अधर्मको धर्म मानना और कुगुरुको गुरु मानना मिथ्यादर्शन है। भावार्थ—रागद्वेष को धारण करनेवाले ब्रह्मा विष्णु महादेव आदिको देव मानना मिथ्यादर्शन है। हिसा और पापमय अधर्मको धर्म मानना मिथ्यात्व है तथा विषयोकी लालसा रखनेवाले आरम्भ परिग्रह सहित कुगुरुओको गुरु मानना मिथ्यात्व है। इसी प्रकार यथार्थ देव शास्त्र गुरुमें देव शास्त्र गुरुकी श्रद्धा न करना भी मिथ्यात्व है ॥६॥

अर्थ—भूख, प्यास भय, द्वेष, राग, मोह, बुढ़ापा, रोग, चिन्ता, मरण, मद, स्वेद वा पसीना, रति, खेद, आश्चर्य, विषाद, जन्म और निंद्रा ये अठारह दोष कहलाते हैं। ये सब दोष बडी कठिनतासे छूटते है। जिन भगवान् के इन अठारह

दोषोमें से कोई भी दोष नही है वे ही तीनो लोकोके स्वामी देवाधिदेव समझे जाते है ॥७॥ ॥८॥

अर्थ—जो इन ऊपर लिखे अठारह दोषोसे रहित है वही विष्णु है, वही ब्रह्मा है, वही देव है वही महादेव है वही बुद्ध है वही समस्त देवोसे तथा भवनवासी व्यतर ज्योतिषी देवोंसे पूज्य है, वही निर्मल है, वही सर्वज्ञ है वही सबका हित करने वाला है, वही सर्वोत्कृष्ट है, वही परमेश्वर है वही उत्कृष्ट ज्ञानी, वही तीनों लोको का स्वामी है, वही उपदेशक है और वही देवाधिदेव कहलता है ॥९॥ ॥१०॥

अर्थ—जो आत्माका स्वभाव इस अपार ससार रूपी महा सागर में पड़े हुए जीवो को निकालकर ऊपर मोक्षमें धारण कर देता है वही धर्म कहलाता है तथा वही धर्म साक्षात् मोक्षके सुख दंनेवाला हैं। भावाथ—ससारका जन्ममरण रूप दु ख एक धर्मके धारण करनेसे ही नष्ट होता है तथा उसीसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। इसीलिये भव्य जीवोको ऐसे *उत्तम धर्मका सेवन अवश्य करते रहना चाहिये ॥११॥

अर्थ—उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तमशौच उत्तम सत्य, उत्तम सयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिंचन्य और उत्तम ब्रह्मचर्य इस प्रकार धर्मके दश भेद है। यह धर्म भगवान् जिनेन्द्रदेवका कहा हुआ है। स्वर्गादिकके सुख

---

*धर्मके दो भेद है एक क्रियात्मक और दूसरा अक्रियात्मक मुनियोका तेरह प्रकाशका चारित्र वा गृहस्थोका बारह प्रकारका चारित्र सब क्रियात्मक धर्म है। इसीको व्यवहार धर्म कहते है। यह व्यवहार धर्म ही निश्चयरूप अक्रियात्मक धर्म का साधक है और इसीलिये यह अवश्य पालन करने योग्य धर्म मुख्य माना जाता है।

और मोक्षके सुख देने वाला है। वह धर्म चैतन्य स्वरूप है और इसीलिये मोक्षका कारण है। अतएव विद्वान पुरुषो को इसका परिपालन अवश्य करते रहना चाहिये ॥१२॥

अर्थ—मिथ्यादृष्टियोके द्वारा कहे हुए हिंसामय धर्मको जो लोग धर्म बतलाते है उन्हे भी पापी ही समझना चाहिये। भावार्थ—कितने ही अज्ञानी पुरुष यज्ञमे प्राणियोकी हिंसा करने को धर्म बतलाते है। सती होकर आत्मघात करने मे धर्म मानते है। देव देवीयोके सामने बलिदान करनेको धर्म मानते है विधवा विवाह विजातीय विवाह और अस्पृश्योका स्पर्श करना आदि निंद्य कार्योको धर्म मानते है। परन्तु ये सब कार्य हिंसा और पापाचरणके पोषक हैं इसलिये ये धर्म कभी नही हो सकते। धर्म तो दयामय ही होता है और उसीके सेवन करने से सुख पुण्य की प्राप्ति हो सकती है ॥१३॥

अर्थ—जो महाव्रतोको धारण करते हैं, जिनका मन तत्व ज्ञानसे ही सदा भरपूर रहता है और जो धर्मके मुख्य उपदेशक माने जाते है तथा जो परम दिगम्बर पाणिपात्रमें ही आहार लेने वाले है ऐसे आचार्य ही गुरु कहलाते है ॥१४॥

अर्थ—जो गुरु दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्राचार, तप आचार, और वीर्याचार, इन पचाचारोके विचार करने और पालन करनेमे निपुण है अत्यन्त शांत वा विषय कषायोसे सर्वथा रहित है जो समस्त परीषहोको जीतने वाले है अतरग बाह्य दोनो प्रकारके परिग्रहोसे सर्वथा रहित है ऐसे दिगम्बर साधु ही परम गुरु[1] कहे जाते है ॥१५॥

१—गुरु शब्दका अर्थ बडा है। जो गुण वय चारित्र आदिसे बडे है वे ही गुरु है। गुरु के अनेक भेद है। धर्मगुरु दीक्षागुरु गृहस्थदाक्षागुरु, मातापिता गुरु, विद्यागुरु, सत्तागुरु

अर्थ—पृथ्वी खेत गाव आदिको क्षेत्र कहते हैं महल मकान आदिको वस्त्र कहते है, सोना चांदी जवाहरात आदिको धन कहते है। गेहूं जौ चावल आदिको धान्य कहते हैं, स्त्री दासी दास द्विपद कहलाते है, घोड़ा गाय भैंस आदि चतुष्पद सिहासन गद्दी पाटा आदि आसन है पलग खाट बिछौना आदि शयन कहलाते हैं वस्त्रोंको कुप्य कहते है और वर्तनोंको भांड कहते है ये दस प्रकार के बाह्य परिग्रह कहलाते है ॥१६॥

अर्थ—मिथ्यात्व, वेद, राग, द्वेष, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, क्रोध, मान, माया, लोभ ये चौदह अतरग परिग्रह कहलाते हैं ॥१७॥

अर्थ—जो इच्छानुसार भोजन करने मे, इच्छानुसार भोगोपभोगोंके सेवन करनेमें और विषयकषायोंकी लालसामें लगे रहते है, जो कामसे पीड़ित है और मिथ्या उपदेश देने वाले हैं ऐसे कुगुरुओं को सज्जन पुरुष कभी गुरु नही मानते है। भावार्थ—जो विषय कषायोकी लालसासे रहित है और आरभ परिग्रहके सर्वथा त्यागी हैं ऐसे आत्म-ज्ञानी दिगम्बर साधु ही गुरु कहलाते है। चिमटा जटा सोटा आदिको रखने वाले हिंसा

और द्रव्यगुरु आदि। अट्ठाईस मूलगुणके धारक मुनि धर्म गुरु है। छत्तीस गुणके धारक आचार्य दीक्षागुरु है। गृहस्थधर्मकी दीक्षा शिक्षा देनेवाले प्रायश्चित देनेवाले धर्मसम्बन्धी समस्त क्रियाकांड करनेवाले और श्रावक धर्मकी व्यवस्था करनेवाले गृहस्थाचार्य गृहस्थ गुरु है पालन पोषण करनेवाले माता पिता गुरु हैं। विद्या पढ़ानेवाले विद्यागुरु है, राजा आदि अधिकारी वर्ग सत्ता गुरु है। धनी द्रव्यगुरु है रत्नत्रयको धारण करनेवाले सयमी सयमगुरु है। इस प्रकार गुरुके अनेक भेद है। इन गुरुओका यथायोग्य आदर सत्कार करना गृहस्थों का कर्तव्य है।

और पापकी प्रवृत्ति करनेवाले हिताहितके विवेकसे रहित मिथ्या साधु कभी गुरु नही कहला सकते ॥१८॥

अर्थ—यदि स्त्री पुत्र शस्त्र आदिको रखने वाले रागी द्वेषी देव ही देव माने जायेंगे ब्रह्मचर्यको पालन न करने वाले साधु ही गुरु माने जायेंगे और दया रहित धर्म माना जायेगा तो फिर कहना चाहिये कि यह सबसे बडे दुःखकी बात है। हां, फिर तो इस जगतको नष्ट हुआ ही समझो। भावार्थ—वीतराग सर्वज्ञ और हितोपदेशी ही देव होते है, वस्त्रालकार, आयुध, वाहन आदि सामग्रीको धारण करने वाले कभी देव नही हो सकते। चौवीस प्रकारके परिग्रहसे रहित वीतराग (दिगम्बर) साधु ही गुरु होते है विषय कषायोमे लीन आरम्भ परिग्रहको धारण करने वाले पाखडी साधु कभी गुरु नही हो सकते। इसी प्रकार पापक्रियासे रहित दयाधर्म ही श्री जिनेन्द्रदेवका कहा हुआ धर्म है। पशुवध आदि पापक्रियाओका उपदेश देने वाला धर्म कभी यथार्थ धर्म नही हो सकता ॥१९॥

अर्थ—जो पुरुष ऊपर कहे हुए देव शास्त्र गुरुमें दृढ श्रद्धान रखता है उसको सम्यग्दृष्टी समझना चाहिये। जो पुरुष इन यथार्थ देव शास्त्र गुरुमे संशय रखता है, उसे मिथ्यादृष्टि समझना चाहिए ॥२०॥

अर्थ—जीव अजीव आस्रव वध सवर निर्जरा और मोक्ष इन सातो तत्वो का यथार्थ श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। अथवा निश्चय नयसे अपने आत्माके शुद्ध स्वरूपमे लीन हो सम्यग्दर्शन है। यह समग्यदर्शन पच्चीस दोषोसे रहित होता है ॥२१॥

भावार्थ—व्यवहार सम्यग्दर्शन, निश्चय सम्यग्दर्शनका साधक है। निश्चय सम्यग्दर्शन तो शुद्ध है ही। किन्तु व्यवहार सम्यग्दर्शनको भी पच्चीस दोषोसे रहित ही पालन करना चाहिये।

अर्थ—जो भव्य जीव पचेन्द्रिय है पूर्ण पर्याप्तक है और जिसको काल लब्धि आदि लब्धिया प्राप्त हो चुकी है ऐसे भव्य जीवोको ही सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है तथा निसर्ग और

अधिगम इन दो प्रकार से उत्पन्न होता है। भावार्थ—सम्यग्दर्शन आत्माका एक गुण है, मिथ्यात्व वा सम्यग् मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति मिथ्याततत्व ये दर्शन मोहनीयकी तीन प्रकृतियां तथा अनन्तानुवधी क्रोध मान माया लोभ ये चार चारित्र मोहनीय प्रकृतिया उस सम्यग्दर्शन गुणका घात करती है। इन सातो प्रकृतियोके उपशम होनेसे औपशमिक सम्यग्दर्शन होता है, क्षय होनेसे क्षायिक सम्यग्दर्शन होता है और क्षयोपशम होनेसे क्षयोपशम सम्यग्दर्शन होता है। सम्यग्दर्शनको उत्पत्ति में इन सातों प्रकृतियो का उपशमादिक होना अन्तरंग कारण है। अन्तरग कारणके होते हुए यदि किसी गुरुका उपदेश प्राप्त हो जाय तो उस सम्यग्दर्शनको अधिगमज सम्यग्दर्शन कहते हैं। यदि अतरग कारणके होते हुए किसी गुरुका उपदेश न मिले तो उस सम्यग्दर्शनको निसर्गज सम्यग्दर्शन कहते है, सम्यग्दर्शनके निसर्गज और अधिगमज ये दोनों भेद वाह्य कारणों की अपेक्षासे है। यद्यपि वाह्य कारणोमें जिन बिम्ब दर्शन देवोंकी विभूतिका दर्शन भगवानकी महिमाका दर्शन, वेदनाका अनुभव जाति स्मरण आदि और भी कारण है तथापि यहां पर केवल अधिगमकी अपेक्षासे ही दो भेद बतलाये है। ※ ।।२२।।

※ शास्त्राध्ययनके बिना ही केवल वीतराग जिनेन्द्रदेवकी आज्ञा मानकर तत्त्वोंका श्रद्धान करना आज्ञा सम्यक्त्व है ।। १ ।। सम्यक्त्वके घातक मोह कर्मकी शांति हो जाने से शास्त्राभ्यासके बिना ही वाह्याभ्यंतर परिग्रहसे रहित मोक्षमार्गका श्रद्धान करना मार्ग सम्यक्त्व है ।।२।। भगवानकी वाणी का आचार्योंके वचन वा उपदेश सुनकर तत्त्व श्रद्धान करना सो उपदेश सम्यक्त्व है ।।३।। मुनियोके आचार सम्बन्धी सूत्रोंको सुनकर उन पर श्रद्धान करना सूत्र सम्यक्त्व है ।।४।। आगमके प्रतिपादक बीजाक्षरोंको सुनकर श्रद्धान करना बीज सम्यक्त्व है ।।५।। पदार्थोंके संक्षिप्त ज्ञानसे ही समस्त पदार्थोंका ज्ञान

अर्थ—यदि जीव निकट भव्य हो, कर्मोंका सत्त्व उदय आदि अत्यन्त कम हो, वह सैनी हो कर्मोंके कम होनेके परिणाम अत्यन्त शुद्ध हो और उपदेश आदि बाह्य कारण सामग्री मिल जाय तो सम्यग्दर्शन होता है। भावार्थ—ये सब सम्यग्दर्शनके कारण है ॥२३॥

अर्थ—उस सम्यग्दर्शनके तीन भेद है। औपशमिक सम्यग्दर्शन क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन और क्षायिक सम्यग्दर्शन। इनके सिवाय आज्ञा सम्यक्त्व आदि दश भेद और है ॥२४॥

अर्थ—क्षायिक सम्यग्दर्शन सादि और अनन्त है। इसलिए वह चौथे गुणस्थानसे लेकर समस्त गुणस्थानोमे तक रहता है, तथा मोक्षमे भी रहता है। क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन चौथे गुणस्थानसे लेकर सातवे गुणस्थान तक रहता है। सब प्रकारके सम्यग्दर्शन मोक्षके कारण अवश्य है ॥२५॥

अर्थ—प्रथम औपशमिक सम्यग्दर्शन चौथे गुणस्थानसे लेकर उपशात कषाय नाम के ग्यारहवे गुणस्थान तक रहता है यह सम्यग्दर्शन भी इच्छानुसार समस्त पदार्थोको देनेवाला है ।२६।

अर्थ—ये तीनो प्रकारके सम्यग्दर्शन साध्य साधनके भेदसे दो प्रकार है। साक्षात् मोक्ष प्रदान करनेवाला क्षायिक सम्यग-

---

होकरश्रद्धान होना सक्षिप्त सम्यक्त्व है ॥६॥ द्वादशाग वाणीको सुनकर श्रद्धान होना विस्तार सम्यक्त्व है ॥७॥ किसी पदार्थके देखने वा अनुभव करने आदिसे पदार्थोका श्रद्धान होना अर्थ सम्यक्त्व है ॥८॥ द्वादशाग और अग वाह्य आदि समस्त श्रुतज्ञानका पूर्ण अनुभव कर समस्त पदार्थोका पूर्ण श्रद्धान करना गाढ सम्यक्त्व है ॥९॥ केवल ज्ञानके द्वारा समस्त पदार्थोको प्रत्यक्ष जानकर परम गाढ श्रद्धान करना परमावगाढ सम्यक्त्व है।

दर्शन साध्य है और बाकीके दोनों सम्यग्दर्शन साधन है। इन दोनोंके द्वारा क्षायिक सम्यग्दर्शन सिद्ध किया जाता है ॥२७॥

अर्थ—इस जीवका जब जन्म मरणरूप ससारका परिभ्रमण अधिकसे अधिक अर्द्ध पुद्गल परावर्तन मात्र रह जाता है अर्थात् मोक्ष प्राप्त होनेमें जब अधिकसे अधिक अर्द्ध पुद्गल परावर्तन काल रह जाता है। तब इस भव्य जीवको सबसे पहले उपशम सम्यग्दर्शन प्रगट होता है ॥२८॥

अर्थ—उपशम सम्यग्दर्शनकी उत्कृष्ट और जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त है। तथा क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शनकी उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक छयासठ सागर है ॥२९॥

अर्थ—क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शनकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त है। तथा क्षायिक सम्यग्दर्शनकी अधिक से अधिक स्थिति ससार की अपेक्षा कुछ कम दो करोड पूर्व अधिक तेतीस सागर है। मुक्तकी अपेक्षा अनन्त है। ऐसा गाढ सम्यग्दृष्टी भगवान गणधर देवने कहा है ॥३०॥

अर्थ—पहले नरकमे औपशमिक क्षायोपशमिक और क्षायिक ये तीनो सम्यक्त्व होते है। दूसरे नरकसे लेकर सातवे नरक तक औपशमिक और क्षायोपशमिक ये दो सम्यक्त्व ही होते हैं। मनुष्य तिर्यंच और देवोंके तीनों प्रकारके सम्यक्त्व होते हैं। देवागना और तिर्यंचनियोके क्षायिकको छोडकर बाकी के दो सम्यक्त्व होते है ॥३१-३२॥

अर्थ—क्षायिक सम्यग्दर्शन वीतराग है वा वीतराग भावों का कारण है तथा ससारका नाश करनेवाला है और मोक्षका साक्षात् कारण है। औपशमिक और क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन सराग है और इसीलिए स्वर्गादिक सुखोका कारण है। ये दोनो परम्परासे मोक्षके कारण हैं ॥३३॥

अर्थ—इस सम्यग्दर्शनके आठ अग है। उन सव अगोसे सुशोभित सम्यग्दर्शन ही ससारके नाश करनेमे समर्थ होता है। जिस प्रकार अक्षरहीन मन्त्र अपना काम नही कर सकता उसी प्रकार अगहीन सम्यग्दर्शन पूर्ण रीतिसे किसी कार्यको सिद्ध नही कर सकता। भावार्थ—निःशकित निःकाक्षित निर्विचि-कित्सा अमूढदृष्टि उपगूहन, स्थितिकरण वात्सल्य और प्रभा-वना ये सम्यग्दर्शनके आठ अग है सम्यग्दृष्टीको इन आठो अगोका पालन करना आवश्यक है ॥३४॥

अर्थ—वीतराग सर्वज्ञदेव भगवान अर्हंत देवने जीव अजीव आदि समस्त पदार्थोका स्वरूप अनेक धर्मात्मक वतलाया है। वह वही है उसी प्रकार है अन्य नही है, अन्यथा भी नही है। इस प्रकार तत्त्वोका दृढ श्रद्धान करनेवाला मनुष्य नि शकित अगको धारण करनेवाला गिना जाता है। भावार्थ—इन्द्रिय जनित ज्ञानसे पदार्थोंके समस्त धर्म वा समस्त पर्यायोका ज्ञान नही होता। वीतराग सर्वज्ञदेवके केवलज्ञानमे ही मूर्त अमूर्त समस्त पदार्थ और उनके समस्त धर्म वा पर्यायें प्रत्यज्ञ ज्ञान गोचर होती हैं। सर्वज्ञका ज्ञान अतीन्द्रिय और अनन्त है। इसलिए उनके द्वारा पदार्थों का जो स्वरूप कहा गया है, वह प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनो प्रमाणोसे सर्वथा अवाधित सत्य और यथार्थ है। इसलिये प्रत्येक धर्मात्मा पुरुषको सर्वज्ञके वचनों पर दृढ श्रद्धान रखकर अपने आत्माका हित कर लेना चाहिये। व्यर्थकी कुतर्कों में समय बिताना अपने आत्माका अहित करना है। क्योकि प्रत्येक पदार्थमे अनन्त धर्म है सबकी परीक्षा हमसे नही हो सकती और न इन्द्रिय जन्य किसी भी ज्ञान से हो सकती है ॥३५॥

अर्थ—भगवान जिनेन्द्रदेव ही देव है, भगवान् जिनेन्द्रदेवके कहे हुए तत्व ही यथार्थ तत्व है। इस प्रकार जो दृढ श्रद्धान

करता है, उसे निःशंकित अंगके धारण करनेवालोंमें मुख्य समझना चाहिये।

अर्थ—अंजन नामका चोर यद्यपि इन्द्रियरूपी राक्षसोंके आधीन था तथापि केवल निःशकित अगको धारण करनेसे उसको आकाशगामिनी विद्या क्षणमात्रमें प्राप्त हो गई थी। भावार्थ—इन्द्रियोके विषयोके आधीन और व्यसनोंके सेवन करनेवाले अजन चोरको केवल निःशंकित अगके पालन करनेसे आकाश गामनी विद्या सिद्ध हो गई थी। इसलिये श्रावकोंको इस अगका मन वचन कायसे सदा पालन करते रहना चाहिये ॥३७॥

अर्थ—जो पुरुष घोर तपश्चरण करता हुआ तथा उत्कृष्ट दान देता हुआ भी उसके निमित्त से स्वर्गादिकोके सुखोंकी मन, वचन काय किसी से भी इच्छा नही करता उसको नि.काक्षित अंगको धारण करनेवालों में मुख्य समझना चाहिये ॥३८॥

अर्थ—ये इन्द्रियोके विषयोसे उत्पन्न हुए सुख क्षण भर बाद ही नष्ट हो जाते है। जो मनुष्य घोर तपश्चरण करता हुआ तथा उत्कृष्ट दान देता हुआ भी इन इन्द्रिय जन्य सुखोंकी अभिलाषा करता है उसको बुद्धिमान लोग आकांक्षा कहते है। ऐसी आकांक्षा श्रावकोंको कभी नही करनी चाहिये ॥३९॥

अर्थ—किसी एक सेठकी पुत्री अनन्तमताके पिताने कौतुकमात्र कहनेसे चौथे ब्रह्मचर्य व्रत को पालन किया था और उससे फिर किसी प्रकारकी इच्छा नही रक्खी थी इसलिए वह उस निःकांक्षित अंगके प्रभावस तपश्चरण कर बारहवे स्वर्ग में उत्पन्न हुई थी ॥४०॥

अर्थ—यह शरीर स्वभावसे तो अपवित्र है परन्तु रत्नत्रयसे पवित्र है। रत्नत्रयसे पवित्र ऐसे मुनियोंके शरीरको देखकर उससे घृणा नही करना किन्तु उनके रत्नत्रयरूप गुणोमें प्रेम करना तीसरा निर्विचिकित्सा अग कहलाता है ॥४१॥

अर्थ–यद्यपि यह जिनशासन सर्वथा अनिंद्य है तथापि मुनि लोग जो खड़े होकर आहार लेते है नग्न रहते है और स्थान आचमन नही करते इसीलिये कुछ नासमझ मिथ्यादृष्टी लोग इस जिनशासनकी निंदा करते है। यह उनकी भूल है। यह शरीर रुधिर मांस हड्डी मल मूत्र आदि अनेक घृणित और अपवित्र वस्तुओ का घर है इसलिए समुद्रके पानीसे भी स्नान करनेपर शुद्ध नही हो सकता। इसकी शुद्धता केवल रत्नत्रय वा ब्रह्मचर्य आदि आत्मगुणोसे होती है। स्नान और आचमन करनेसे अनेक जलकायिक जीवोकी हिंसा होती है वह हिंसा न हो इसीलिये मुनिराज स्नान आचमन नही करते। वे मुनिराज शरीरको पर समझते है आत्मासे भिन्न समझते है तथा उनके आत्मामें कामका कोई विकार होता नही। वे बालकके समान निर्विकार रहते है इसीलिए वे नग्न रहते है। जबतक यह शरीर रत्नत्रय धारण करनेमे समर्थ रहता है तभी तक मुनिराज इस आहार देते है जब यह शरीर रत्नत्रयके पालन करने मे असमर्थ हो जाता है तभी इसे आहार देना छोड़कर समाधिमरण धारण करलेते है इसीसिये वे खड़े होकर आहार लेते है। इस प्रकार मुनियोके समस्त कर्तव्य आत्माकी पवित्रताके लिये है और इसीलिए यह जैनशासन परम पवित्र समझा जाता है। फिर भी जो लोग धर्मके यथार्थ स्वरूपको न समझकर इस जैनशासनकी निन्दा करते है उन्हे नासमझ ही समझना चाहिए ।।४२।।

अर्थ– तीव्र मिथ्यात्व कर्मके उदयसे जो लोग मुनियोके स्वरूपको वा शरीर और रत्नत्रयके स्वरूपको नही जानते है तथा जिनका हृदय स्वभावसे ही कुटिल है ऐसे कुछ दुष्ट पुरुप व्यर्थ ही मुनियोकी निंदा करते है। उन्हे नीचे लिखे अनुसार वस्तुका यथार्थ स्वरूप समझ लेना चाहिये।

अर्थ—वे मुनिराज शुद्ध आत्माके ध्यानमें सदा लीन रहते है, मन, वचन, कायसे ब्रह्मचर्यका पालन करते है और व्रत तथा मंत्रोंसे सदा पवित्र रहते है ऐसे सदा पवित्र और पूज्य मुनियोको इस संसारमें स्नान करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। भावार्थ-स्नानके सात भेद है मत्रस्नान, भौमस्नान, अग्निस्नान, वायुस्नान, दिव्यस्नान, जलस्नान और मानस्नान। गृहस्थ लोग राग-द्वेष, काम, कषाय आदि विकारोसे सदैव मलिन रहते है इसलिए गृहस्थोकी शुद्धि विना जलस्नानके नही हो सकती। परन्तु मुनिराज इन विकारोंसे सर्वथा अलग रहते है। इसलिए उनके शरीरकी शुद्धि व्रत-स्नान वा मंत्रस्नानसे ही सानी जाती है। इसके सिवाय उनका शरीर रत्नत्रय और ब्रह्मचर्यसे ही पवित्र है इसलिए उनको स्नान करनेकी कोई आवश्यकता नही रहती। इसीलिए वे आजन्म स्नानके त्यागी होते है ? ॥४४॥

अर्थ—मुनीश्वरोका जो अग मलमूत्रादिक से अशुद्ध हो जाता है वे उसी अगको प्रासुक जलसे मार्जन कर शुद्ध कर लेते है परन्तु जो अग मल मूत्रादिक विकारोसे अपवित्र ही नहीं हुआ है ऐसे पवित्र शरीरको जलस्थान की शुद्धिसे क्या लाभ हो सकता है यदि किसी सर्पने उगलीमें काटा है तो वह उंगली ही काट दी जाती है उगलीमें काटने पर नाकको कोई नहीं काटता ॥४५॥

अर्थ—कापलिक (अघोरी) आत्रेयी रजःस्वला चाडाल भील आदि अस्पृश्य हीन जातिवाले मनुष्यो के स्पर्श हो जाने पर वा हड्डी आदि अपवित्र वस्तुओके स्पर्श हो जाने पर

मलमूत्र शौच आदि की शुद्धी गृहस्थ और मुनीराज दोनों करते है। यह व्यवहार धर्म है और उसका पालन करना दोनों का मुख्य कर्तव्य है।

मुनी लोग दड के समान सरल रीतिसे खड़े होकर कमडलुकी पूर्ण धारासे सर्वाग स्नान करते हैं पचनमस्कार मत्रका जप करते हैं और उस दिन उपवास करते है। भावार्थ—मुनिराज जन्मपर्यन्त तक स्नानके त्यागी होते है। तथापि चाडाल आदि अस्पृश्य शूद्रोके स्पर्श हो जाने पर वे कमडलुके जलकी धारासे दडवत् स्नान करते है पचनमस्कार मन्त्रका जप करते है और उस दिन उपवास करते है। जो लोग स्पृश्यास्पृश्य भेद नही मानते वा जाति भेद नही मानते, जैन धर्म धारण करलेने पर भगी चमारोके साथ भी रोटी व्यवहार करना पसद करते है उनके मतमे ये सव प्रायश्चित्तके ग्रन्थ मिथ्या हो जाते है। जिनके स्पर्शसे स्नानके सदा त्यागी मुनियो को भी स्नान करना पड़ता है ऐसे अस्पृश्य शूद्र कभी स्पृश्य नही हो सकते। स्पृश्य शूद्रो के द्वारा जिनप्रतिमाका स्पर्श हो जाने पर उस प्रतिमाकी भी शुद्धि मानी है। अभिषेक आदिसे उस प्रतिमा की शुद्धि शास्त्रोमें वतलाई है। इसलिए स्पृश्यास्पृश्य भेद जातिव्यवस्था वा वर्ण व्यवस्था माने विना मोक्ष मार्ग कभी नही टिक सकता। इसलिए वर्ण व्यवस्था जैन धर्मका मुख्य अग समझना चाहिये ॥४६॥

अर्थ—व्रतोको धारण करनेवाली अर्जिकाए रजस्वला होने पर एक एक रातके वाद तीन रात तक स्नान करने पर अथवा चौथे दिन स्नान करने पर शुद्ध होती है इसमे किसी प्रकारका सदेह नही है। भावार्थ—यद्यपि अर्जिकाओके जन्म पर्यन्त तक स्नान करने का त्याग होता है तथापि रजस्वला होने पर वे चौथे दिन स्नान करके ही शुद्ध होती है। आवश्यकतानुसार वे उन चार दिनोमे प्रतिदिन भी स्नान करती है। इस प्रकार आवश्यकतानुसार स्नानकी शुद्धि सव जगह मानी गई है। परन्तु जल स्नान हिंसाका कारण अवश्य है तथा मुनि और

अर्जिकाओंका शरीर रत्नत्रय वा ब्रह्मचर्यसे सदा पवित्र रहता है इसलिए ही ये आजन्म उसके त्यागी होते है ॥४७॥

अर्थ—जिनके शरीरमें कामादिकके विकार विद्यमान है उन्हें नग्न कभी नही रहना चाहिए। ऐसे विकारी पुरुषोंका शरीर तो वस्त्रोसे ढका रहना ही अच्छा है। परन्तु जिनके शरीरमे कोई किसी प्रकार का विकार नही है उनके शरीर को वस्त्रोसे ढकना कम प्रशंसाके योग्य नही माना जाता। भावार्थ-स्त्रियोके शरीर की बनावट विकार जनक है उसे देखकर साधारण पुरुषोको भी विकार उत्पन्न हो सकता है। इसके सिवाय उनके परिणामोमे भी स्वाभाविक कुटिलता रहती है और विकारो की अधिकता रहती है। इसीलिए स्त्रियोंके शरीरको सदा वस्त्रों से ढके रहने की ही आज्ञा है परन्तु पुरुषों में यह बात नही है। पुरुषोका शरीर निर्विकार रहता है तथा परिणामोंमें सरलता रहती है। पुरुषो की युवावस्था कोई ऐसा चिन्ह नही है जो दूसरोको विकार उत्पन्न कर सके इसीलिए पुरुष पूर्ण त्यागी होनें पर नग्न रहते है और नग्न रहने मे ही उनकी शोभा है ॥४८॥

अर्थ—न तो बैठकर भोजन करने से नरक की प्राप्ति होती है और न खड़े होकर भोजन करनेसे मोक्ष की प्राप्ति होती है। परन्तु ज्ञानरूपी नेत्रोको धारण करनेवाले सयमी पुरुष खड़े होकर भोजन करने की प्रतिज्ञा कर लेते है। भावार्थ—मुनीश्वर लोग यह प्रतिज्ञा कर लेते है कि जबतक इस शरीरमें खड़े होने की शक्ति है तबतक ही आहार ग्रहण करेगे अन्यथा समाधि मरण धारण कर आत्माका कल्याण करेंगे इसी प्रतिज्ञा के अनुसार वे खड़े होकर आहार लेते है ॥४९॥

अर्थ—दीनता का अभाव और वैराग्यकी वृद्धिके लिए ही मुनिराज केश-लोच करते हैं। इससे मुनिराजोका शूरवीरपना प्रगट होता है और व्रतोकी निर्मलता प्रगट होती है।

भावार्थ—मुनिराज न तो किसीसे याचना करते हैं और न अपने पास रुपया पैसा रखते हैं। यदि किसीसे बाल काटनेको कहते है तो दीनता होती है वा पैसा मागते है तो दीनता होती है। वह दीनता न हो इसीलिये मुनि लोग केशलोंच करते है। केशलोच करनेसे शरीरके ममत्व भावका त्याग होता है, वैराग्यकी वृद्धि होती है, आत्मा-शक्ति प्रकट होती है और अहिसाव्रतको निर्मलता होती है। बाल रखनेमे जीवोकी हिसा होती है वा धोने काढनेसे आरम्भ और परिग्रहका महापाप लगता है जिससे व्रत सब मलिन हो जाते है। इन सब दोषोंको दूर करनेके लिए और ऊपर लिखे गुणोकी वृद्धि होने के लिए मुनि लोग केशलोच करते है ॥५०॥

अर्थ—राजा उद्दायन सब प्रकारकी घृणाका परित्याग कर बाल मुनियोकी, वृद्ध मुनियोकी, रोग मुनियोकी और कोढी आदि ग्लान मुनियोकी सदा सेवा सुश्रूपा किया करता था और इसीलिए इन्द्रके द्वारा भी उसने प्रशसा प्राप्तकी थी। भावार्थ—निर्विचिकित्सा अगको पालन करनेसे इन्द्रने भी राजा उद्दायन की प्रशसा की थी ॥५१॥

अर्थ—आश्चर्य वा चमत्कार उत्पन्न करने वाली कुदेव वा कुशास्त्रकी मनमे वचनसे वा कायसे प्रशसा नही करना अमूढ-दृष्टि अग कहलाता है। भावार्थ—अनेक प्रकारकी सिद्धि वा रोग निवारण आदि चमत्कारोको देखकर और उनमे मोहित होकर अन्य मतमे माने हुए देवोकी उपासना प्रशसा आदि करना वा अन्य शास्त्रोकी उपासना प्रशसा आदि करना मूढता कहलाती है। ऐसी मूढता नही करना, मन वचन कायसे किसी प्रकार भी उनकी उपासना प्रशसा आदि नही करना अमूढदृष्टि अग कहलाता है ॥५२॥

अर्थ—हस वाहनके अधिपति ब्रह्मा, गरुडवाहनके अधिपति विष्णु, बैलवाहनके अधिपति महादेव और सिंहासनके अधिपति

जिनेन्द्रदेव कहलाते हैं। इनके स्वयं आजाने पर भी रेवतीरानी मूढताको प्राप्त नहीं हुई थी। भावार्थ—किसी विद्याधरने इनकी साक्षात् विभूति दिखलाई थी तथापि रेवतीरानी अपने दृढ़ श्रद्धानसे विचलित नही हुई थी। इस प्रकार उसने अमूढ-दृष्टि अगका पालन किया था ॥५३॥

अर्थ—धर्मके मार्गमें वा धर्मके आचरणोंमें सदा लीन रहने वाले किसी भव्य जीवसे दैवयोगसे कोई दोष होजाय वा कोई अपराध बन जाय तो उससे होनेवाली निन्दाको छिपाना प्रकट नही करना उपगूहन अंग कहलाता है[1] ॥५४॥

अर्थ—अपने आत्माके हितकी वृद्धि चाहने वाले भव्य जीवोंको उत्तम क्षमा उत्तम मार्दव आदि आत्माके श्रेष्ठ भावों-के द्वारा धर्मकी वृद्धि करनी चाहिये। तथा अन्य साधर्मी पुरुषोंके दोषोंको छिपाना चाहिये ॥५५॥

१—इस अगके उपगूहन और उपवृंहण ऐसे दो नाम हैं। धर्मात्माओंके दोषोंको छिपाना उपगूहन है और धर्मकी वृद्धि करना उपवृंहण है। किसी अज्ञानतासे वा दैवसे किसी भव्य जीवके द्वारा जैन धर्ममें मलिनता प्रगट करनेवाला कोई अप-राध बन जाय तो सम्यग्दृष्टी पुरुष उसको प्रगट नहीं करते हैं। वे लोग जिनशासनकी महिमा ही प्रगट करते है। इसीको उपगूहन अग कहते है। यदि कोई मायाचारी अपनी स्वार्थ-सिद्धिके लिए वा किसी विषयवासनासे जिनशासनको कलङ्कित करनेवाला कोई कार्य करे बार-बार समझानेपर भी अपनी दुर्वासनाका त्याग न करे और जान बूझकर जैनधर्मको कलङ्कित करना चाहे तो उसका वह निंद्य कर्म जनताके सामने प्रगट कर उसको शासनसे वहिष्कृत कर देना चाहिये। यह भी जैन-धर्मकी पवित्रता रखना है और इसीलिए उपवृंहण अंग कहलाता है।

अर्थ—जो कोई पुरुष दूसरोके दोषोंको बड़ी शीघ्रताके साथ छिपाता है तथा अपने गुणोको भी प्रगट नही करता उसे ही उपगूहन अगको धारण करनेवाला समझना चाहिये। संसारमे ऐसे पुरुष सदा श्रेष्ठ कहलाते है ॥५६॥

अर्थ—मायाचारी पूर्वक सयमको धारण करनेवाले मायाचारीसे क्षुल्लकका भेष धारण करनेवाले सूर्य नामके चोरने सेठ जिनेन्द्रभक्तके चैत्यालयमें जाकर छत्रमे लगे हुए रत्न चुराये थे। परन्तु सेठ जिनेन्द्रभक्तने धर्मकी निंदा समझकर उसका वह अपराध प्रगट नही किया था और इस प्रकार उपगूहन अंगको पालनकर जैनधर्मकी पवित्रता स्थिर रक्खी थी ॥५७॥

अर्थ—सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान वा सम्यक्चारित्ररूप मोक्ष मार्गसे भ्रष्ट वा पतित होते हुए भव्य जीवोको अपनी तन मन धन आदिकी शक्ति लगा कर फिर उनको उसी रत्नत्रय रूप धर्ममे स्थापना करना स्थिर रखना स्थितिकरण अंग कहलाता है ॥५८॥

अर्थ—काम क्रोध मद उन्मत्तता और प्रमादसे स्वेच्छाचार पूर्वक विहार करनेवाले भोले सम्यग्दृष्टी साधर्मी भाइयोको तथा स्वत. अपनी आत्माको श्रेष्ठधर्ममे सदा स्थिर रखना चाहिए ॥५९॥

अर्थ—हिताहितके विचारसे रहित अज्ञानताको धारण करनेवाले बालक जन अथवा शक्ति होन असमर्थ पुरुषोको क्रिमी व्रतसे चलायमान होते हुए देखकर भी जो नही देखनेके समान आचरण करता है अथवा देखकर भी उनको स्थिर नही करता है उसे धर्मका अपराधी समझना चाहिये। भावार्थ—स्थितिकरण अगका पालन न करना धर्मका अपराध करना

है। इसलिए प्रत्येक भव्य जीवको स्थितिकरण अंगका पालन करना अत्यावश्यक है ॥६०॥

अर्थ—सम्यग्दर्शन रूपी नेत्रको धारण करनेवाली रानी चेलनाने ज्येष्ठा नामकी गर्भवती आर्यिकाका उपचार कर उसे फिरसे शुद्ध व्रतोंमें स्थापना किया था ॥६१॥

अर्थ—पुष्पडाल नामके मुनिका चित्त अपनी सुदत्ती नामकी स्त्रीमें आसक्त रहता था और इसीलिए वे मुनि अपने मुनि व्रतसे चलायमान होना चाहते थे परन्तु मुनिराज वारिषेणने उनकी रक्षा की थी उनको व्रतोंसे चलायमान नही होने दिया था तथा उनके व्रतोंमें ही उनको दृढ़ किया था ॥६२॥

अर्थ—उत्तम चारित्रको धारण करनेवाले मुनिराजोंका तथा धर्मात्मा गृहस्थोंका यथायोग्य आदर सत्कार करना पूजा सेवा कर उनका वैयावृत्य करना विज्ञानोंके द्वारा वात्सल्य अङ्ग कहलाता है ॥६३॥

अर्थ—मुनिराजोका आदर सत्कार करना, उनको उच्चासन देना, उनकी सेवा चाकरी करना, उनको नमस्कार करना, मिष्ट वचन कहना, भक्ति करना, चरण दावना तथा उन पर आये हुए उपद्रवोको दूर करना तथा देशकालकी अपेक्षासे आवश्यकतानुसार सार उनका उपकार करना वात्सल्य अङ्ग कहलाता है ॥६४॥

अर्थ—राजा महापद्मके पुत्र मुनिराज श्री विष्णुकुमारने हस्तिनापुर नगरमें बलि नामके ब्राह्मणके द्वारा किये गए मुनीश्वरोके घोर उपसर्गको दूरकर सबसे उत्कृष्ट वात्सल्य अगका पालन किया था ॥६५॥

अर्थ—रत्नत्रय रूपी तेजसे अपने आत्माको सदा प्रभाव-

शाली बनाना चाहिये । तथा दान देकर, तपश्चरण कर, भगवान् जिनेन्द्रदेवकी उत्कृष्ट पूजा कर तथा अनेक विद्याओका अतिशय दिखलाकर इस जैनधर्मको सदा प्रभावशाली बनाना चाहिये ॥६६॥

अर्थ—विना किसी सासारिक सुखोकी अपेक्षाके शास्त्रोका उपदेश देकर, विद्याकी चतुरता प्रगट कर, निर्दोष विज्ञानको धारण कर, दान देकर और भगवान जिनेन्द्रदेवकी पूजा कर भगवान जिनेन्द्रदेवके शासनकी महिमा सदा प्रगट करते रहना चाहिये । इसीको प्रभावना अग कहते है ॥६७॥

अर्थ—महाराज पूतिक नामके राजाने अपनी उर्मिला नामकी रानीके द्वारा किया गया भगवान जिनेन्द्रदेवका रथोत्सव बन्द कर दिया था परन्तु मुनिराज वज्रकुमारने वह रथोत्सव बडे धूमधाम से नगर भरमे घुमाया था और जैन धर्मकी बड़ी भारी प्रभावना की थी ॥६८॥

अर्थ—जो पुरुष अपने हृदयमे ऊपर लिखे हुए आठो अगों सहित सम्यग्दर्शन धारण करता है उसीका सम्यग्दर्शन दृढ समझना चाहिये । यदि वही सम्यग्दर्शन अगोसे रहित हो तो फिर उसकी हानि ही समझना चाहिये ॥६९॥

अर्थ—इन ऊपर लिखे अगोके सिवाय सम्यग्दर्शन के संवेग निर्वेद निदा गर्हा उपशम भक्ति वात्सल्य और अनुकम्पा ये आठ गुण और होते हैं ॥७०॥

अर्थ—जन्म मरण आदि अठारह दोषोंसे रहित देवमें हिंसादि दोषोसे रहित धर्ममे, आत्माका हित करनेवाले शास्त्रमें और परिग्रह रहित गुरुमे अत्यन्त अनुराग वा प्रेम रखना सवेग कहलाता है ॥७१॥

अर्थ— ये इन्द्रियोंके भोग काले सर्पके फणके समान है तथा यह जन्ममरण रूप संसार सज्जन पुरुषोंको अत्यन्त दुःख देनेवाला है और यह शरीर अनन्त रोगोंका घर है ऐसे इस संसार शरीर और भोगोसे विरक्त होना वैराग्य धारण करना निर्वेद कहलाता है ।।७२।।

अर्थ—पुत्र मित्र स्त्री आदि कुटुम्बके लिये जो पाप कार्य किये जाते है उनके लिये अपनी निंदा की जाती है उसको चतुर लोग निंदा कहते है। भावार्थ—अपने आत्मासे किये गये पाप कर्मोंकी निंदा करना व अपने द्वारा किये गये दुष्ट कार्योंका पश्चाताप पूर्वक अपनी निंदा करना निंदा नामका गुण है ।।७३।।

अर्थ—राग द्वेष आदि विकारोंके द्वारा जो पाप किये गये है उनकी श्रेष्ठ गुरुके सामने बैठकर भक्ति पूर्वक आलोचना करना गुरुके सामने उन सब पापोको निवेदन कर उनकी आलोचना करना गर्हा कहलाती है ऐसा भगवान अरहतदेवने निरूपण किया है ।।७४।।

अर्थ—जिसके हृदयमें राग द्वेष मोह मद काम वा क्रोधादिक कषाय आदि दोष स्थिरताको प्राप्त नही होते उस श्रेष्ठ भव्य जीवके उपशम गुण समझना चाहिये। उसका आत्मा बहुत शांत रहता है ।।७५।।

अर्थ—इन्द्र चक्रवर्ती आदि महापुरुष भी जिनकी सेवा करते है ऐसे भगवान अरहंतदेव और निर्ग्रंथ गुरुकी पूजा करना सेवा करना स्तुति करना और उनकी सब प्रकारकी विनय करना भक्तिगुण कहलाता है। भावार्थ—अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय और साधु ये पच परमेष्ठी कहलाते है इन पांचों परमेष्ठीयों की तथा चैत्य, चैत्यालय जिनगम जिनधर्मकी

विनयपूर्वक पूजा स्तुति आदर सत्कार आदि करनेको भक्ति कहते है ॥७६॥

अर्थ—जो मुनि किसी स्वाभाविक रोग आदिसे दुःखी हैं उनकी औपधि आदि से सेवा सुश्रुपा करना वात्सल्य गुण कहलाता है ॥७७॥

अर्थ—दुखोके सागर ऐसे इस ससारमे परिभ्रमण करते हुए प्राणियो पर सम्यग्दृष्टि दयालुके हृदयमें जो दयाभाव उत्पन्न होता है उसको कारुण्य कहते है । भावार्थ—कोमल प्रगट परिणामोसे समस्त प्राणियोपर दयाभाव करना कारुण्य है ॥७८॥

अर्थ— जिसके हृदयमे ऊपर लिखे हुए आठ गुणोसे सुशोभित सम्यग्दर्शन विराजमान रहता है उसके घरमे यह लक्ष्मी सदाके लिये अपना निवास बना लेती है ॥७९॥

अर्थ—तीन मूढता, आठ मद, छह अनायतन, और आठ शकादिक दोप इस प्रकार सम्यग्दर्शनके पच्चीस दोप कहे जाते हैं ॥८०॥

अर्थ—जो क्रूरदेव राग द्वेपसे व्याकुल है वे सब जिनागम में त्याग करने योग्य बतलाये है । जो कोई पुरुप ऐसे देवताओं की उपासना करता है उसको आचार्य देव मूढता कहते है । भावार्थ—अन्य मतमे माने हुए देव विपय कपायोके आधीन रहते हं उनके साथ शस्त्र पुत्र स्त्री वाहन आदि सब रहते है और ये सब विपय कपाय चिन्ह हैं । ऐसे देव कुदेव कहलाते है । ऐसे देवोकी उपासना करना देव मूढता कहलाती है । मूढताका अर्थ अज्ञान है देव सम्बन्धी अज्ञानताको देवमूढता कहते हैं । जिन शासनदेव इनसे भिन्न है । जिन शासनदेव सम्यग्दृष्टी होते हं । ये शान्त मन्दकपायी और जिनभक्त होते हैं । जिन शासन देवता तथा मिथ्यादेवोमें क्या अन्तर है । इसका

खुलासा आदिपुराणमें नीचे लिखे अनुसार लिखा है * ॥८१॥

अर्थ—जिनागममें विश्वेश्वर चक्रेश्वरी पद्मावती आदि देवता शांतिके लिए बतलाये है। परन्तु जिनपर बलि चढाई जाती है जीव मारकर चढाये जाते है ऐसे चंडी मुडी आदि देवता त्याग करने योग्य है। इसका भी खुलासा इस प्रकार है।

अर्थ—जो देव मिथ्यात्वीक्रूर हिंसक है, शस्त्र, परिग्रह सहित है माँसकी वृत्ति और मद्यकी वृत्ति होनेसे निंद्य और हीन है ऐसे ब्रह्मा विष्णु उमा चण्डी मुण्डी आदि देवता कुदेवता कहलाते है उनकी पूजा करना मिथ्यात्वका कारण है। इसलिएँ

---

* भगवान् समन्तभद्र स्वामीने अपने रत्नकरण्ड श्रावकाचारमे देवमूढताका स्वरूप इस प्रकार लिखा है।

अर्थ—इसलोक सम्बन्धी सासारिक सुखोकी आशा रखनें वाला जो मनुष्य किसी वरकी इच्छासे राग-द्वेषसे मलिन देवताओकी उपासना करता है उसे देवमूढता कहते है। इस प्रकार देवमूढ़ताको सम्भावना अन्यमतके माने हुए देवोमें होती है। सम्यग्दृष्टी जीवोंमें मिथ्यात्व दर्शनमोहनीय कर्म सम्बन्धी राग-द्वेष नही होता है। इसीलिए आगममें सम्यग्दृष्टीकी जिन संज्ञा मानी गई है। मिथ्यामतमें माने हुये देवोकी जिनसज्ञा कभी नही हो सकती। इसलिए मूढ़ता भी अन्य मतके देवोमें ही होती है। सम्यग्दृष्टी शासन देवोंमें नही। इस श्लोकमें आशा रखनेवाला किसी वरकी इच्छासे ऐसे एकसे दो शब्द दिये है उनसे यही सूचित होता है कि जो लोग सांसारिक विषय भोगोंकी आशामें लीन रहते है वे ही पुरुष वरका इच्छा करते हैं ऐसे पुरुष मिथ्यादृष्टी ही होते है और वे अन्य मतके माने हुये देवोकी उपासना करते है। सम्यग्दर्शन और सम्यग्यदृष्टी का यथायोग्य आदर सत्कार करना धर्मका मुख्य अंग है। इसलिए इसमें मूढता कभी नही होती है ॥२२॥

मिथ्या भेषको धारण करनेवाले ऐसे कुदेव त्याज्य हैं परन्तु जो देव सम्यग्दृष्टी है जो जिन धर्मकी प्रभावना करनेवाले है ऐसे चक्रेश्वरी दिक्पाल यज्ञ आदि देवता शांति प्रदान करने वाले है। ऐसे देव सम्यग्दृष्टि होने के कारण पूज्य हैं ऐसा जैन शास्त्रोका आदेश है उनकी पूजा करने में देव मूढता नही होती क्योकि सम्यग्दृष्टी जीव सदा पूज्य होता है।

अर्थ—सूर्यग्रहण वा चन्द्रग्रहणमें स्नान करना, सूर्यके विमानको देव समझकर अर्घ चढाना, घोडा, शस्त्र * हाथी आदि की पूजा करना गगा सिंधु आदि नदियोमे धर्म समझकर स्नान करना, सक्रांतिमें दान देना, गोमूत्र की वदना करना, गायोंकी वदना करना, वटवृक्षकी पूजा करना, देहलीकी पूजा करना, मरे हुओको पिंडदान देना आदि सब लोक मूढता है ऐसी लोक मूढता सदा त्याज्य है ॥८२,८३॥

अर्थ—जो गुरु होकर भी आरम्भ और परिग्रह * रखते है तथा मन्त्र औषधि आदिसे अपनी जीविका करते है ऐसे पाखडी गुरुओकी सेवा सुश्रूषा करना उनकी विनय करना पूजा आदर

---

*यद्यपि चक्रवर्ती शस्त्र और घोडे आदिकी पूजा करता है परन्तु वह धर्म समझ कर उनकी पूजा नही करता केवल उपकारी समझकर उनका आदर सत्कार करता है। ऐसी बहुत सी क्रियाये है जिन्हे मिथ्यादृष्टी भी करते है और सम्यग्दृष्टी भी करते हैं परन्तु उद्देश्य दोनो का भिन्न भिन्न होता है इसीलिए उनकी क्रियाए मिथ्यात्व वा सम्यक्त्वको पुष्ट करने वाली हो जाती है।

* जिसके हृदयमे भगवान अरहत देवके कहे हुये तत्वोंका दृढ श्रद्धान है और जिन्होने वीतरागभाव धारण कर समस्त परिग्रहो का त्यागकर नग्न मुद्रा धारण की है तथा विषय कषाय

सत्कार आदि करना गुरुमूढता कहलाती है। भावार्थ—अन्यमतमें माने हुए परिग्रह आरम्भके द्वारा विषय कषायोंको पुष्ट करने वाले और मन्त्र औषधि आदिसे जीविका करनेवाले कुगुरु कहलाते है ऐसे कुगुरुओका आदर सत्कार पूजा विनय आदि करना गुरुमूढता है। धर्मगुरु तो वीतराग और आरंभ परिग्रह रहित ही होते है। ऐसे धर्मगुरुके सिवाय अन्य सब गुरु कुगुरु कहलाते हैं और उनकी पूजा विनय आदि सब गुरु मूढता है ॥८४॥

अर्थ—ज्ञान, पूजा कुल, जाति, बल ऋद्धि तप और शरीर की उत्कृष्टतासे जो अभिमान करना है उसको गणधरदेव मद

आदि अशुभ क्रियाओको सर्वथा त्याग कर दिया है वे धर्म गुरु कहलाते है परन्तु जिनके हृदयमें जिनेन्द्रदेवके कहे हुओं तत्वो का श्रद्धान नही है दर्शनमोहनीयके उदयसे तथा गृहीत मिथ्यादृष्टी होने के कारण जो आरम्भ परिग्रह सहित है और जो शस्त्रादिक भी रखते है उनको कुगुरु कहते है परमहस यद्यपि नग्न रहते है तथापि आत्मज्ञानके बिना उनके भी आत्मा का तथा अन्य तत्वो का यथार्थ श्रद्धान नही होता। इसलिये वे भी धर्म गुरु नही कहला सकते। श्वेताम्बरी साधु तो परिग्रह लकड़ी आदि सब पदार्थ रखते ही है। इसलिये वे तो धर्म गुरु हो ही नही सकते जो भगवान जिनेन्द्र देवके कहे हुये तत्वोका दृढ श्रद्धान रखते है और जो मोक्षका कारण साक्षात् निर्ग्रंथ लिग मानते है ऐसे क्षुल्लक एल्लक ब्रह्मचारी आदि मध्यमपात्र गिने जाते है। यद्यपि उनके आरम्भ परिग्रहका पूर्ण त्याग नही है तथापि अधिकाश परिग्रहोंका त्याग होनेसे मध्यम पात्रकी अपेक्षा वे पूज्य ही माने जाते है। उनका यथायोग्य आदर सत्कार अवश्य करना चाहिये। गुरुमूढता केवल कुगुरुओंकी सेवा करने से होती है।

कहते है। भावार्थ—ऊपर लिखे हुए प्राठकोका अभिमान करना आठ मद कहलाते है ॥८५॥

अर्थ—मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञान मिथ्याचारित्र तथा इन तीनोको अलग अलग सेवन करने वाले पुरुष ये छह अनायतन कहलाते है। ये छहो अनायतन रत्नत्रयरूपी कल्पवृक्षके वनको जलानेके लिये अग्निके समान हैं। भावार्थ—आयतन शब्द का अर्थ स्थान है। जैनमन्दिर आदि धर्मके स्थानोको आयतन कहते है जो धर्मके आयतन न हो उनको अनायतन कहते है ॥८६॥

अर्थ—शङ्कादिक आठ दोष, आठ मद, तीन मूढता और छह अनायतन ये पच्चीस सम्यग्दर्शनके दोष कहलाते है। जो सम्यग्दर्शन इन पच्चीसो दोषोसे रहित है, वही सम्यग्दर्शन मुक्ति रूपी स्त्रीके प्रेमका कारण होता है अर्थात् उसीसे मोक्षकी प्राप्ति हो सकती है। इसलिये जो पुरुष जन्ममरण रूप ससार से भयभीत है उन्हे निर्दोष सम्यग्दर्शनकी ही आराधना करनी चाहिए और वह भी अच्छी तरह करनी चाहिए ॥८७॥

अर्थ—सम्यग्दृष्टी पुरुष पृथ्वी कायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक वनस्पतिकायिक इन पाँचो स्थावरकायोमे तथा दो इन्द्रिय तेइन्द्रिय चौइन्द्रिय इन तीन विकलत्रयोमें निगोदमे असैनी पचेन्द्रिय कुभोगभूमियोमें और म्लेक्षखण्डमें इस प्रकार मिथ्यात्वके बारह स्थानोमे उत्पन्न नही होते हैं। इनके सिवाय तिर्यंच योनिमे, नरकोमे, नपुसक लिंगमे, स्त्रीपर्यायिमे, भवनवासी व्यन्तर और ज्योतिषी देवोमे तथा सब तरहकी देवियोमें और नीचेकी छह पृथ्वियोमे उत्पन्न नही होते है। इनके सिवाय वे जीव अल्प आयु दरिद्री और हीन कुलमे उत्पन्न नही होते हैं ॥८८,८९॥

अर्थ—यह भव्य जीव सम्यग्दर्शनके प्रभावसे तीर्थंकर चक्रवर्ती आदि उत्तमोत्तम पदोकी दैदीप्यमान विभूतियोंको पाकर अन्तमें मोक्षरूपी परमपदको प्राप्त करते है ॥९०॥

अर्थ—सम्यग्दर्शनकी अधिक महिमा वर्णन करनेसे कोई लाभ नही है थोड़ेसेमें इतना समझ लेना चाहिये कि इस ससारमें जो प्राणी मोक्षमें जा चुके है वा जा रहे है वा जांयगे वह सब एक सम्यग्दर्शनका ही माहात्म्य समझना चाहिये ॥९१॥

अर्थ—जो पुरुष जूआ चोरी आदि सातों व्यसनोसे रहित हैं, भगवान् जिनेन्द्रदेवकी पूजा करनेमे सदा तत्पर रहते हैं और सम्यग्दर्शनसे सुशोभित है वे ही पुरुष श्रावक कहलाते है। ऐसे श्रावक इस ससारमें घन्य माने जाते है ॥९२॥

अर्थ—इस संसारमें यह मनुष्यपर्याय करोड़ों भवोंमें भी बड़ी कठिनता से प्राप्त होती है । तथा ऐसा अत्यन्त दुर्लभ मनुष्य जन्म पाकर के भी उत्तम जाति और उत्तम कुलकी प्राप्ति होना अत्यन्त कठिन है। ऐसे मनुष्य जन्म और उत्तम कुल जातिको पाकर सम्यग्दर्शनके रहित कभी नही होना चाहिये* भावार्थ—अनादिकालसे वंशपरंपरासे चली आई माताके

---

* जिस जाति वा कुलमें वंशपरम्परासे विजातीय विवाह (जिसको अज्ञानी लोग अन्तर्जातीय विवाह कहते है) विधवा-विवाह आदि हीन मलिनाचार नही होते है तथा यज्ञोपवीत आदि उत्तम संस्कार वंशपरम्परासे चले आरहे है वही जाति और कुल सज्जाति कहलाती है। सज्जातिमें उत्पन्न हुए मनुष्यों को ही देवपूजा वा मुनियोको दान देनेका अधिकार है। जो सज्जाति रहित है उनको देवपूजा वा मुनि दान देनेका अधिकार नही है। जो निर्ग्रंथ लिंग, धारण करने की योग्यता रखता है वही देव पूजा आदि कर सकता है। विधवा विवाह और विजातीय विवाह करनेवाले पुरुष शूद्रके समान हीन माने जाते है।

कुलकी विशुद्धिको जाति कहते है पिताके कुलकी शुद्धिको कुल कहते हैं। तथा दोनोकी विशुद्धिको सज्जाति कहते हैं। खडेलवाल आदि सज्जातिया कहलाती है। ये सज्जातियां सप्त परमस्थानोमे मुख्य मानी जाती हैं ऐसी सज्जातिको पाकर सम्यग्दर्शनकी विशुद्धि अवश्य कर लेनी चाहिये ॥९३॥

अर्थ—जो पुरुप देवपूजा गुरुकी उपासना, स्वाध्याय सयम तप और दान इन छहो कर्मोके करनेमे तल्लीन रहता है जिसका कुल उत्तम है और जो देवपूजा आदि कर्मोसे ही चूली उखली चक्की बुहारी परण्डी घरकी मरम्मत घरके नित्य होनेवाले पापोको नप्ट करता रहता है वही उत्तम श्रावक कहलाता है। भावार्थ—देव पूजा आदि श्रावकोका आवश्यक कर्म है। इस प्रकरणमे ग्रथकारने कुलसत्तमः ऐसा एक श्रावकका विशेषण दिया हैं। इससे यह सूचित होता है कि जिसकी कुल और जाति उत्तम है उसीको देवपूजा आदि पट्कर्म करनेका अधिकार है। जिसकी जाति वा कुल हीन है उसको देवपूजा आदि करनेका कोई अधिकार नही है। हा अपनी योग्यताके अनुसार ऐसे लोग दर्शन आदिकार्य कर सकते है ॥९४॥

अर्थ—इस प्रकार इस प्रथम अधिकारमें सम्यग्दर्शनका वर्णन किया। अव आगे इस सम्यग्दर्शनको दृढ करनेके लिए इस दूसरे अधिकारमे जिनपूजनका वर्णन करते हैं ॥९५॥

अर्थ—विद्वान् पुरुप भगवान् जिनेन्द्रदेवकी नित्य पूजा किस प्रकार करते हैं वा उनको किस प्रकार करनी चाहिये यही वर्णन हम इस अध्यायमे पहलेके शास्त्रोके अनुसार कहते है ॥९६॥

अर्थ—पूर्वदिशाकी ओर मुख करके स्नान करना चाहिये, पश्चिम दिशाकी ओर मुख करके दातौन करनी चाहिये, उत्तर दिशाकी ओर मुख करके सफेद वस्त्र पहनना चाहिये और पर्व-

दिशा वा उत्तर दिशाकी ओर मुह करके भगवान् जिनेन्द्रदेवकी पूजा करनी चाहिये ।* भावार्थ—यदि जिनप्रतिमाका मुख पूर्व दिशाकी ओर हो तो उत्तर मुख होकर अभिषेक वा पूजा करनी चाहिये यदि जिनप्रतिमाका मुख उत्तर दिशाकी ओर हो तो पूजकको अपना मुख पूर्व दिशाकी ओर करके पूजन करनी चाहिये ॥९७॥

अर्थ—अब आगे गृह चैत्यालय बनानेका विधान बतलाते है, गृहमे प्रवेश करते समय जिस दिशामें अपना बाया अग हो घरके उसी भागमें चैत्यालय बनना चाहिये । चैत्यालय शल्य रहित उत्तम भूमिमें बनवाना चाहिये अर्थात् जिस भूमिमें हड्डी आदि किसी मलिन पदार्थके रहनेका संदेह न हो ऐसे स्थानमें चैत्यालय बनवाना चाहिये । उस चैत्यालयमें वेदीकी ऊचाई डेढ हाथ होनी चाहिये । यदि वेदीकी ऊंचाई डेढ हाथसे कम होगी तो वह बनवानेवाला अपनी सततिके साथ ही नीचता को प्राप्त होगा । भावार्थ—वेदीकी ऊचाई डेढ हाथ होनी चाहिये । इससे न तो ऊची होनी चाहिये और न नीची होनी चाहिये । वह वेदी इस प्रकार बनवानी चाहिये जिसमें पूजनका सब सुभीता हो ॥९८,९९॥

अर्थ—उस चैत्यालयमें ग्यारह अंगुल प्रमाण प्रतिमा होनी चाहिये । क्योंकि ग्यारह अगुल प्रमाण प्रतिमा समस्त

---

* उदग्मुख स्वय तिष्ठेत् प्राङ्मुख स्थापयेज्जिनम् ।

भगवान् जिनेन्द्रदेवको पूर्वदिशाकी ओर मुंह करके विराजमान करना चाहिये तथा पूजन करनेवालेको उत्तर दिशाकी ओर मुह करके अभिषेक पूजा करनी चाहिये ।

पद्मासनसे बैठकर अथवा पर्यंकासनसे बैठकर वा सुखासनसे बैठकर पूर्व वा उत्तर दिशाकी ओर अपना मुह करके भगवान जिनेन्द्रदेवकी पूजा करनी चाहिये ।

मनोरथोको सिद्ध करनेवाली है, चैत्यालयोंमे विराजमान करनेके लिये शास्त्राकारोने ग्यारह अगुल प्रमाण ही प्रतिमा बतलाई है। उसीसे समस्त कार्योंकी सिद्धि हो सकती है। चैत्यालयोमे इससे अधिक ऊंची प्रतिमा कभी विराजमान नही करना चाहिये ॥१००॥

अर्थ—गृहस्थोके चैत्यालयमे एक अगुल प्रमाण जिनप्रतिमा श्रेष्ठ गिनी जाती है। दो अगुलकी प्रतिमासे धनका नाश हो जाता है। तीन अगुलकी प्रतिमा विराजमान करनेसे वृद्धि होती है और चार अगुलकी प्रतिमा विराजमान करनेसे पीड़ा होती है ॥१०१॥

अर्थ—पाच अगुलकी प्रतिमा विराजमान करनेसे वृद्धि होती है, छह अगुलकी प्रतिमा विराजमान करनेसे उद्वेग होता है, सात अगुलकी प्रतिमा विराजमान करनेसे गोधनकी वृद्धि होती है और आठ अगुलकी प्रतिमा विराजमान करनेसे हानि होती है। ॥१०२॥

अर्थ—नौ अगुलकी प्रतिमा विराजमान करनेसे सतानकी वृद्धि होती है और दश अंगुलकी प्रतिमासे धनका नाश होता है इस प्रकार एक अगुलसे लेकर ग्यारह अगुल तककी प्रतिमा घरके चैत्यालयमें विराजमान करनेका वर्णन किया। जिन मन्दिर के लिये यह नियम नही है जिनमन्दिरमे चाहे जितनी ऊँची प्रतिमा विराजमान कर सकते हैं। यद्यपि जिन प्रतिमा पुण्यवन्धका कारण है तथापि वस्तुका स्वभाव भी भिन्न २ होता है। तथा पूजा करनेवालोकी कामनाये भी भिन्न २ होती है। और कामनाओ के अनुसार विधि भी भिन्न २ होती है। पूज्य-पूजक मन्त्र विधि आदि समस्त सामग्रीके अनुसार मनोकामना की सिद्धि होती है। यदि इनमें कोई भी सामग्री विपरीत हो तो उसका फल भी विपरीत ही होता है। पूजनकी

विधिमें प्रतिमाकी श्रेष्ठता और उसका प्रमाण भी मन्त्रशास्त्र से सम्बन्ध रखता है। मन्त्रशास्त्रोंमें लिखा है कि यदि प्रतिमा कुरूप हो उसकी दृष्टि वक्र हो या उसका आकार कुत्सित हो तो उससे पूजककी हानि होती है यह बात प्रायः सब लोगोके अनुभवमें आरही है। जिस प्रकार वक्रदृष्टि वाली प्रतिमासे पूजकको हानि होती है उसी प्रकार यदि सम अंगुलवाली प्रतिमा (दो चार छह आठ वा दश अंगुलकी प्रतिमा) घरके चैत्यालयमें विराजमान की जाय तो उससे हानि होती है यह संख्याकी समता और विषमता अनेक स्थानोमें शुभ अशुभकी सूचक होती है। शुभ कार्योमे विषम सख्या ही शुभ मानी जाती है सम सख्या कभी शुभ नहीं मानी जाती। इसीलिए इस अंगुलों की प्रतिमाएँ घरके चैत्यालयोंमें शुभ नही होती है॥१०३॥

अर्थ—घरका चैत्यालय घरके ऊपरो भाग पर बनवाना चाहिए और इसमें जिनप्रतिमा विराजमान कर उनकी पूजा करनी चाहिए। काठकी प्रतिमा, लेपकी प्रतिमा, पाषाणकी प्रतिमा, सोना चांदी तांवा पीतल लोहा आदि धातुओंकी प्रतिमा बनवाकर घरके चैत्यालय में विराजमान करनी चाहिए। वह प्रतिमा भी ग्यारह अगुल से ऊँची नही होनी चाहिए तथा वह प्रतिमा आठ प्रातिहार्य यक्ष यक्षी सहित होनी चाहिए। * अरहन्त

---

* प्रतिमाका निर्माण प्रतिष्ठाशास्त्रोंके अनुसार कराना चाहिए प्रतिष्ठाशास्त्रोंमे अरहन्त प्रतिमायो लक्षण आठ प्राति-हार्य सहित तथा यक्ष यक्षी सहित बतलाया है। केवलज्ञान सहित समवशरणमें विराजमान अरहन्त होते है। उनकी प्रतिमा भी वैसी ही होती है। जिनप्रतिमा पर अरहन्त अवस्थाके प्राति-हार्य यक्ष यक्षी आदि चिन्ह न हो तो उसको अरहन्त प्रतिमा नही कह सकते फिर वह सिद्धोकी प्रतिमा हो जाती है।

की प्रतिमा प्रातिहार्य और यक्ष यक्षी सहित ही होता है। यदि अरहन्तकी प्रतिमा न मिले तो घरके चैत्यालयमें केवल सिद्धों की प्रतिमा विराजमान नही रहनी चाहिए। सिद्धोकी प्रतिमा जिनमन्दिरमें ही विराजमान करनी चाहिए। काठ लेप और लोहे की प्रतिमा इस पचम कालमें विराजमान नही करना चाहिए क्योकि काष्ठ और लेप प्रतिमाका अभिषेक नही हो सकता। काठको प्रतिमाका अभिषेक करनेसे उसमे जीवराशि उत्पन्न होने की सभावना रहती है तथा लेप प्रतिमाकी प्रतिष्ठा ही नही हो सकती। ऐसी प्रतिमाके विराजमान करनेसे लाभके के बदले हानि ही होती है ॥१०४,१०५,१०६॥

अर्थ—जिस जिनभवन पर ध्वजा नही होती है उस जिन-भवन मे किया हुआ जप होम पूजा आदि सब व्यर्थ हो जाता है। इसलिये जिनभवन पर ध्वजा—स्तम्भ अवश्य होना चाहिए। भावार्थ—जिनमन्दिर पर शिखर और शिखरसे ऊंचा ध्वजस्तम्भ होना चाहिए। शिखरके कलशोसे ध्वजा सदा ऊंची होनी चाहिए नीची ध्वजा शुभ नही होती है। जिस प्रकार व्रत को पूर्णता उद्यापनसे होती है। भोजनकी पूर्णता और शोभा ताम्बूलसे होती है उसी प्रकार जिनभवनकी शोभा और पूर्णता शिखर कलश और ध्वजास्तम्भसे होती है ॥१०७॥

अर्थ—जिस प्रतिमाकी पूजन करते हुए सौ वर्ष व्यतीत हो गये है अथवा जिस प्रतिमाका साक्षात् अतिशय हो और जो प्रतिमा किसी महापुरुषके द्वारा स्थापित की गई हो वह प्रतिमा यदि अगहीन हो तो भी पूज्य मानी जाती है। भावार्थ-अगहीन प्रतिष्ठित प्रतिमा भी अपूज्य होती है परन्तु अतिशय सहित प्रतिमाका यदि कोई उपाग भङ्ग हो गया हो तो वह पूज्य ही मानी जाती है ॥१०८॥

अर्थ—जो प्रतिमा शिल्पशास्त्र वा प्रतिष्ठाशास्त्रोके अनु-सार बनवाई हो सांगोपांग हो और अपने पूर्ण लक्षणोसे सुशो-

भित हो ऐसी प्रतिष्ठित प्रतिमा पूज्य मानी जाती है। प्रतिष्ठा होनेके बाद यदि नाक मुख नेत्र हृदय और नाभिमडलसे हीन होगई है नाक मुख नेत्र हृदय नाभि आदि अंग भग होगये हों तो वह प्रतिमा अपूज्य हो जाती है फिर उसकी पूजा नहीं करनी चाहिये। उसको फिर किसी गहरे जलमें पधरा देनी चाहिये ॥१०६,११०॥

अर्थ—जो प्रतिष्ठित प्रतिमा अत्यन्त जीर्ण हो गई हो तथापि वे अतिशय सहित हो तो भी वे पूज्य मानी जाती हैं। परन्तु जिन प्रतिमाका मस्तक न रहा हो या छिन्न भिन्न होगया हो ऐसी प्रतिमा कभी पूज्य नहीं मानी जाती। ऐसी प्रतिमा किसी गहरे पानीमे डुबा देना चाहिये ॥१११॥

अर्थ—श्रावकको अपने घरके विभाग इस प्रकार बनाने चाहिये पूर्व दिशाकी ओर शोभागृह (बैठक वा कमरा) आग्नेय दिशामें रसोई घर, दक्षिण दिशामें शयन करनेका स्थान, नैऋत दिशामें आयुधशाला, पश्चिम दिशामें भोजनगृह, वायव्य दिशा में धन संग्रह करनेका घर, उत्तर दिशामें जल स्थान (परण्डा) और ईशान दिशामें देव स्थान बनाना चाहिये ॥११२,११३॥

अर्थ—जो भव्य जीव एक अगुल प्रमाण प्रतिमाकी प्रतिष्ठा कराकर नित्य पूजन करता है वह असंख्य पुण्यकर्मोंका संचय करता है। उस प्रतिमाके विराजमान करने और उसकी पूजा करनेके फलको इस संसारमें कोई कह भी नहीं सकता है ॥११४॥

अर्थ—जो पुरुष बिम्बाफलके पत्तेके समान बहुत छोटा चैत्यालय बनाता है तथा उसमें जौ के समान छोटी सी प्रतिमा विराजमान करता है। इस प्रकार जो भगवान्‌की पूजा करता है समझना चाहिये कि मुक्ति उसके अत्यन्त समीप ही आ चुकी

है। भावार्थ—जो गृहस्थ विशेष धनवान नही है उनको भी अपनी शक्तिके अनुसार जौके समान छोटीसी प्रतिमा बनाकर प्रतिदिन उसकी पूजा करनी चाहिये। तथा जिनालय भी छोटे से छोटा बनवाना चाहिये। जो श्रावक चैत्यालय वा प्रतिमा नही बनवाता उसे अपने कर्तव्यसे च्युत समझना चाहिये। जिन प्रतिमा और जिन मन्दिर बनवानेके समान इस ससारमे अन्य कोई दूसरा पुण्य नही है। एक प्रतिमा बनवाकर उसकी प्रतिष्ठा करानेसे अनन्त पुण्यका बध होता है। ससारमे ऐसे मनुष्य अत्यन्त धन्य माने जाते है ॥११५॥

अर्थ—यदि जिन प्रतिमाका मुख पूर्व दिशाकी ओर हो तो पूजा करनेवालेको उत्तर दिशाकी ओर मुह करके पूजा करनी चाहिये। यदि प्रतिमाका मुख उत्तर दिशाकी ओर हो तो पूजकको पूर्व दिशाकी ओर मुह करके पूजा करनी चाहिये। जिन प्रतिमाके सामने खडे होकर पूजन कभी नही करनी चाहिए। इसी प्रकार दक्षिण दिशाकी ओर वा विदिशाकी ओर मुंह करके कभी पूजन नही करनी चाहिये। * ॥११६॥

---

* उदङ्मुख स्वय तिष्ठेत् प्राङ्मुख स्थापयेज्जिनम्।
पूजाक्षणेभवेन्नित्य यमी वाचयमक्रियः।

जिन प्रतिमाको पूर्व मुख विराजमान कर स्वय उत्तर मुख होकर पूजा करनी चाहिये पूजा करते समय पूजकको मौन धारण कर पूजा करनी चाहिये।

मन्त्र शास्त्र कहते है कि आकर्षण कर्ममे दक्षिण दिशा श्रेष्ठ है, शान्ति कर्मके लिए वरुण दिशाकी ओर मुह करके बैठना चाहिये पौष्टिक कर्ममे नैऋत्य दिशा, स्तभन कर्ममे पूर्व दिशा श्रेष्ठ मानी जाती है। यदि इन कार्योंको करनेवाला इनसे विप-

अर्थ—यदि भगवान जिनेन्द्रदेवको पूजा पश्चिम मुख होकर की जाती है तो उससे सन्ततिका नाश होता है। यदि दक्षिण दिशाकी ओर मुखकर की जाती है, तो सन्ततिका अभाव हो जाता है ॥११७॥

अर्थ—आग्नेय दिशाकी ओर मुखकर पूजा करनेसे प्रतिदिन धनकी हानि होती है वायव्य दिशाकी ओर मुखकर पूजा करनेसे

रीत दिशाओंकी ओर मुह करके मत्र प्रयोग करता है तो उसका फल भी विपरीत ही होता है। इसी प्रकार भगवान्की पूजा का फल भी समझना चाहिये। भगवानकी पूजा भी मंत्रोसे की जाती है। उन मन्त्रोंका फल विधि पूर्वक होनेसे इच्छानुसार होता है और विपरीत विधिसे विपरीत होता है। पूजामें पच कल्याणक पूजा सर्वोत्कृष्ट मानी जाती है परन्तु पंच कल्याणक पूजाके करनेवाले अनेक लोग आज धनहीन वा कुलहीन देखे जाते हैं। इसका कारण केवल अविधि है। इसलिए पूजा, सामायिक, जप, ध्यान, होम, मन्त्राराधन आदि कार्य यदि आत्म कल्याणके लिए किये जांय तो पूर्व दिशा वा उत्तर दिशाको मुह करके ही करना चाहिये भगवान जिनेन्द्रदेवकी ऐसी ही आज्ञा है। तीर्थंकर भगवान वा मुनिराज पूर्वदिशा वा उत्तर दिशाकी ओर मुख करके ही ध्यान करते है। सामायिक आदि षट्कर्म भी पूर्वमुख वा उत्तरमुख होकर किये जाते है। तीर्थंकर भगवान वा सामान्य केवली भगवान पूर्वमुख वा उत्तरमुख ही विराजमान होते है। मेरुपर्वत पर जो तीर्थंकरोका अभिषेक किया जाता है वह भी पूर्वमुख वा उत्तरमुख होकर ही किया जाता है। अभिषेक भी पूजाका एक अग है। इन्द्र भी पूर्वोत्तरमुख होकर ही जन्माभिषेक वा प्रतिमाका अभिषेक करते है इसलिए भगवानकी पूजा पूर्वोत्तर मुख होकर ही करना चाहिये।

सन्तत नही होती और नैऋत्य दिशाकी ओर मुखकर पूजा करनेसे कुल क्षय होता है ॥११८॥

अर्थ—ईशानमुख होकर पूजा करनेसे सौभाग्य नष्ट होता है पूर्वमुख होकर पूजा करनेसे शाति प्राप्त होती है और उत्तरमुख होकर पूजा करनेसे धनकी वृद्धि होती है ॥११९॥

अर्थ—पूजा करनेवाले गृहस्थको विना तिलक लगाये पूजा कभी नही करनी चाहिए। तिलक स्थान नौ हैं। चरण, घोंटू, हाथकी कुहनी, हाथ, मस्तक, ललाट, कण्ठ, हृदय और उदर। इन नौ स्थानोमे चन्दन आदिका तिलक लगाकर पूजा करनी चाहिए नित्यपूजामे पाच तिलक भी लगाये जाते है तथा केवल ललाटपर एक तिलक भी लगाया जाता है। तिलक लगाये विना भगवानका अभिषेक पूजा जप होम वा अन्य कोई भी मागलिक कार्य नही करना चाहिए विना तिलक लगाये मागलिक कार्य अपशकुन समझा जाता है। * ॥१२०,१२१॥

अर्थ—यह तिलक मुक्तिरूपी लक्ष्मीका सर्वोत्कृष्ट आभूपण माना जाता है। इसीलिए विना तिलकके पूजा करनेवाले इन्द्र को इष्ट कार्य की सिद्धि नही होती। भावार्थ—अभिषेक पूजा होम जप आदि मगल कार्य सव तिलक लगाकर ही करने चाहिए ॥१२२॥

अर्थ—पूजा करने वाला इन्द्र कहलाता है इन्द्रको सोलह आभूषण पहनना चाहिए उसके अग उपांग सव परिपूर्ण होने चाहिए। वह विनयी हो, भक्ति करनेवाला हो, समर्थ हो, श्रद्धा रखनेवाला हो और लोभ रहित हो। उस समय उसे पद्मासनसे

---

* श्वेताम्वर लोग प्रतिमाके स व शरीरमे तिलक लगाते हैं परन्तु उनकी यह क्रिया जिनागमके सर्वथा विरुद्ध है। भगवान की प्रतिमाके चरणके अगूठे पर ही चन्दन का अर्चन किया जाता है। अन्यत्र कही नही।

बैठकर[१] पूजा करनी चाहिए उसे अपने दोनों नेत्र अपनी नासिकाके अग्र भागपर रखने चाहिए मौन धारण करना चाहिए तथा अपना मुख वस्त्रसे ढक लेना चाहिए। इस विधिसे भगवान्की पूजा करनी चाहिए। भावार्थ—पूजा करनेवाला अपनेमें इन्द्रका सकल्प करता है। इसका भी कारण यह है कि भगवान् जिनेन्द्रदेव सर्वोत्कृष्ट देव है उनकी पूजा करनेका पात्र इन्द्र ही है यदि ऐसे भगवान्का हम लोग पूजा करना चाहते हैं तो हमें अपनेमें कम से कम इन्द्रका न्यास निपेक्ष वा संकल्प अवश्य कर लेना चाहिए। इन्द्रके समान ही सोलह आभरण पहनना चाहिए और तिलक यज्ञोपवीत आदि धारण करना चाहिए। धोती, दुपट्टा, मुकुट, हार, कङ्कण, मुद्रिका, तिलक, यज्ञोपवीत आदि आभरण है जो अनेक पूजाशास्त्रोंमें बतलाये हैं। यथा—"इन्द्रोहं निज भूषणान्यमल यज्ञोपवीत दधे मुद्रा कङ्कणशेखराण्यपि तथा जैनाभिषेकोत्सवे" भावार्थ—भगवान्का अभिषेक करनेके लिये मैं अपनेमें इन्द्रका संकल्प करता हूं यज्ञोपवीत कङ्कण मुद्रिका मुकुट आदि निर्मल आभूषणोंको धारण करता हू। इसप्रकार अपनेमें इन्द्रका संकल्प कर भगवान्की पूजा करनी चाहिए।

---

१. भगवानकी पूजा बैठकर ही करनी चाहिए। यथा—

यथार्हासनमासीनः..................सोप्युदङमुखः।

प्राङमुखो वा जिनपूजां जपहोम करोत्विति ।।-विद्यानुवाद

अर्थ—पद्मासन वा सुखासन आदिसे बैठकर उत्तरमुख वा पूर्वमुख होकर भगवानकी पूजा वा जप होम करना चाहिए।

पद्मासनसमासीनः पल्लङ्कस्थोऽथवा स्थितः।
पूर्वोत्तर मुखं कृत्वा पूजां कुर्याज्जिनेशिनाम् ।।

अर्थ—पद्मासन वा पर्यकासनसे बैठकर पूर्वमुख वा उत्तर मुख होकर भगवान जिनेन्द्रदेवकी पूजा करनी चाहिए।

पूजा बैठकर की जाती है। इसका विशेष वर्णन पहले कर ही चुके है ॥१२४॥

अर्थ—श्रीजिनेन्द्रदेवकी पूजा विना चन्दनके कभी नहीं करनी चाहिए। चतुरपुरुषोको प्रात कालके समय चन्दनसे पूजा अवश्य करनी चाहिए। भावार्थ—प्रातःकालमें भगवान् जिनेन्द्र देवकी पूजा उनके चरणारविंदके अगुष्ट पर चन्दन लगाकर करनी चाहिए। यद्यपि भगवान्की पूजा अष्ट द्रव्यसे की जाती है और वह अभिषेक पूर्वक ही होती है तथापि अभिषेकके बाद चरणोपर चन्दन लगाना आवश्यक माना जाता है यदि अष्ट द्रव्य का समागम न मिले तो केवल भगवानके चरणके अगूठेपर चन्दन लगाने से ही भगवान्की पूजा समझी जाती है। यदि भगवान्के चरणों पर चदन न लगाया जाय और बिना चदन लगाए ही पूजा की जाती है तो वह पूर्ण पूजा नही समझी जाती प्रा कालके समय चदन पूजा ही मुख्य मानी गई[1] है ॥१२५॥

अर्थ—मध्यान्ह कालमें पुष्पपूजा मुख्य मानी जाती है। सुन्दर ताजे सुगधित पुष्पोको शुद्ध जलसे धोकर शुद्धता पूर्वक भगवान् के चरण कमलोपर चढाना चाहिए। पुष्प भगवान् के सामने नहीं चढाए जाते किन्तु भगवान्के चरणोपर चढ़ाए जाते है। संध्याकालके समय दीप और धूपसे पूजा करनी चाहिए। दीपसे भगवान् की आरती उतारी जाती है और धूप अग्नि मे खेई जाती है। आरती सामने उतारी जात हैं और धूप भगवाकेन् वाई ओर धूपदान रखकर उसमे खेई जाती है। भावार्थ—ऊपरके दोनों श्लोकोमे कालकी अपेक्षासे मुख्य-मुख्य पूजा वतलाई है। प्रातः

---

१. चदणसुगध लेओ जिनवर चरणेसु जो कुणइ भविओ।
लहइ तणु विक्किरिय सहा व सुयधय अमल ॥
—आचार्य देवसेन कृत भावसग्रह।

कालमें चन्दन पूजा मुख्य बतलाई है, मध्यान्ह काल में पुष्प पूजा मुख्य है और सायकालमें दीप धूप पूजा मुख्य है। यदि कोई

जो भव्य जीव भगवान्के चरण कमलों पर चन्दनका विलेपन करता है चरणों पर चन्दन लगाता है वह निर्मल सुगन्धित वैक्रियक शरीर प्राप्त कर देव होता है।

कंकोलकैलागुरुसप्रत्ययगूलवगकर्पूरकरजितेन।
श्रीखण्डपकेन निरस्तशक जिनक्रमाव्ज परि लेपयामि ।।

शीतल चीनो, इलायची, अगरप्रियगू, लोग, कपूर, केसर आदि सुगधित पदार्थोसे मिले हुए चन्दनसे श्रीजिनेन्द्रदेवके चरण कमलो की पूजा करनो चाहिए उन चरणोंके अगूठेपर चदन लगाना चाहिए।

सुचन्दनेन कर्पूर व्यामिश्रेण सुगधिना।
व्यालिपामो जिनस्याघ्रीन् निलिपाधीश्वरार्चितान् ।।

चदन, केसर और कपूरसे मिले हुए सुगधित द्रव्यसे भगवान् के चरण कमलोंका लेप करना चाहिए।

काश्मीर कर्पूर सुगन्धितेन सुगधघनसार विलेपनेन।
पादाब्ययुग्मं हि विलेपयामि भक्त्या जिनस्य करुणायुतस्य ।।

—जिनसंहिता

अर्थ—केसर, कपूर, सुगधित चन्दन, आदि द्रव्योसे मै करुणसागर भगवान् जिनेन्द्रदेवके दोनो चरण कमलों का लेप करता हूं।

कप्पूर कुकुमायरु तलक्कमिस्सेण चंदण रसेण।
परवहल परिमलामलिपामो जिसस्स चरण ।।

अर्थ—कपूर, केसर, चन्दन आदि सुगन्धित द्रव्योके रससे भगवान् जिनेन्द्रके चरण कमलोंपर लेप कर उनको सुगन्धित करता हूँ।

पुरुष प्रातःकालमे चन्दन पूजा नही करता है वाकी की द्रव्योसे पूजा कर लेता है तो वह शास्त्रोमे कही हुई विधिका उल्लघन करता है। क्योकि अष्ट द्रव्योमे प्रात.कालके समय चदन पूजा ही मुख्य मानी है जिस मनुष्यने मुख्य पूजा नही की उसकी अन्य पूजा गौण ही समझी जाएगी, तथा मुख्य पूजाके अभावमे पूजाकी विधि भी विपरीत समझी जाएगी। प्रातःकाल अभिषेक अवश्य किया जाता है तथा अभिषेकके वाद चन्दन पूजा मुख्य मानी जाती है। मुख्य विधिके विना गौण विधि नही हो सकती। भगवान्की प्रतिमाका शरीर महा पवित्र होता है इसलिए उसका स्पर्श भी महा पुण्यका कारण है। तथा पूजा करनेवालेके शरीर-को भी पवित्र कर देता है। तथा भगवान्के पवित्र शरीरका स्पर्श अभिपेक करने वा चन्दन पूजा करनेसे ही हो सकता है। इसीलिए प्रात कालमे सवसे पहले अभिपेक करनेका और चदन पूजाका विधान वतलाया है। विना अभिषेक अष्ट द्रव्यसे भी पूजा नही हो सकती। क्योकि अष्ट द्रव्यमें भी तो जल पूजा और चन्दन पूजा मुख्य है।

आचार्योका एक अभिप्राय यह भी है कि भगवान्का अभि-पेक करनेमे देखनेवालोके परिणाम अत्यन्त निर्मल और भक्तिसे परिपूर्ण हो जाते है। इसलिए ही पूजामें अभिपेक मुख्य माना है। पचकल्याणक महोत्सवमे जन्म समयके अभिषेकका माहात्म्य सर्वोत्कृष्ट माना गया है। अभिषेकके वाद चन्दन पूजा ही होती है। इसका भी कारण यह है कि भगवान्के चरणो पर चन्दन लगाये विना शास्त्रकारोंने दर्शन करनेका भी निषेध लिखा है। इसलिए प्रात कालमे अभिपेक कर चन्दनसे पूजा अवश्य करनी चाहिये ॥१२६॥

अर्थ—भगवान् जिनेन्द्रदेवके दायी ओर दीपक रखना

चाहिए तथा दाईं ओर ही भगवानका ध्यान करना चाहिए और चैत्योंकी वदना भी दाईं ओर बैठकर ही करना चाहिए ॥१२७॥

अर्थ—प्रातःकालके समय जल चन्दन अक्षत पुष्पमाला नैवेद्य दीप धूप फल और अर्घ्य इन आठों द्रव्योसे भगवान जिनेन्द्रदेव की पूजा करनी चाहिए ॥१२८॥[1]

अर्थ—कमल चम्पा चमेली आदि पुष्पोंको माला बनाकर उनसे भगवान्की पूजा करनी चाहिए। तथा पुष्पोंके अभावमें अक्षतोंको केसरसे पीले कर और उन्हे पुष्प मानकर उनसे पूजा करनी चाहिए ॥१२९॥

अर्थ—पुष्पके दो टुकड़े कभी नही करने चाहिए तथा कली को तोड़ना भी नही चाहिए। कलीके दो टुकड़े नही करने चाहिए

---

१. प्रातरेव विधातव्या चन्दनपूजा जिनेशस्य ।
सकलकलिलहंत्री स्वर्गसुखप्रदात्री च ॥

अर्थ—भगवान् जिनेन्द्रदेवकी प्रातःकालिक पूजा चन्दनसे ही करनी चाहिए। यह प्रातःकालकी चदनपूजा समस्त पापोका नाश करने वाली है और स्वर्गो के सुख देने वाली है।

प्रातःकाले प्रकर्तव्यं विलेपन जिनेशिनाम् ।
सुगधरसलेपेन भक्त्या पापहयं सदा ॥ —पूजादीपक

अर्थ—प्रातःकालमें भक्तिपूर्वक सुगंधित चंदनके रससे भगवानके चरणोंपर विलेपन करना चाहिए। यह चदन का विलेपन सदा पापोंको नष्ट करनेवाला है।

स्नपनान्तर प्रोक्तं गंधलेप जिनेशिनाम् ॥

अर्थ—अभिषेकके बाद भगवानके चरणोंपर चन्दनका लेप अवश्य करना चाहिए।

चम्पा कमल आदिकी कलीके दो टुकडे करनेसे यति हत्याके समान दोष होता है। पूजापर चढ़ानेके लिये ही यह प्रकरण है ॥१३०॥

अर्थ—जो पुष्प हाथसे गिर गया हो, पृथ्वी पर गिर पड़ा हो, पैरसे छू गया हो, मस्तकपर धारण कर लिया गया हो, अपवित्र वस्त्रमे रक्खा गया हो, दुष्ट मनुष्योके द्वारा स्पर्श किया गया हो, घनसे छिन्न-भिन्न किया हो और काटोसे दूषित हो ऐसे पुष्पोका त्याग कर देना चाहिए अर्थात् भगवान्‌की पूजा करनेमें ऐसे पुष्प नही चढाना चाहिए ऐसा गणधरादि विद्वान् पुरुषोने कहा है ॥१३१॥

अर्थ—स्पृश्य शूद्रके हाथसे लाये हुये पुष्प ग्राह्य है तथा अस्पश्य शूद्रके हाथसे लाये हुये पुष्प त्याज्य है। पुष्प भगवान्‌के चरणो पर बड़ी भक्तिसे चढाना चाहिए परन्तु दुष्ट जनोके हाथ से लगाये हुए पुष्प कभी नही चढाने चाहिए ॥१३२॥

अर्थ—भगवान् जिनेन्द्रदेवका अभिषेक करनेके लिये सुगमता से दूधकी प्राप्ति हो जाय इसके लिये गायका रखना या जिनालयमें गायको दान देना दोषाधायक नही है। इसी प्रकार पूजामें सुगमतासे पुष्पोकी प्राप्तिके लिए बाग बगीचा बनवानेमें भी दोष नही है। पूजाके लिये सुगमतासे जल मिलता रहे इसके लिए कुआ बनवानेमें भी अत्यन्त दोष नही होता है। भावार्थ—यद्यपि जैन शास्त्रोमे कुआ खुदवानेका तथा बगीचा लगवानेका निषेध है इसी प्रकार गायको दान देनेका भी निषेध है, क्योकि इन सब कामोमे हिसा अवश्य और अधिकताके साथ होती है। परन्तु यहा पर जो इसका विधान लिखा है वह केवल सुगमताके साथ भगवान्‌की पूजा सदा होती रहनेके लिये लिखा है। उद्देश्य भिन्न-भिन्न होनेसे एक ही क्रियासे पुण्य पाप दोनो हो

सकते हैं। केवल खा-पीकर मस्त होनेके लिये भोजन बनाना पाप है। परन्तु मुनियोंको दान देनेके लिए भोजन बनाना पुण्य-का कारण है। इसी प्रकार मृतकको वैतरणी नदी पार कर देने के लिए गाय का दान मिथ्यात्व वा पाप है, परन्तु भगवान्का अभिषेक सुगमताके साथ सदा होते रहनेके लिए गायका दान देना पुण्यका कारण है। इसी प्रकार कुआ खुदवाने और बगीचा लगाने में अधिक हिंसा होती है, परन्तु भगवान्की पूजा करने-के लिए कुआ बगीची बनवाना पुण्यका ही कारण माना जाता है जिस प्रकार पूजा करनेमें भी हिंसा होती है, परन्तु इन कामों-के करनेमें अनेक जीवोंको महापुण्यका बध होता है और इसी-लिए भव्य जीव बड़ी भक्तिसे इन कामोको करते है इसोप्रकार जिनालयमें गायका दान देना वा जिनालयके लिए कुआ बगीची बनवाना पुण्यका ही कारण है। पुण्य पाप भावोंसे होता है तथा मिथ्यात्व और सम्यक्त्व भी भावोंसे ही होता है। इन सब बातोंको समझकर मोक्षके कारणभूत पुण्यकार्य सदा करते रहना चाहिए ॥१३३॥

अर्थ—शुद्ध जल, इक्षुरस, घो, दूध, दही, आम्ररस सर्वोषधि और कल्क चूर्ण आदिसे भगवान् जिनेन्द्रदेवका अभिषेक करना चाहिए और वह भी बड़ी भक्ति तथा भावपूर्वक करना चाहिए ॥१३४॥

अर्थ—जो भगवान्की पूजा करनेके बाद बच रहा है और जिसपर भ्रमर आरहे है ऐसे चन्दनसे पूजा करनेवालेको भगवान की पूजा करनेके लिए अपने शरोरको चर्चित करना चाहिए। भावार्थ—अभिषेक बाद भगवान्के चरणोंपर चंदन लगाना चाहिए और आगे अष्ट द्रव्यसे पूजा करनेके लिए उस बचे हुए चन्दनसे फिर दुबारा तिलक लगाना चाहिए ॥१३५॥

अर्थ—भगवान् जिनेन्द्रदेवकी पूजा इक्कीस प्रकारसे की जाती है। आगे उन्हीको वतलाते है। पञ्चामृताभिषेक करना चरणोपर चन्दन लगाना २ जिनालयको सुशोभित करना ३ भगवान्के चरणोपर पुष्प चढाना ४ वास पूजा करना ५ धूपसे पूजा करना ६ दीपकसे पूजा करना ७ अक्षतोसे पूजा करना ८ ताम्वूल पत्रसे पूजा करना ९ सुपारियोसे पूजा करना १० नैवेद्यसे पूजा करना ११ जलसे पूजा करना १२ फलोसे पूजा करना १३ शास्त्र पूजामे वस्त्रसे पूजा करना १४ चमर ढुलाना १५छत्र फिराना १६वाजे वजाना १७भगवान्की स्तुतिको गाकर कहना १८ भगवान्के सामने नृत्य करना १९ साथिया करना २० और भण्डारमे द्रव्य देना २१ इसप्रकार इक्कीस प्रकारकी विधिसे भगवान्की पूजा की जाती है। अथवा जिसको जो पसद हो उसीसे भाव पूर्वक भगवान्की पूंजा करनी चाहिए। जैसे किसीको सितार वजाना पसन्द है तो उसको भगवान्के सामने ही सितार वजाना चाहिए। इसका भी कारण यह है कि द्रव्य क्षेत्र काल और भाव ये सबके सदा समान नहीं रहते इसीलिए अपनी २ योग्यताके अनुसार भगवान्की पूजा सदा करते रहना चाहिये। विना पूजाके अपना कोई समय व्यतीत नही करना चाहिए॥१३६,१३७॥

अर्थ—नवग्रह आदिकी शान्तिके लिए अथवा पापकर्मोकी शान्तिके लिए सफेद वस्त्रोंको धारण कर सफेद मालासे जप करना चाहिए। विजय चाहनेके लिए श्याम रंगकी मालासे जप करना चाहिए। कल्याणके लिए लाल रगकी मालासे जप करना चाहिए। भय दूर करनेके लिए हरे रगकी मालासे जप करना चाहिये। धनादिकी प्राप्तिके लिए पीले रगकी मालासे जप करना चाहिए। तथा अपने अभीष्ट सिद्धिके लिए पच वर्णकी मालासे जप करना चाहिए। यदि मालाके वदले उसी रगके

पुष्पोसे जप किया जाय तो उस कार्यकी सिद्धि बहुत शीघ्र हो जाती है। वस्त्र आसन आदि भी उस रंगके होने चाहिए ॥१३८॥

अर्थ—खण्डित वस्त्र (वस्त्रका टुकड़ा) गला हुआ वस्त्र, फटा हुआ वस्त्र और मैला वस्त्र पहन कर दान पूजा जप होम और स्वाध्याय नहीं करना चाहिए। फटे पुराने गले सडे वस्त्र पहन कर दान पूजा आदि करनेसे वह दान पूजा आदि सब निष्फल हो जाता है ॥१३९॥

अर्थ—कोई कोई लोग यह कहते है कि पुष्पमाला, धूप, दीप, जल, फल आदि सचित्त पदार्थोंसे भगवान्की पूजा नही करनी चाहिए। क्योकि सचित्त पदार्थोसे पूजा करनेमें सावद्य जन्य पाप (सचित्तके आरम्भसे उत्पन्न हुआ पाप) उत्पन्न होता है। उनके लिए आचार्य समझाते है कि भगवान्की पूजा करनेसे अनेक जन्मोके पाप नष्ट हो जाते है फिर क्या उसी पूजासे उसी पूजामें होनेवाला आरम्भ जनति वा सचित्त जन्य जोड़ा-सा पाप नष्ट नहीं होगा? अवश्य होगा। इसका भी कारण यह है कि :—॥१४०,१४१॥

अर्थ—जिस वायुसे पर्वतके समान बड़े बड़े हाथी उड़ जाते हैं उस वायुके सामने अत्यन्त अल्प शक्तिको धारण करनेवाले डांस मच्छर क्या टिक सकते है? कभी नहीं। उसीप्रकार जिस पूजासे जन्म जन्मान्तरके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं उसी पूजासे क्या उसी पूजाके विधि विधानमें होनेवाली बहुत ही थोड़ी हिंसा नष्ट नही हो सकती? अवश्य होती है। इसमें किसी प्रकारका सदेह नही है। विष भक्षण करनेसे प्राणियोंके प्राण नष्ट हो जाते है परन्तु वही विष यदि सोंठ मिरच पीपल आदि औषधियोंके साथ मिलाकर दिया जाय तो उसीसे अनेक रोग

नष्ट होकर जीवन अवस्था प्राप्त होती है। इसीप्रकार सावद्य कर्म यदि विषय सेवन के किए जांय तो वे पापके कारण है ही परन्तु भगवान्की पूजाके लिए बहुत ही थोडे सावद्य कर्म पापके कारण नही होते पुण्यके ही कारण होते है। मन्दिर वनवाना पूजा करना पचकल्याणक प्रतिष्ठा करना रथोत्सव करना आदि जितने पुण्यके कारण है उन सबमे थोड़ा वहुत सावद्य अवश्य होता है। परन्तु वह सावद्य दोष पुण्यका ही कारण होता है। इसीप्रकार सचित्त द्रव्यसे होने वाली पूजामे होनेवाला सावद्य दोप पुण्यका ही कारण होता है। भगवान्की पूजा केवल पुण्य उपार्जन करनेके लिए आत्माका कल्याण करनेके लिए और परम्परा मोक्ष प्राप्त करनेके लिए की जाती है। विषयोके सेवन करने के लिए नही की जाती इसीलिए उससे होने वाला सावद्य कर्म पापका कारण कभी नही हो सकता पुण्य का ही कारण होता है ॥१४२,१४३॥

अर्थ—कुटुव पोपण और भोगोपभोगके लिए किया गया आरम्भ पाप उत्पन्न करनेवाला होता है। परन्तु दान पूजा आदि धर्मकार्योमे किया गया आरम्भ वा की गई लेशमात्र हिंसा सदा पुण्यको वढानेवाली ही मानी गई है ॥१४४॥

अर्थ—अपने शरीरको शुद्ध करनेके लिए भगवान्का गधोदक ले लेना चाहिए। सततिकी वृद्धिके लिए शेपाक्षत ले लेना चाहिए और तिलक लगानेके लिए चदन ले लेना चाहिए। इन द्रव्योके ले लेने मे कोई किसी प्रकारका दोप नही लगता। भावार्थ—अभिपेकका गधोदक यद्यपि मत्र पूर्वक चढाया जाता है तथापि उसके लेनेमें कोई दोप नही है। पूजा करनेके वाद वचे हुए अक्षतो को शेपाक्षत कहते है। पूजा करनेके वाद शेपाक्षतोको मस्तकपर धारण करना चाहिए। इसी प्रकार चदनपूजा करने-

के वाद वचे हुए, चंदनसे तिलक लगाने में भी कोई दोष नहीं है ।।१८५।।

अर्थ—पूजाके चार अंग है पूज्य पूजक पूजा और पूजाका फल । भगवान् जिनेन्द्रदेव पूज्य है । पुण्यको बढ़ानेवाली भगवान की पूजा पूजा कहलाती है । अभिषेक आव्हान स्थापन सन्निधि-करण पूजा और विसर्जन इन छह प्रकारसे भगवान्‌की पूजाकी जाती है । अपने आत्माका अभ्युदय प्राप्त होना अर्थात् स्वर्गोके इन्द्र अहमिंद्रकी सपदा प्राप्त होना और अतमे मोक्षकी प्राप्ति होना पूजाका फल है । जो जीव भव्य है वही पूजक गिना जाता है ।।१४६।।

अर्थ—पूजा करनेके लिए अभिषेक और चदन पूजाके वाद सवसे पहले आव्हान किया जाता है फिर स्थापना सन्निधिकरण किया जाता है तदनन्तर पूजाकी जाती है और फिर विसर्जन-कर क्षमायाचना की जाती है । इस प्रकार प्रतिदिन पचोपकारी पूजा करनी चाहिए । भावार्थ—आव्हान आकर्षण मन्त्रसे किया जाता है यथा—ओं ह्री अर्ह अर्हत्परमेष्ठिन् अत्रअवतर २ सवौ-षट् । स्थापना स्तवनमन्त्रसे की जाती है यथा—ओ ह्री अर्ह अर्हत्परमेष्ठिन् अत्रतिष्ठ तिष्ठ ठः ठः । सन्निधिकरण वशीकरण मन्त्रसे करना चाहिए यथा—ओं ह्रीं अर्ह अर्हत्परमेष्ठिन् अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् । पूजा भी मंत्र पूर्वककी जाती है और विसर्जन मन्त्र यह है ओं ह्री अर्ह अर्हत्परमेष्ठिन् स्वस्थाने गच्छ जः जः स्वाहा । दोनो हाथोंको मिलाकर सीधा करे फिर दोनों अंगूठोंको अनामिका उगलियो पर रक्खे ऐसा करनेसे दोनों हाथोका जो आकार होता है वह आव्हानकी मुद्रा है । इन्ही हाथोको उलट देनेसे स्थापन मुद्रा हो जाती है तथा दोनों हाथ जोड़कर हृदयसे लगा लेनेको सन्निधिकरण मुद्रा कहते

हैं। आन्हान आदि सव विधि उनकी मुद्रा पूर्वकही करनी चाहिए उसीसे यथार्थ फलकी सिद्धि होती है। * ॥१४७,१४०॥

---

* पूजा करनेके पहले आह्वान स्थापन सन्निधिकरण अवश्य करना चाहिए। जो लोग आह्वान नही करते है वे गहरी भूल करते है। ऐसे लोग कहते है कि जब भगवानकी प्रतिमा सामने विराजमान है तब फिर आह्वान न करनेकी क्या आवश्यकता है परन्तु ऐसे लोग आह्वानका अर्थ नही समझते हैं। जैन शास्त्रों मे एक स्थापना निपेक्ष माना है। साकार वा निराकर पदार्थमें किसीके गुणका आरोपण करना स्थापना निपेक्ष है। जैसे सामने को विराजमान प्रतिमामे किसी तीर्थंकरकी स्थापना है परन्तु आह्वान स्थापनमे जो स्थापन है वह स्थापना निपेक्ष नही है। वह तो पूजाका एक अग हैं। जिसप्रकार किसी वडे वा छोटे आदमी को वुलाते है और वह वुलाया हुआ जव सामने आता है तव उसके आदर सत्कारके लिए कहा जाता है कि आइये साहव अच्छे तो हो आइये यहां वैठिये। इसप्रकार कहना आदरसत्कारका एक अग है। उसी प्रकार आह्वान स्थापन सन्निधिकरण भी पूजा वा आदर सत्कारके अग हैं। यदि वुलानेवाला मनुष्य आये हुए मनुष्यसे 'आइये यहा वैठिये' इत्यादि वचन न कहे तो वह आया हुआ मनुष्य अपना अनादर समझता है उसी प्रकार यदि पूजाके पहले आह्वान स्थापन न किया जाय तो वह भी एक प्रकारका भगवानका अनादरसमझना चाहिए। आह्वान स्थापन का अर्थ भी 'आइये यहा विराजियें' यही होता है और इसीलिए वह पूजाका अग माना जाता है। जितनी पूजा है उनसवमें आह्वान स्थापन है इसलिए पूजामें आह्वान स्थापन न करना पूजा शास्त्रके विपरीत चलना है।

आह्वान स्थापनमे जो स्थापना है उसका अर्थ एक क्षेत्रसे

अर्थ—जो स्त्रियां सती हैं शीलव्रतको पालन करने वाली हैं विनय आदि गुणोंको धारण करती है जो सम्यग्दर्शन से सुशोभित हैं और जिनका चित्त अत्यन्त चचल नहीं है अर्थात् जो अपने चित्तको भगवानके स्वरूपमें स्थिर रख सकती हैं ऐसी स्त्रियां स्नानकर शरीर पर चन्दन लगाकर सफेद धुले हुए वस्त्र पहनकर और सोलह आभरण पहनकर भगवान जिनेन्द्रदेवकी पूजा कर सकती है। भावार्थ – स्त्रियोंको नित्य नैमित्तिक दोनों प्रकारकी पूजा करनेका अधिकार है। जिस प्रकार पुरुष शुद्ध होकर शुद्ध वस्त्र धारणकर विधिपूर्वक अभिषेक पूजा आदि क्रियाये करते है उसी प्रकार स्त्रियोको भी सर्वांग शुद्ध होकर (मस्तक परसे स्नानकर) शुद्ध वस्त्रोको धारण कर विधि पूर्वक पूजा व अभिषेक करना चाहिए। मुनियोको आहार देना और भगवानकी पूजा करना दोनो ही श्रावकके मुख्य कर्म है इसलिए ये दोनों कार्य श्रावक श्राविका दोनोके लिए समान है।

बहुतसे लोग स्त्रियोंके लिए भगवानका अभिषेक करनेका निषेध करते हैं उन्हें यह समझ लेना चाहिए किकिसी भी शास्त्र में स्त्रियोंको भगवानका अभिषेक करनेका निषेध नही है। अनेक

दूसरे क्षेत्रमें विराजमान करना है जैसा कि लिखा है 'क्षेत्रात्क्षेत्रांतरं द्रव्य स्थापना सा निगद्यते' अर्थात् किसी द्रव्यको एक क्षेत्रसे दूसरे क्षेत्रमें स्थापन करना स्थापना है। पूजाके समय भगवानको अपने हृदयमें विराजमान किया जाता है यही उनका क्षेत्रांतर स्थापन है। इसलिए पूजाके समय आह्वान स्थापन अवश्य करना चाहिए। जो लोग आह्वान स्थापनको स्थापना निक्षेप समझते है। वे भूलते है उन्हे समझ लेना चाहिए कि इन पचम कालमें चावल आदि अतदाकार पदार्थोमे स्थापना निक्षेपका निषेध है।

शास्त्रोंमे स्त्रियोंके द्वारा भगवानके अभिषेक करनेके उदाहरण मिलते हैं परन्तु निषेध किसीमें नही मिलता तथा किसी भी शास्त्रमें स्त्रियोंके द्वारा किए गए अभिषेकको बुरा भी नहीं बतलाया है। लोकाचारमें भी अनेक देशोमे स्त्रियां अभिषेक करती हैं तथा अनेक देशोंमें नही भी करती हैं। परन्तु न करने से निषेध सिद्ध नही हो जाता। शास्त्रोमें स्त्रियोको पूर्ण पूजन करने का विधान बतलाया है। उसमें अभिषेक भी आ जाता है। हां उन्हें अपनी शुद्धिका पूर्ण ध्यान रखना चाहिए ॥१४९, १५०॥

अर्थ—बढई, कारीगर नाई चितेरा सिलावट सूत्रधार शिल्पकार पेशगार दरजी माली नट गवैया, भाट चारण तबलची, सारंगीवाला सेवक सुनार बीध्या सारथी प्रतीहार ये अठारह जातिके शूद्र स्पृश्य शूद्र कहलाते हैं। स्पृश्य शूद्रोके कारु अकारु के भेदसे दो भेद हैं जिनके कारीगरीकी जीविका है ऐसी जातियां कारु स्पृश्य शूद्र कहलाती हैं। जिनके कारीगरीकी जीविका नही है तथापि जिनकी जाति शूद्र है उनको अकारु कहते हैं जैसे धोबी लुहार आदि अकारु शूद्र हैं। इनमें कितनी ही जातियां स्पृश्य होने पर भी अस्पृश्य शूद्रोंके समान हैं। भंगी चमार आदि अस्पृश्य शूद्र कहलाते हैं। जिनके स्पर्श करनेसे स्नान करना पडता है और उसकी शुद्धिके लिए आचमन करना आदि क्रियायें करनी पड़ती हैं मुनिराजोको भी जिनका स्पर्श हो जानेपर दण्ड स्नान करना पडता है मन्त्रस्नान पूर्वक उपवास करना पडता है। इसप्रकार प्रायश्चित्त करना पडता है उनको अस्पृश्य शूद्र कहते हैं। अस्पृश्य शूद्रके द्वारा स्पर्श किया हुआ पदार्थ भी ग्रहण करने योग्य नहीं होता है। यदि ऐसा पदार्थ ग्रहण करनेमे आजाय तो उसका प्रायश्चित्त लेना पड़ता है। स्पृश्य शूद्र जातिमें भी जो अस्पृश्य शूद्रोंके समान हैं उनको भी श्रीजिनमन्दिर मे प्रवेश

करने का अधिकार नहीं है। स्पृश्य शूद्र जिनमन्दिरमें प्रवेश कर सकता है सफेदी मरम्मत आदि कार्य कर सकता है। परन्तु भगवानके श्रीमण्डपमें प्रवेश करनेका उसको भी अधिकार नहीं है।

गृहस्थ अपने घरके कामोंमें स्पृश्य शूद्रोंको लगा सकता है क्योंकि वर्तन मांजना लीपना पोतना धोती धोना आदि अनेक सेवाके कार्य शूद्रके ही आधीन होते हैं। भोजनके कार्योंमें शूद्रोंके कोई अधिकार नहीं हैं ॥१५१,१५२,१५३,१५४॥

अर्थ—इसप्रकार आगमकी आज्ञानुसार द्रव्यक्षेत्र पात्र आदिकी शुद्धिका पूर्ण विचार रखना चाहिए। द्रव्यक्षेत्र काल भावपात्रआदिको शुद्धकरअपने शरीर वा भावोंको शुद्धि करनी चाहिए। तदनन्तर अन्य समस्त सामग्रीको शुद्धि करना चाहिए। इस प्रकार वाह्य आभ्यान्तर सब प्रकारकी शुद्धियोंको पूर्णकर जो पुरुष भक्ति पूर्वक भगवानकी पूजा करता है वह मनुष्य अपने अभीष्ट पदार्थोंकी सिद्धिको अवश्य प्राप्त होता है। भावार्थ— क्षेत्रकी शुद्धि गोमय व मिट्टीसे होती है शरीरकी शुद्धि जल स्थान मत्र स्नान और आचमन आदिसे होती है। मनके राग द्वेष दूर करनेसे भावोकी शुद्धि होती है तथा मन्त्रोंसे भी भावों की शुद्धि होती है। सामग्रीकी शुद्धि जलसे प्रक्षालन करने और मन्त्रोंसे होतो है इसप्रकार शास्त्रानुकूल सर्वांग शुद्धिकर यज्ञो-पवीत आदि संस्कारोंसे सुशोभित ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंको भगवान जिनेन्द्रदेवको पूजा व अभिषेक करना चाहिए ॥१५६॥

अर्थ—जो भव्य जीव ईर्ष्या मत्सर आदि दुष्टभावोंसे रहित होकर तीनों समय भगवान जिनेन्द्रदेवकी पूजा करता है। वह जोव सौधर्मादिक स्वर्गोंमें इन्द्र आदि उत्तमदेव होता है। जो भव्य जीव निर्मल परिणामोंसे एक बार भी जिनेन्द्र देवकी

प्रतिमाका पूजन करता है वह जीव अपने समस्त पापोको नष्ट कर इन्द्रादिक उत्तम पदार्थोंको प्राप्त होता है। भावार्थ—प्रातः काल मध्याह्नकाल और सायकाल तीनो समय भगवानकी पूजाकी जाती है। भक्ति पूर्वक भगवानकी पूजा करनेसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है और अनुक्रमसे मोक्षकी प्राप्ति होती है ॥१५७-१५८॥

अर्थ—जो भव्य जीव प्रेम वा भक्ति पूर्वक समस्त पापोको नाश करनेवाले भगवान जिनेन्द्रदेवकी प्रतिमाका पूजन करता है वह देवोके द्वारा पूजा जाता है तथा मरकर फिर उत्तम मनुष्य होता है। भावार्थ—जिनप्रतिमाकी पूजा करनेवाला मर कर इन्द्रादिक पदको प्राप्त होता है और फिर वहासे आकर उत्तम मनुष्य होकर मुक्त होता है ॥१५९॥

अर्थ—धर्मपत्नी सहित रहनेवाले गृहस्थोको आचार्योंने वह पूजा आठ प्रकार वतलाई है। जल चन्दन अक्षत पुष्प नैवेद्य दीप धूप फल इन आठ द्रव्योसे होनेवाली पूजा आठ प्रकारको कहीं जाती है। यह आठ प्रकारकी पूजा जन्म मरण रूप ससार का नाश करने वाली है ॥१६०॥

अर्थ—जो भव्य जीव जल इक्षुरस दूध दही घी सर्वोषधि आदिसे भगवान जिनेन्द्रदेवकी प्रतिमाका पचामृताभिषेक करता है उसके शरीरसे मनसे और अकस्मात् होने वाले सब तरहके सताप अवश्य नष्ट हो जाते है ॥१६१॥

अर्थ—जो भव्यजीव प्रतिहार्य आदि अनेक शोभाओसे सुशोभित भगवान जिनेन्द्रदेवकी प्रतिमाके सामने भृगार नालसे (झारीसे) तीनवार जलकी धारा देता है वह पुरुष महा पुण्यवान् समझा जाता है और उसके जन्ममरण बुढ़ापा आदिके

समस्त दुःख अनुक्रमसे नष्ट हो जाते हैं तथा थोड़े ही भवोंमें उसकी पापरूपी धूलि अवश्य ही शांत हो जाती हैं। भावार्थ—भगवान जिनेन्द्रदेवकी प्रतिमाके सामने झारीको टोंटीसे तीनवार जलकी धारा देनी चाहिये। यही जल पूजा कहलाती है जलधारा झारीसे ही देनी चाहिये कटोरी आदिसे नहीं ॥१६२॥

अर्थ—चन्दनसे भगवान् जिनेन्द्रदेवकी पूजा करने से जो पुण्य होता है उससे यह जीव जन्म २ में अत्यन्त सुगंधित शरीर प्राप्त करता है उस शरीरकी सुगधितसे दशो दिशायें सुगंधित हो जाती है। भावार्थ—भगवान जिनेन्द्रदेवके चरण कमलोंके अंगूठे पर अनामिका उगली से चन्दन लगाना चन्दन पूजा कहलाती है। सबसे छोटी उगलीके पासकी उगलीको अनामिका कहते हैं ॥१६३,१६४॥

अर्थ—सफेद सुगधित और शुभशालि धान्योंसे उत्पन्न हुए अखड तन्दुलोसे भगवान जिनेन्द्रदेवके चरण कमलोंकी पूजा करनेवाला मोक्षरूपी अक्षय लक्ष्मीको प्राप्त होता है। भावार्थ—भगवानकी प्रतिमाके सामने चावलोके पुंज करनेसे अक्षत पूजा कही जाती है। वे चावलोके पुञ्ज अगूठेको ऊपर कर बंधी हुई मुट्ठीसे रखने चाहिए साथ में मन्त्र भी पढ़ना चाहिये। रकावीसे अक्षत नही चढाना चाहिये ॥१६५॥

अर्थ—जो भव्य जीव पुष्पोसे भगवान जिनेन्द्रदेवकी पूजा करता है। वह स्वर्गलोकके इन्द्रकी देवियोके मध्यमें बैठा हुआ अनेक देवियोंके सुन्दर नेत्रोंके द्वारा सदा पूजा जाता है। भावार्थ—वह इन्द्र होता है और अनेक देवागनाये उसकी सेवा करती हैं पुष्प भगवानकी प्रतिमाके चरणोपर चढ़ाये जाते है। पुष्प दोनो हाथोंकी अंजलिसे चढाना चाहिये। इसीको पुष्प पूजा कहते हैं ॥१६६॥

अर्थ—जो भव्यजीव पकाये हुए अनेक प्रकारके नैवेद्यसे भगवान जिनेन्द्रदेवकी प्रति दिन पूजा करता है वह पांचो इन्द्रियोसे उत्पन्न हुए महासुखोका अनुभव करता है। भावार्थ—चावलोंके भातको अन्न कहते है। किसी अच्छे थालमें नैवेद्यको रखकर तथा दोनो हाथोसे उस थालको पकड़कर भगवानके सामने आरती उतारनेके समान उस थालको फिराकर सामनें रख देना चाहिये हाथ या कटोरीसे नैवेद्य नही चढाना चाहिये ॥१६७॥

अर्थ—जो भव्य जीव रत्न घी वा कपूरके दीपकोसे भगवान जिनेन्द्रदेवके चरण कमलोकी आरती उतारता है उस पुरुषकी काति चन्द्रमाके समान निर्मल हो जाती है। भावार्थ—दीपपूजा दीपकसे ही होती है। रगे हुए चटकसे नही। रगे हुए चटकसे भगवानका शरीर दैदीप्यमान नही होता। दीपकसे आरती उतारी जाती है। इसीलिए परिणामोकी विशुद्धि जो आरतीसे होती है वह रगे चटकसे नही हो सकती। दोनो हाथोसे दीपक का थाल लेकर दाई ओरसे बाई ओर घुमाकर भगवानके सामने बार-बार दैदीप्यमान करनेको आरती कहते है। इसीको दीप-पूजा कहते है ॥१६८॥

अर्थ—जो भव्य जीव कृष्णागुरु चन्दन आदि सुगधित द्रव्योसे बनी हुई धूपसे भगवान जिनेन्द्रदेवके चरण कमलोकी पूजा करता है अग्निमे खेकर धूप चढ़ाता है। वह पुरुष समस्त लोगोके नेत्रोंका प्यारा हो जाता है। भावार्थ—धूपको अग्निमे खेकर उसका धूआ अपनें दांये हाथसे भगवानकी ओर करना चाहिये इसीको धूपपूजा कहते है। धूप थालमे नही चढाई जाती किंतु अग्निमे ही खेई जाती है।

अर्थ—जो भव्य जीव आम, नारगी, नीबू, केला, आदि वृक्षोसे उत्पन्न होनेवाले फलोसे भगवान सर्वज्ञ देवकी पूजा

करता है वह पुरुष अपनी इच्छाके अनुसार फलोंको प्राप्त होता है। भावार्थ—जिन फलोंसे इन्द्रिय और मनको सन्तोष हो ऐसे हरे वा सूखे फल चढाना चाहिये। फल देखनेमें सुन्दर और मनोहर होने चाहिये। गोला या बादामकी मिगी फल नहीं कहलाते किंतु नैवेद्य कहलाते हैं। इसलिए गोलाके बदले नारियल चढ़ाना चाहिये बादाम भी फोड़कर नहीं चढाना चाहिये। रकाबीमें फल रखकर बड़ी विनय और भक्तिसे भगवानके सामने रखने चाहिये। आठों द्रव्योंमें फल सर्वोत्कृष्ट द्रव्य है ॥१७०॥

अर्थ—जल, चन्दन, अक्षत, अत्यन्त सुगन्धित पुष्प आदि समस्त द्रव्योंके समुच्चय रूप अर्घसे भगवान जिनेन्द्रदेवके सामने दिव्य पुष्पांजलिको समर्पण करता हुआ पुण्यवान पुरुष मोक्ष फलको प्राप्त होता है। भावार्थ—फल पूजाके बाद समस्त द्रव्यों से मिला हुआ अर्घ चढ़ाना चाहिये। अर्घमें आठों द्रव्योके सिवाय दूब सफेद सरसों साथियां नंद्यावर्त दही पान आदि द्रव्य भी होते है अष्ट द्रव्योके साथ इन द्रव्योंके मिलानेसे ही अर्घ संज्ञा होती है केवल अष्ट द्रव्योके मिलानेसे नही। अर्घमें दीपक जलाकर फिर उसको आरतीके समान उतारना चाहिये। अर्घ चढानेके बाद पुष्पांजलि अवश्य चढ़ाना चाहिये। जो पुरुष अर्घ चढानेके बाद पुष्पाजलि नहीं चढाता वह पूजाके अनुक्रमको भूलता है। दोनों हाथोंको अंजलीमें पुष्प रखकर पुष्प वृष्टिके समान भगवानपर क्षेपण करनेको पुष्पांजलि कहते है। पूजाकी पूर्णता पुष्पाजलिसे ही होती है। पुष्पांजलिके बाद झारीसे शांति धारा देनी चाहिये। शातिधारा समस्त सुखोंको देनेवाली होती है ॥१७१॥

अर्थ—भगवानके सामने पुष्पांजलि चढ़ानेसे महापुण्यकी

प्राप्ति होती है। तथा उस पुण्यसे यह मनुष्य अपने समस्त दुःखों की जलांजलि दे डालता है। भावार्थ—उसके समस्त दुःख दूर हो जाते हैं ॥१७२॥

अर्थ—भव्य जीवोको नाम स्थापना द्रव्य और भाव इन चार निक्षेपोसे भगवान जिनेन्द्रदेवकी स्थापना करनी चाहिए और फिर पुण्यकी वृद्धि करनेके लिये भगवान जिनेन्द्रदेवकी पूजा करनी चाहिए। भावार्थ—बिना स्थापना निक्षेपके भगवान की पूजा सदा नही हो सकती स्थापना निक्षेपकी विधि प्रतिष्ठा शास्त्रोसे जान लेना चाहिये ॥१७३॥

अर्थ—प्रतिष्ठा पाठोंके अनुसार प्रतिष्ठा किये विना भगवान की प्रतिमा कभी पूज्य और वदनीय नही होती बिना न्यास वा प्रतिष्ठाके वह प्रतिमा पत्थरके समान मानी जाती है। बिना प्रतिष्ठाकी हुई प्रतिमासे प्राणियोको कभी भी सुखकी प्राप्ति नही हो सकती। भावार्थ—प्रतिष्ठा विधिसे प्रतिमामें अरहतके गुणो का आरोपण किया जाता है। बिना गुण आरोपण किये पूज्यता नही आ सकती। इसलिये प्रतिष्ठित प्रतिमा ही पूज्य होती है। फोटो चित्र लेप आदिकी अप्रतिष्ठित प्रतिमाए कभी पूज्य नही होती ॥१७४॥

अर्थ—जिस किसी पदार्थमें किसी अन्य पदार्थके कोई गुण न हो केवल व्यवहार चलनेके लिये उसका वैसा ही नाम रख लिया जाय तो उसको नाम निक्षेप कहते है यह नाम निक्षेप करना लोगोकी इच्छानुसार होता है। जैसे किसी पुरुषमे इन्द्र के गुण न हो तो भी उसका नाम इन्द्र रख लिया जाय तो उसको नाम निक्षेप समझना चाहिये ॥१७५॥

अर्थ—साकार वा निराकर पत्थर आदिमे "यह वही है"

इस प्रकार निश्चय संकल्पपूर्वक करनेको स्थापनानिक्षेप कहते हैं। भावार्थ—जिसकी स्थापना करनी हो उसीके आकारकी वस्तुमें स्थापना करना साकार स्थापना है जैसे अष्ट प्रातिहार्य सहित समचतुरस्र सस्थानकी मूर्ति बनाकर उसमें अरहतदेवको स्थापना करना अरहतके गुणोंका आरोपण करना साकार स्थापना है तथा शतरजकी गोटोंमे बादशाह आदिको कल्पना करना निराकार स्थापना है। कलिकालमें निराकार स्थापना का निषेध है ॥१७६॥

अर्थ—जो पदार्थ आगामी गुणोंके योग्य है उसको वर्तमान में कहना द्रव्य निक्षेप कहलाता है। तथा वर्तमान समयमें जैसी उसकी पर्याय हो उसको वैसा ही कहना भाव निक्षेप कहलाता है जैसे राजपुत्रको राजा कहना अथवा क्षपकश्रेणीमें चढ़े हुए मुनिराजको अरहत कहना द्रव्य निक्षेप है तथा सिंहासन पर विराजमानको अरहत कहना भाव निक्षेप है ॥१७७॥

अर्थ—इस प्रकार शुद्ध सम्यग्दर्शनको धारण करने वाले श्रावकोको नाम स्थापना द्रव्य भाव इन चारों निक्षेपोंसे स्थापना कर भाव पूर्वक अपनी शक्तिके अनुसार भगवान जिनेन्द्रदेव की पूजा करनी चाहिये ॥१७८॥

अर्थ—जो मुनिराज भगवान जिनेन्द्रदेवके गुणोके समूहोंमें तल्लीन हो रहे है ऐसे मुनिराजोको अपने भावोंसे ही भाव पूजा करनी चाहिये। क्योकि भाव पूजा भी समस्त भावोंको नाश करने वाली है। भावार्थ—मुनियोके पास कुछ द्रव्य नही रहता इसलिये मुनियोंको भाव पूजा करनेका ही अधिकार है। परन्तु गृहस्थ लोग विना द्रव्यके सद्गृहस्थ नही कहला सकते इसीलिये ऐसे गृहस्थोंको द्रव्य पूजा करनेका ही अधिकार है। गृहस्थोंके परिणाम अत्यन्त निर्मल नही होते इसलिये वे भाव पूजा कर नहीं सकते इसीलिये उनको भाव पूजा नही करनी चाहिये ॥१७९॥

अर्थ—भव्य जीवोको तीनो समय पूजा करनी चाहिये। यह पूजा पुण्यको बढाने वाली है और जन्म जन्मके किये हुए पापो के समूहको नाश कर देने वाली है ॥१८०॥

अर्थ—प्रातः कालके समय भगवानकी पूजा करनेसे पाप नष्ट हो जाते हैं मध्यान्ह कालके समय पूजा करनेसे लक्ष्मी प्राप्त होती है और संध्याकालके समय पूजा करनेसे मोक्षकी प्राप्ति होती है इस प्रकार भगवानको पूजा करनेसे निरन्तर आत्माका कल्याण होता रहता है ॥१८१॥

अर्थ—इस प्रकार इस दूसरे अध्यायमे जिन पूजाका वर्णन किया अव आगे इस तीसरे अध्यायमें समस्त सुखोको देनें वाली गुरुकी उपासनाका वर्णन करते हैं ॥१८२॥

अर्थ—अपने मनोवाञ्छित पदार्थ सिद्ध करनेके लिए तथा इस लोक सम्बन्धी समस्त सशय रूपी अधकारको नाश करनेके लिये और परलोकमे सुख प्राप्त करनेके लिए गुरुकी सेवा सदा करते रहना चाहिये ॥१८३॥

अर्थ—उत्तम मध्यम जघन्य कैसे ही मनुष्य हों परन्तु विना गुरुके वे मनुप्य नही कहलाते । इसलिये प्रत्येक मनुष्यको सर्वो त्कृष्ट गुरुकी सेवा अवश्य करनी चाहिये ॥१८४॥

अर्थ—ये संसारके मनुष्य सदा शुभ अशुभ कर्मोके करने में ही तल्लीन रहते है परन्तु वे ही मनुष्य गुरुके उपदेशके अनु- सार आचरण पालन करनेसे गुणोसे भी गुरु हो जाते हैं ॥१८५॥

अर्थ—जिन्होंने धर्मोपदेश रूपी अमृतसे अपने मनका सब मैल धो डाला है, जो सम्यग्दर्शन रूपी रत्नोका आभूषण पहने हुये हैं, सम्यग्ज्ञान ही जिनका श्रेष्ठ भोजन है, सम्यक् चारित्र- रूपी श्रेष्ठ वस्त्रसे जिनका शरीर ढका हुआ है, जिनकी बुद्धि

अत्यन्त निर्मल है, मोहनीय कर्मके उपशम रूपी हाथी पर सवार होनेके कारण जिनका अन्तःकरण अत्यन्त निर्मल है जो समस्त जीवोंका हित चाहनेवाले हैं समस्त जीवोंका कल्याण करनेवाले हैं, मिथ्यात्व रूपी महा दुष्कर्म पापको नाश करनेवाले हैं, जीवोंको जन्म मरण रूप संसारसे पार उतारनेवाले हैं, जिन्होंने अन्तरंग बहिरंगके भेदसे चौवीसों प्रकारके परिग्रहका त्याग कर दिया है, जो जैन धर्मकी सदा प्रभावना किया करते हैं, जो चारों प्रकारके संघके नायक हैं, समस्त संघके आधार हैं मूल-मार्ग वा मोक्ष मार्गको साक्षात् दिखानेवाले हैं, जो शिष्य वर्गोंका सदा अनुग्रह किया करते हैं, पापरूपी ईन्धनके लिए जो अग्निके समान हैं जो पांचों इन्द्रियाके महाभोगोंसे सदा विरक्त रहते हैं तीनों लोकोंके समस्त जीव जिनको नमस्कार करते हैं जिनका शुद्ध आत्मा प्रमाद और मदसे सदा रहित है। जो भगवान जिनेन्द्रदेवकी आज्ञाका सर्वथा प्रतिपालन करते हैं जो अनेक शास्त्रोंके पढ़ानेमें समर्थ है तथा अनेक ग्रंथोंके पढ़नेमें चतुर है। इसप्रकार जो अनेक गुणरूपी श्रेष्ठ रत्नोंके समुद्र हैं उनको गुरुराज वा सर्वोत्कृष्ट गुरु कहते है। ऐसे महा गुरु इस जन्ममरण रूप महा समुद्रमें पड़े हुए भव्य जीवोंको पार करनेके लिए नावके समान हैं। भावार्थ—यहांपर गुरु शब्दसे धर्म गुरु समझना चाहिये। जो गुरु परम दिगम्बर हैं विषय कषायोंसे सर्वथा रहित हैं ज्ञान ध्यानमें सदा लीन रहते हैं जो जैनधर्मकी वृद्धि करनेवाले हैं शिक्षा दीक्षा देनेके अधिकारी हैं ऐसे आचार्य परमेष्ठी गुरु कहलाते हैं। इनके सिवाय उपाध्याय और साधु परमेष्ठी भी गुरु कहलाते हैं। निर्वाण दीक्षा देनेके अधिकारी आचार्य होते हैं। वे ही गण संघ और शासनके अधिपति माने जाते हैं। परन्तु गृहस्थोंकी दीक्षाका कार्य गृहस्थाचार्य करते है इसलिए गृहस्थाचार्य भी गृहस्थगुरु माने जाते हैं ॥१८६,१८७, १८८, १८९, १९०, १९१, १९२ ॥

अर्थ—वाचना पढ़नेको वा पढ़ाने को कहते है वह वाचना रीति वाक्य अर्थ और सन्दर्भ रचना सहित होती है। रीति वाक्य अर्थ और सन्दर्भसे रहित वाचना कभी नही होती। अपना सदेह दूर करने के लिए गुरुके समीप जाकर उनसे वस्तुका स्वरूप पूछना पृच्छना है शुद्धतापूर्वक कठस्थ करना पढना आम्नाय है। वार-वार चिंतवन करना अनुप्रेक्षा है और धर्मका उपदेश देना धर्मोपदेश है। इसप्रकार स्वाध्यायके पांच भेद कहे जाते है ॥१९९,२००॥

सयम दो प्रकार का है एक इन्द्रिय सयम और दूसरा प्राणिसयम। इन्द्रियोके विषयोका त्याग कर देना इन्द्रिय सयम है। तथा छह कायके जीवोकी रक्षा करना दया पालन करना प्राणि सयम है ॥२०१॥

अर्थ—इन्द्रिय संयमको पालन करनेवाला भव्य जीव सब जीवोका प्रिय हो जाता है, तथा इन्द्र नरेन्द्र आदि अनेक पदो-का भोगनेवाला होता है और संसार समुद्रसे पार हो जाता है ॥२०२॥

अर्थ—वनका मदोन्मत्त हाथी हथिनीके स्पर्शका लोलुपी होकर बन्धन ताडन और परवशताके अनेक दुखोको प्राप्त होता है ॥२०३॥

अर्थ—अगाध जलसे भरे हुए नदी नद और सरोवरमें रहने वाली मछली केवल रसना इन्द्रियके वशीभूत अपना गला छिदवाती है ॥२०४॥

अर्थ—सूर्यके अस्त होजाने पर कमल में बैठा हुआ मूर्ख भोरा घ्राण इन्द्रियके वशीभूत होकर उसी कमल में मर जाता है ॥२०५॥

अर्थ—अत्यन्त मूर्खताको धारण करनेवाला पतंग नेत्र इन्द्रियके वशीभूत होकर दीपककी लो में पड़कर वही पर मर जाता है ॥२०६॥

अर्थ—हिरण कर्ण इन्द्रियके विषयके आधीन होकर व्याधके वाणसे मारा जाता है और उसी क्षणमें वही पर मर जाता है ॥२०७॥

अर्थ—अनेक जीव एक एक इन्द्रियके वशीभूत होनेके कारण अनेक प्रकारके दुखोको प्राप्त होते हैं फिर भला जो जीव पांचों इन्द्रियोके वशीभूत हैं वे भव भवमें क्यो न दुखी होंगे ? अवश्य होंगे ॥२०८॥

अर्थ—मनरूपी राजाकी प्रेरणासे समस्त इन्द्रियरूपी दास बिचार रहित होकर अपने अपने कार्यो मे लगे रहते हैं ॥२०९॥

अर्थ—जिस समय यह मन अपने इन्द्रियरूपी सेवकोंसे रहित हो जाता है उस समय यह लगड़ेके समान होजाता है तथा उस समय अपने ही स्थान पर रहकर अनेक प्रकारके सकल्प विकल्पोंका जाल बनाया करता है। भावार्थ—अकेला मन अनेक प्रकारके विकल्प उत्पन्न किया करता है ॥२१०॥

अर्थ—मनको निरोध करलेनेसे पहले जन्मोंके किये हुए समस्त पाप नष्ट होजाते हैं और फिर मनुष्य वा मनुष्यका मन इन्द्रियोंके विषयमें प्रवृत्त नही होता है। इस प्रकार यह मनुष्य इस श्रेष्ठ धर्मको जीतकर धारण कर लेता है ॥२११॥

अर्थ—जिसका मन चंचल नही होता स्थिर रहता है उसके लिये देव अनेक वर प्रदान कर देते है। जिनका मन निश्चल है उनके दान पूजा उपवास आदि सफल हो जाते हैं ॥२१२॥

अर्थ—जो पुरुष पांचों इन्द्रियोंको अपने वश कर लेता है वह बुद्धिमान् पुरुष कठिनसे कठिन चारित्र को पालन करनेमें भी सदा समर्थ रहता है तथा फिर वह रात दिन उसीको पालन करने की चेष्टा किया करता है ॥२१३॥

अर्थ—जहां पर पांचप्रकारके स्थावर जीवोंकी रक्षा बड़े प्रयत्नसे की जाती है, दो इन्द्रिय तेइन्द्रिय चौइन्द्रिय आदि विकलत्रय जीवोंकी रक्षा बड़े प्रयत्नसे की जाती है, तथा सैनी असैनीके भेदसे दोनो प्रकारके पंचेन्द्रिय जीवोंकी रक्षा बड़े प्रयत्नसे की जाती है और इन सब जीवोंके जो पर्याप्त और अपर्याप्तके भेदसे दो प्रकारके भेद हैं उन सबकी रक्षा बड़े प्रयत्नसे की जाती है उसको प्राणि संयम कहते हैं ॥२१४, २१५॥

अर्थ—जो मनुष्य अपने मनमें दया धारण कर समस्त प्राणियोंकी हिंसाका त्याग सदाके लिये कर देता है उसको बड़े भारी पुण्यकी प्राप्ति होती है तथा उसके पाप सब दूरसे ही नष्ट हो जाते है ॥२१६॥

अर्थ—जीवोंकी रक्षा करनेसे हृदय करुणासे भरपूर हो जाता है फिर उस जीवको कभी दुःख नहीं होता तथा वह सदा सुखी ही बना रहता है ॥२१७॥

अर्थ—इस प्रकार चौथे अध्यायमें स्वाध्याय और संयमका स्वरूप कहा अब आगे तप और दान ज्ञान इन दोनोंका विधान कहते हैं ॥२१८॥

अर्थ—तपके दो भेद हैं एक वाह्य तप और दूसरा आभ्यंतर तप। इन दोनों तपोमें से प्रत्येकके छह छह भेद हैं। ये सब बाहर

प्रकार के तप कर्मोंको क्षय करनेके लिए दावानल अग्निके समान हैं ॥२१९॥

अर्थ—छह प्रकारके बाह्य तपोंमें पहला तप अनशन या उप-वास है, दूसरा अवमौदर्य (कम भोजन करना) है, तीसरा वृत्तिपरिसंख्यान है, चौथा रसपरित्याग है, पांचवा विविक्त-शय्यासन नामका पांचवां तप है और छठा कायक्लेश नामका तप है। ये छहों प्रकारके तप सज्जनोंके लिये अत्यन्त प्रिय हैं ॥२२०, २२१॥

अर्थ—प्रायश्चित्त, विनय, विशेषकर वैयावृत्त्य, स्वाध्याय व्युत्सर्ग और ध्यान यह छह प्रकारका तप अन्तरंग तप कह-लाता है ॥२२२॥

अर्थ—मुनिराज इन ऊपर लिखे हुए बारह प्रकारके तपश्च-रणोंको धारण कर घातिया कर्मोंको नाश कर डालते हैं। और केवली होकर मोक्षमें जा विराजमान होते हैं ॥२२३॥

अर्थ—गृहस्थके छह कर्मोंमें दान नामका कर्म महाकर्म कह-लाता है। यह दान कर्म समस्त सुखोंका खजाना है अनेक भोगोपभोगोंका देनेवाला है और समस्त दुःखोंका नाश करने-वाला है। आगे इसी दानका स्वरूप कहते हैं ॥२२४॥

अर्थ—यह दान समस्त लोगोंको वश करनेके लिये मुख्य कारण है यही दान अपने बड़प्पनका बड़े होनेका कारण है और अपनी कुल तथा जातिको प्रसिद्ध करनेवाला है ॥२२५॥

अर्थ—जैनशास्त्रोंमें दानके चार भेद बतलाये हैं। आहार-दान, ज्ञानदान, औषधदान और अभयदान। भावार्थ—ऊपर लिखे दानके चारों भेद पात्र दानके समझने चाहिये। पात्र दानके

सिवाय अन्वय दान करुणादान और समानदान ये तीन दानके भेद और समझना चाहिए¹ ॥२२६॥

अर्थ—आहार समस्त जीवोंको उसी समय सुख देनेवाला है। इस आहारसे ही यह मनुष्य ध्यान अध्ययन आदि कर्मोंके करनेमें समर्थ होता है ॥२२७॥

अर्थ—इन तीनों लोकोमें अन्नदानके समान अन्य कोई दान न हुआ है न है और न होगा। अन्नदानके सिवाय अन्य सब दान लोभके बढाने वाले है ॥२२८॥

अर्थ—आहार दान देनेमें राजा श्रीषेण प्रसिद्ध हुआ है। वह श्रीषेण राजा आहार दानके प्रभावसे अनेक सुखोंको भोगकर अन्तमें समस्त जीवोको सुख देनेवाले शान्तिनाथ तीर्थंकर हुये थे तथा वे पांचवे चक्रवर्ती भी थे ॥२२९॥

अर्थ—ज्ञानदान केवलज्ञानरूपी साम्राज्य लक्ष्मीका कारण है समस्त कर्मोंको नाश करने वाला है और महापवित्र है। इसलिये वह ज्ञान दान किसी योग्य पात्रको अवश्य देना चाहिए ॥२३०॥

अर्थ—जो शिष्य विवेका है विनयवान् है गुणभक्ति करनेमें तत्पर है और जो श्रेष्ठ व्रतोके पालन करनेमें निपुण है ऐसे

---

१. अपने पुत्रको अपनी समस्त सम्पत्ति देकर मुनि दीक्षा लेना अन्वयदान है। अपनी जातिके साधर्मी भाइयोको कन्या सुवर्ण वस्त्र वर्तन आहार आदि देना समान दान है। मुनि आर्यिका श्रावक श्राविका इन चारो प्रकारके पात्रोको आहार औषधि ज्ञान और वसतिका देना पात्रदान है। भगवान जिनेन्द्र-देव की पूजा, नित्य नैमित्तिक इंद्रध्वज आदि समस्त पूजाये पात्र-दानमें ही समझना चाहिए। दीन दुखी असमर्थ प्राणियोंको दयादृष्टिसे अन्न वस्त्र औषधि आदि देना करुणादान कहलाता है।

शिष्योको पुण्य प्राप्त करने के लिए सदा पढाते रहना चाहिए ।।२३१।।

अर्थ—दाता गुरु और शिष्य इन तीनोके मिलनेसे ही शास्त्रोका पठन पाठन वढता है। सो ठीक ही है क्योंकि समस्त सामग्रीके मिलनेसे ही कार्यकी सिद्धि होती है इसमे किसी प्रकार का सन्देह नही है ।।२३२।।

अर्थ—जो पुरुष कौडेशके समान सव तरह के सन्देहोसे रहित होकर शास्त्रोकी पूजा और योग्य पात्रके लिये उन शास्त्रोका दान देता है वह कौंडेशके समान ही पुन्यवान होकर तीनो लोकों मे प्रशसनीय गिना जाता है ।।२३३।।

अर्थ—चतुर पुरुषोको सब प्रकारके रोगोका नाश करनेके लिये उत्तम मध्यम जघन्य इन तीनो प्रकारके पात्रोको विधि पूर्वक अनेक प्रकारकी औषधिया देनी चाहिए। औषध दान देनेसे अपने सब प्रकारके रोग नष्ट हो जाते हैं।।२३४।।

अर्थ—जो दाता मुनि अर्जिका श्रावक श्राविका आदि पात्रो-को निंद्य अस्पृश्य (छूने अयोग्य) औषधिया देता है वह दाता भव भवमें नरकका पात्र होता है। भावार्थ—पात्रके लिये पवित्र और प्रासुक औषधि ही देनी चाहिये। अपवित्र और अप्रासुक औषधि कभी नही देनी चाहिये ।।२३५।।

अर्थ—जो औषधि निर्दोष है, प्रासुक है, प्रशसनीय है अनिंद्य है भक्षण करने योग्य है म्लेच्छ आदि अस्पृश्य लोगोके द्वारा स्पर्श नही की गई है ऐसी औषधि उत्तम पुरुषोको दान देनी चाहिये ।।२३६।।

अर्थ—अत्यन्त पवित्र ऐसी वृषभसेना नामकी किसी सेठकी पुत्री औषधि दानके प्रभावसे उत्तम ऋद्धिको प्राप्त हुई थी ।।२३७।।

अर्थ—अभयदानके प्रभावसे यह मनुष्य निर्भय संयमी, चिरंजीवी जगत भर को जीतने वाला यशस्वी और जिनेन्द्रिय हो जाता है ॥२३८॥

अर्थ—सम्यग्दर्शन व्रत शील और अनेक प्रकारके तप अभय दानसे ही सफल माने जाते है ॥२३९॥

अर्थ—इस अभयदानके प्रभावसे एक शूकरने उत्तम फल प्राप्त किया है। इसलिये श्रावकोंको इन चारों प्रकारके दानोंको छोड़कर अन्य सब दानोंका त्याग कर देना चाहिये ॥२४०॥

अर्थ—इस दानके प्रभावसे महा पुण्यकी प्राप्ति होती है अपने कुलकी प्रसिद्धि दानसे ही होती है। शील विवेक विनय सुख और सब प्रकारके कल्याण इस दानके ही प्रभाव से होते है। यही समझकर पुण्यवान् भव्य जीवोको सदा शुभ दान देते रहना चाहिये। इस दानके ही प्रभावसे भव्य जीवोको स्वर्गादिक के सुख प्राप्त होते है और अन्तमें मोक्षकी प्राप्ति होती है ॥२४१,२४२॥

अर्थ—भगवान जिनेन्द्रदेवने देवपूजा गुरुपास्ति स्वाध्याय सयम तप दान ये छह कर्म गृहस्थोके लिये आवश्यक कर्म बतलाये है। इन छहों कर्म रूप धर्मको पालन करता हुआ गृहस्थ चक्की उखली चूल बुहारी पानी और व्यापारसे भिन्न होने वाले पापोंको बहुत शीघ्र नष्ट कर देता है ॥२४३॥

अर्थ—चक्की उखली चूल्ही बुहारी पानी और ये पांच गृहस्थोके आरम्भ जनित पाप कहलाते हैं तथा द्रव्य कमाना कमाकर इकट्ठा करना भी छठा पाप कहलाता है। गृहस्थके ये छहों पाप देवपूजा आदि छहों कर्मोंसे नष्ट हो जाते है ॥२४४॥

अर्थ—देवपूजा गुरुपास्ति आदि छहों कर्म ज्ञानावरणादि समस्त कर्मोंको नाश करनेवाले हैं। इन छहों कर्मोंके पालन

करनेसे यह गृहस्थ उत्तम श्रावक कहलाता है और इन्हीं छह कर्मोंसे रात दिन उत्पन्न होने वाले श्रावकके पाप सब नष्ट हो जाते हैं ॥२४५॥

अर्थ—देवपूजा आदि इन्ही छह कर्मोंको पालन करनेसे इस मनुष्यका सम्यग्दर्शन निर्मल हो जाता है तथा इन्ही षट्कर्मों से यह मनुष्य अनेक प्रकारकी विभूतियोंको धारण करनेवाले इस जैन धर्मका आराधक बन जाता है। भावार्थ—केवल जैनो के घर जन्म लेनेसे ही जैनी वा सम्यग्दृष्टि नहीं कहलाता किंतु देवपूजा आदि षट्कर्मोंको प्रतिदिन करनेसे ही जैनी और सम्यग्दृष्टी कहलाता है ॥२४६॥

अर्थ—इस प्रकार इस चौथे अध्यायमे सयम तप और दानका स्वरूप कहा अब आगे पाचवे अध्यायमे सम्यग्ज्ञानका स्वरूप कहते है ॥२४७॥

अर्थ—इस प्रकार मोक्षकी इच्छा करनेवाले भव्य जीवोंको देवपूजा आदि छहो कर्मोके द्वारा अपनी आत्मामें निर्मल सम्यग्दर्शन धारण करना चाहिये। तदनन्तर आम्नाय (पठन पाठन) और युक्तियोके द्वारा उनको सम्यग्ज्ञानकी उपासना करनी चाहिए ॥२४८॥

अर्थ—यद्यपि सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान दोनो एक साथ एक ही कालमे प्रकट होते है तथापि उन दोनोका लक्षण अलग २ है। इसलिये वे दोनो भिन्न-भिन्न कहे जाते है और सम्यग्दर्शनके बाद अलग ही सम्यग्ज्ञानका आराधन किया जाता है ॥२४९॥

अर्थ—सम्यग्दर्शनके प्रगट होनेसे ही आत्माका ज्ञान सम्यग्ज्ञान कहलाता है। इसीलिये सम्यग्दर्शन कारण माना जाता

है और सम्यग्ज्ञान कार्य माना जाता है। तथा इसीलिये सम्य-ग्ज्ञानका आराधन सम्यग्दर्शनके अनन्तर आचार्योंने बतलाया है ॥२५०॥

अर्थ—जो ज्ञान भव्य जीवोंको तीनों काल और तीनो जगत के समस्त पदार्थोंमें हेय और उपादेयका स्वरूप बतलाता है। उसीको सम्यग्ज्ञान कहते हैं। भावार्थ—ग्रहण करने योग्य और त्याग करने योग्य पदार्थोंको दिखलानेवाला ही सम्यग्ज्ञान कहलाता है ॥२५१॥

अर्थ—शब्द शुद्धि, अर्थ शुद्धि, शब्द अर्थ दोनोंकी शुद्धि, काल शुद्धि, विनय शुद्धि, उपधान शुद्धि (रसत्याग वा उपवास आदि धारण कर स्वाध्याय का प्रतिष्ठापन निष्ठापन करना आरम्भ वा समाप्ति करना अथवा जो पढ़ा जाय उसे स्मरण रखना) मान वा आदर सत्कार पूर्वक पढ़ना और अनिन्हव अर्थात् गुरुका नाम न छिपाना इन आठ प्रकार की शुद्धियोको रखकर सम्यग्ज्ञानको आराधना करनी चाहिये ॥२५२॥

अर्थ—उस सम्यग्दर्शनके चार भेद है। प्रथमानुयोग करणा-नुयोग चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग। इन चारों अनुयोगोंकी वेद संज्ञा है। यह सज्ञा जिनागममें अनादिकालसे चली आ रही है। इनके सिवाय इस संसारमें अन्य कोई कल्पित वेद नही है ॥२५३॥

अर्थ—जिन ग्रथमें तीर्थंकर चक्रवर्ती आदि उत्तम महा-पुरुषोके चरित्रोका वर्णन किया जाता है जिसमें पुण्यकी महिमा स्पष्ट रीतिसे दिखलाई जाती है उसको गणधरादिक मुनिराज प्रथमानुयोग कहते है। यह प्रथमानुयोग ज्ञान असा-धारण ज्ञान समझा जाता है ॥२५४॥

अर्थ—जिनमें नरक द्वीप सागर मेरु आदि पर्वत स्वर्ग और

वातावलय आदिका स्वरूप उनकी लम्बाई चौड़ाई मोटाई आदि सबका वर्णन है। उनको करणानुयोग कहते हैं ॥२५५॥

अर्थ—जिनमे व्रत समिति गुप्ति आदि समस्त मुनि और गृहस्थोके चरित्रका स्वरूप कहा गया हो और उसका फल कहा गया हो वह असाधारण चरणानुयोग शास्त्र कहलाता है। ऐसा गणधरादि ज्ञानी पुरुष कहते हैं ॥२५६॥

अर्थ—छह द्रव्य, नौ पदार्थ, पाच अस्तिकाय सहित सातों तत्त्वोके स्वरूपको यह निर्मल द्रव्यानुयोग रूपी दीपक बड़ी अच्छी तरह प्रकाशित करता है। भावार्थ-जिसमे पदार्थ द्रव्य या तत्त्वों का वर्णन हो उसको द्रव्यानुयोग कहते है ॥२५७॥

अर्थ—यह चारो अनुयोगोसे सुशोभित होने वाला सम्यग्ज्ञान शोकरूपी वृक्षको काटनेके लिये कुल्हाडीके समान है, जीवनको अत्यत शान्तताके साथ व्यतीत कराता है और मुक्तिरूपी स्त्री का ज्ञान करानेवाला है। ऐसे इस सम्यग्ज्ञानकी आराधना अवश्य करनी चाहिए ॥२५८॥

अर्थ—इस प्रकार जिनका दर्शन मोहनीय कर्म नष्ट होगया है ऐसे भव्य जीवोको इस पाचवे अध्यायमे कहे गये सम्यग्ज्ञान के स्वरूपका विचार करना चाहिए और फिर सम्यक्चारित्र धारण करना चाहिए ॥२५९॥

अर्थ-जो मनुष्य मिथ्याज्ञान पूर्वक चारित्र धारण करता है वह चारित्र सम्यक् चारित्र नही कहला सकता। इसीलिये आचार्योने सम्यग्ज्ञानकी अराधना करनेके अनतर सम्यक चारित्रकी आराधना करना बतलाया है ॥२६०॥

अर्थ-जो व्रत समस्त पाप रूप योगोका परित्याग कर धारण किये जाते है वे ही उत्तम और श्रेष्ठ व्रत वा सम्यग्व्रत कहलाते

हैं। उस व्रतके पांच भेद है। वे सब व्रत इस पांचवें अध्यायमें निरूपण करेंगे ॥२६१॥

अर्थ–उस उत्तम व्रतके दो भेद है एक सकल चारित्र और दूसरा विकल चारित्र। सकल चारित्रके तेरह भेद है और विकल चारित्रके बारह भेद है। भावार्थ–पांच समिति पांच महाव्रत और तीन गुप्ति यह तेरह प्रकारका चारित्र सकल चारित्र कहलाता है। पाच अणुव्रत तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत यह बारह प्रकारका चारित्र विकल चारित्र कहलाता है ॥२६२॥

अर्थ—व्रत धारण करनेकी इच्छा करनेवाले भव्य जीवोंको व्रत धारण करनेसे पहले मद्य, मांस और शहद तथा पांचों उदंवरोका त्याग प्रयत्न पूर्वक कर देना चाहिए। भावार्थ–मद्य मॉस और शहदका त्याग तथा पाँचों उदंवरोका त्याग आठ मूलगुण कहलाते हैं। मूलगुणोंके धारण करनेसे व्रतोके धारण करने की योग्यता वा पात्रता आजाती है। बिना आठ मूलगुण धारण किये यह गृहस्थ श्रावक नही कहला सकता। इन आठ मूलगुणों को पाक्षिक धारण करता है और व्रतोंको नैष्ठिक धारण करता है ॥२६३॥

अथ—मद्यपान करनेसे मन मोहित हो जाता है तथा संसारकी समस्त आपत्तियां आकर प्राप्त हो जाती है इसके सिवाय यह मद्यपान इस लोक और परलोक दोनो लोकोमें अनेक प्रकारके दुःख देने वाला है। इसलिए सज्जन पुरुषोको ऐसे इस मद्यपानका अवश्य त्याग कर देना चाहिए ॥२६४॥

अर्थ–मद्यपान करनेसे यादव सब नष्ट होगये एक पाद नामक दुष्ट तपसी नष्ट हो गया, अङ्गारक नामक दुष्ट तपसी नष्ट होगया और इसी मद्यपानके करनेसे पिंगल नामक राज नष्ट हो गया ॥२६५॥

अर्थ—मासके लिये जीवोंका वध करने वाला, मासका दान देनेवाला, मासको पकानेवाला, मास भक्षणको सम्मति देने वाला, मास भक्षण करने वाला, मास बेचनेवाला और मांस खरीदने वाला अवश्य ही दुर्गति का पात्र है। भावार्थ—ये सब दुर्गतिके पात्र होते हैं ॥२६६॥

अर्थ—प्राणियोंकी हिंसा किये बिना मासकी उत्पत्ति कभी नही हो सकती। तथा प्राणियोंकी हिंसा करनेसे स्वर्गकी प्राप्ति भी कभी नही हो सकती। इसलिए सज्जनोंको मांसका त्याग अवश्य कर देना चाहिए ॥२६७॥

अर्थ—मनुने मास शब्दकी निरुक्ति इस प्रकार की है कि इस लोकमे जिसका मास मैं खाता हू वह जीव परलोकमे मेरा मास अवश्य खावेगा यही मास 'मां स' शब्द की निरुक्ति है और मास शब्दका यही अर्थ है ॥२६८॥

अर्थ—विषयी लपटी पुरुष अपनी स्वार्थ-सिद्धिके लिए कहते है कि मास भक्षण करनेमे कोई दोष नही है, मद्यपान करनेमें कोई दोष नही है और मैथुन सेवन करनेमे भी कोई दोष नहीं है। मद्य, मास और मैथुनका सेवन करना तो जीवोंकी प्रवृत्ति मे शामिल है। परन्तु उनका यह कहना सर्वथा मिथ्या है। भावार्थ—मिथ्यात्व कर्मके तीव्र उदयसे ही मासादि सेवनकी प्रवृत्ति होती है। भक्ष्य अभक्ष्यका विचार न होना अन्याय और अनर्थोंकी प्रवृत्ति होना आदि सब मिथ्यात्व कर्मके ही उदयसे समझना चाहिए ॥२६९॥

अर्थ—जो जीव अनादि कालसे इस ससारमे परिभ्रमण कर रहे हैं जो निर्दय है और जिनका हृदय कामवासनासे भरा हुआ है, ऐसे जीव ही मास भक्षण मद्यपान आदि अभक्ष्य भक्षण को उत्तम बतलाते हैं। सज्जन पुरुष कभी ऐसे वचन भी नही कहते ॥२७०॥

अर्थ—जिनकी बुद्धि दयासे भीग रही है जो कुलाचार, व्रताचार आदि पवित्र चारित्रिका पालन करते है और जो सदा सत्य भाषण करते है ऐसे पुरुषोंकी वाणी सदा प्रशंसनीय ही होती है ऐसे महापुरुषोंके वचन ऊपर लिखे अनुसार अभक्ष्य भक्षणको प्रकट करनेवाले पापमय वचन कभी नही हो सकते ॥२७१॥

अर्थ—यदि परलोकका सदेह हो तो भी बुद्धिमानोंको पापकार्योका त्याग ही कर देना चाहिए। यदि परलोक न हो तो भी पापकार्योके करनेमें कोई लाभ नही होता। कदाचित् परलोककी सत्ता वास्तवमें सिद्ध हो जाय तो फिर परलोक न माननेवाले नास्तिक लोगोंका नाश ही समझिए। भावार्थ—फिर ऐसे लोगोंकी आत्माका कल्याण कभी नही हो सकता। इसलिये परलोककी सत्ता मानकर पापकार्योसे सदा बचते रहना चाहिये ॥२७२॥

अर्थ—जो जोव परलोक मानते हैं उन्हें मद्यपान करनेवाले वा मांस भक्षण करनेवाले मनुष्योके घर कभी भोजन नहीं करने चाहिए। प्राण निकलने पर भी मांस भक्षियोके घर पर अन्नपान नही करना चाहिए। भावार्थ—मद्यमास भक्षण करनेवालोंके घर पर बैठकर अपने घरका बनाया हुआ भोजन भी नही करना चाहिए। क्योंकि वह स्थान वा क्षेत्र अनेक जीवोंका हिंसास्थान है, ऐसे स्थानोमें बैठना भी चरित्रको नष्ट करना है ॥२७३॥

अथ—जो पुरुष पक्तिवाह्य (पतित वा शूद्र आदि जिनके साथ भोजन आदि नहीं हो सकता) लोगोंके साथ भोजन करते है वा उनके साथ अधिक ससर्ग रखते हैं वे मनुष्य निंदनीय गिने जाते है तथा परलोकमें भी ऐसे लोग सदा दुखी रहते हैं ॥२७४॥

अर्थ—कुत्सित वा निन्दनीय शास्त्रोंके पठन-पाठनसे जिनकी

बुद्धि भ्रष्ट हो गई है तथा कुतर्कोंके द्वारा जिनके हृदयके शुभ परिणाम नष्ट होगये हैं। ऐसे कितने ही धृष्ट लोग कहते हैं कि इस संसारमें अभक्ष्य पदार्थ कुछ भी नहीं है। भावार्थ—इस जीवका जैसा ज्ञान होता है वैसी ही इन्द्रिय और मनकी प्रवृत्ति होती है तथा वह ऐसी ही युक्तियां को ढूंढ लेता है। मिथ्या शास्त्रोंके संसर्गसे जिनका ज्ञान मिथ्याज्ञान या कुज्ञान होगया है ऐसे लोगोंको इस संसारमें पाप ही पाप सूझता है। यहां तक कि वे पापको भी धर्म कहने लग जाते हैं। ऐसे लोग अनेक प्रकारकी युक्तियोंके द्वारा या प्रलोभनके द्वारा अन्य लोगोंको भी अपने समान ही बनानेकी चेष्टा करते हैं। ऐसे लोग ही अभक्ष्य भक्षणकी प्रवृत्ति करते हैं तथा अनेक प्रकारके अन्याय और अनर्थोंका प्रचार करते हैं। अन्तमें जाकर ऐसे लोग पछ-ताते हैं और नरकके पात्र होते हैं।

जो लोग सम्यग्ज्ञानी हैं जिन्हें आत्माके स्वरूपका ज्ञान है ऐसे लोग सदा पवित्र आचरण पालन करते हैं अन्याय अभक्ष्य से बचते हैं और सदा धर्म-कार्योंमें ही लीन रहते हैं ॥२७५॥

अर्थ—कितने ही मिथ्यावादी लोग कहते हैं कि जीव सब समान हैं और जीवोंका शरीर भी सब समान है जिस प्रकार—हिरण मेढा आदि पशुओंका शरीर मांस कहलाता है उसी प्रकार मोठ उड़द आदि एकेन्द्रिय वृक्षोंका शरीर भी मांस कह-लाता है। यदि मांसके खानेमें पाप है तो अन्नके खानेमें भी पाप होता है। यदि अन्नके खानेमें पाप नहीं है तो मांसके खाने मे भी पाप नहीं है। परन्तु उनका कहना यह सर्वथा विरुद्ध है। इसलिए ऐसे वचन कभी कहने चाहिए। क्योंकि जैन-शास्त्रोंमें लिखा है कि जीवोंके दो भेद है, स्थावर और जंगम या त्रस। लट केंचुआ आदि दो इन्द्रिय, चींटी, चींटा आदि तेइन्द्रिय,

मक्खी, भौरा आदि चौइन्द्रिय और मछली मेढा आदि पंचेन्द्रिय जीव कहलाते है, ये सब त्रस हैं। इन जीवोंका शरीर माँस कहलाता है। आम, केला, नीबू आदि वनस्पति कायके जीव स्थावर कहलाते है। स्थावर जीवोंका शरीर माँस नही कहलाता किन्तु उनका शरीर फल वा पत्तीरूप होता है। फल भक्ष्य है माँस अभक्ष्य है। माँस अनन्त जीवोंका पिण्ड होता है, उसमें हर समय अनन्त जीव उत्पन्न होते रहते हैं। इसलिए वह घृणित अपवित्र और निंद्य कहलाता है। बिना हिंसाके मॉस हो नही सकता, इसलिए भी उसके भक्षण करनेमे महापाप होता है। परन्तु फलोंमे यह बात नही है। मूँग, मोठ, गेहू आदि अन्नो में प्रतिसमय अनन्त जीवोंकी उत्पत्ति नही होती हाँ घुन जाने-पर वे अवश्य त्याज्य होजाते है। इसलिए अन्नके भक्षण करने-में पाप नही है मॉसके भक्षण करनेमें महापाप है।

इसके सिवाय एक बात यह भी है कि मास भक्षण करने-वाले लोग क्रूर, निर्दयी, आतायी, मलिन विचार करनेवाले और पापी होते है तथा अन्न भक्षण करनेवाले शान्त, पवित्र विचारवाले सदाचारी और दयालु होते है। प्रत्यक्षमें भी मॉस और अन्नमें आकाश पाताल का अन्तर है। इसलिए माँस अभक्ष्य है और अन्न भक्ष्य है ॥२७६,२७७,२७८॥

अर्थ--मॉस जीवका ही शरीर होता है, परन्तु जितने जीवों के शरीर है वे सब ही माँस रूप हों यह बात नही है जैसे नीम का वृक्ष वृक्ष ही होता है परन्तु जितने वृक्ष हैं वे सब ही नीम होते हो, यह कभी नही हो सकता। अथवा जिस प्रकार गरुड़ पक्षी होता है, परन्तु जितने पक्षी होते है वे सब ही गरुड़ होते हो यह बात नहीं है। अथवा जिस प्रकार स्त्री ही माता होती है परन्तु माता सबकी स्त्री नही हो सकती। इसीप्रकार मांस तो जीवका शरीर ही होता है, परन्तु जीवोंके जितने शरीर हैं

वे सब ही मास हो यह बात नही है। जगम जीवोका शरीर मास होता है परन्तु स्थावर जीवोका शरीर मास कभी नहीं हो सकता। इसलिए माँस भक्षणमे पाप है। अन्नके खानेमें पाप नही है ॥२७९,२८०॥

अर्थ—भक्ष्य और अभक्ष्य पदार्थोका विशेष वर्णन प्रायश्चित शास्त्र तथा सहिता शास्त्रोमे निरूपण किया है। उन सबको समझ कर भक्ष्य पदार्थोमे अपनी प्रवृत्ति रखनी चाहिए और अभक्ष्य पदार्थोका सर्वथा त्याग कर देना चाहिए। भावार्थ—श्रावकोंको सबसे पहले सहिता ग्रथ पढने चाहिये। उन्ही पर दृढ श्रद्धान रखकर भक्ष्य पदार्थोका सेवन करना चाहिये। पाप पुण्यका सदा ध्यान रखना चाहिए। नीच सगतिमे वैठकर वुद्धिका दुरुपयोग नही करना चाहिए। जैसे वने आत्माका कल्याण करना चाहिये ॥२८१॥

अर्थ—किसी एक ही वस्तुसे दो प्रकारके पदार्थ उत्पन्न होते है। उनमेंसे एक पदार्थ शुद्ध होता है और दूसरा अशुद्ध होता है। दूध भी गायसे उत्पन्न होता है और मास भी गायसे उत्पन्न होता है, परन्तु दूध शुद्ध होता है और मास अशुद्ध होता है। यह वस्तुके स्वभावकी विचित्रता है। वस्तुके स्वभावकी विचित्रता विलक्षण ही होती है। देखो मणि भी सर्पसे उत्पन्न होती है और विष भी सर्पसे उत्पन्न होता है। परन्तु मणिसे विष दूर हो जाता है और विषसे मनुष्यकी मृत्यु हो जाती है। और देखो विष वृक्षकी पत्तियोसे आयुकी वृद्धि (आरोग्यताकी वृद्धि) होती है और उसी विषवृक्ष की जडसे मृत्यु हो जाती है। इसी प्रकार यद्यपि दूध और मास दोनो एक ही गायसे उत्पन्न होते है। उन दोनोके उत्पन्न होनेका कारण एक ही है। तथापि मास त्याज्य है और दूध पीने योग्य है। यह अलग अलग वस्तुओंके स्वभाव-

की विलक्षणता है। स्तनसे दूध भी निकलता है और रुधिर भी निकलता है परन्तु रुधिर त्याज्य है और दूध ग्राह्य है। उसी प्रकार मांस अभक्ष्य और दूध भक्ष्य है नीम कडुआ होता है, परंतु वह कडुआ क्यों है ऐसी तर्क वा कुतर्क कोई नही कर सकता, क्योंकि कडुआ होना उसका स्वभाव है। स्वभावमे कोई तर्क वितर्क नही चल सकता। इसी प्रकार मांस अपवित्र और अभक्ष्य है उसका स्वभाव ही ऐसा है। इसमे भी किसीका तर्क काम नहीं देता। दूधकी मर्यादा दो मुहूर्त है। दो मुहूर्तके पहले गर्म कर लेने पर उसकी मर्यादा आठ पहरकी हो जाता है। आठ पहर तक वह दूध शुद्ध और पीने योग्य माना जाता है। परतु मास चाहे कच्चा हो चाहे पका हो और चाहे पक रहा हो उसमें प्रतिसमय अनन्तानन्त जीव उत्पन्न होते रहते है। इसलिए वह सदा अपवित्र और सदा त्याज्य है।

दूध पानीसे भी शुद्ध है। पानीको छान लेनेपर उसमेंसे त्रस जीव निकल जाते है, परन्तु स्थावर जीव उसमें रहते ही है। पानी पर वा मास पर विजली का असर होता है परतु दूध पर नही होता। इसलिए दूध लकड़ीके समान शुद्ध और निर्जीव है। इसीलिये तीर्थंकरोने आहारमे दूध लिया है। तथा इसीलिये दूध से भगवानका अभिषेक किया जाता है ॥२८२,२८३॥

अर्थ—वैष्णवोंके यहाँ माने हुए पच गव्यमें गोमय (गोबर) और गोमूत्र माना है। गोमय और गोमूत्र दोनों ही गायसे उत्पन्न होते है तथा रोचना भी [गोरोचन] गायसे उत्पन्न होता है, परन्तु उन्ही वैष्णवोंके यहां गोमूत्र और गोमय दोनों ग्रहण करने योग्य माने है तथा प्रतिष्ठादिक कार्योमें वे गोरोचनको भी ग्रहण करते है। परन्तु वे ही वैष्णव गोमासको शपथपूर्वक त्याग कर देते है। यद्यपि गोरोचन और गोमांस दोनों ही एक

ही गायसे उत्पन्न होते है। तथापि गोरोचन ग्राह्य है और गोमांस त्याज्य है। यह वस्तुका स्वभाव ही ऐसा है इसलिये मांस सदा त्याज्य है और दूध ग्राह्य है ॥२८४॥

अर्थ—घी और मास दोनो ही शरीरके अवयव हैं तथापि मांस अभक्ष्य है और घी भक्ष्य है। गायके शरीरसे दूध भी निकलता है और मूत्र भी निकलता है। परन्तु दूध ग्रहण करने योग्य है और मूत्र त्याग करने योग्य है ॥२८५॥

अर्थ—वैष्णव लोग गायको तीर्थ रूप मानते हैं। तथापि उसके मुखकी वन्दना नही करते है। किन्तु उसके पृष्ठ भाग की अर्थात योनि की वन्दना करते हैं यद्यपि योनि और मुख दोनो ही एक ही गायके शरीरके अङ्ग हैं तथापि एक अङ्ग वन्दनीय है और दूसरा वन्दनीय नही है। यह वस्तुके स्वभाव की विचित्रता है। इसीप्रकार मांस त्याज्य है और अन्न त्याज्य नहीं है। यह वस्तुके स्वभावकी ही विचित्रता है ॥२८६॥

अर्थ—अपने आत्माका कल्याण चाहनेवालोको बौद्ध सांख्य कपिल चार्वाक वेदांती याज्ञिक वैद्य कपर्दी आदिके मतोंको छोड़ कर मासका सर्वथा त्याग कर देना चाहिए। भावार्थ—जिन मतोमे मास भक्षणका विधान है उन समस्त मतोका त्याग कर मांसका सर्वथा त्याग कर देना चाहिए ॥२८७॥

अर्थ—ये बौद्ध याज्ञिक आदि अनेक मतवाले मांस भक्षणके लोलुपी हो रहे हैं इसलिए वे प्रतिदिन मांस भक्षण करनेकी पुष्टि करते हैं। तथा जिह्वा इन्द्रियके वशीभूत होकर कितने ही दुष्ट पुरुष दूसरोको भी मास भक्षण करनेका उपदेश देते हैं ॥२८८॥

अर्थ—उज्जयिनी नगरीमे चट नामके चांडालने करुणा बुद्धि से मासका त्याग किया था इसीलिए वह यक्ष जातिके देवोंका अधिपति हुआ था ॥२८९॥

अर्थ—राजा वक, राजा भीमदास और राजा सिंहसौदास केवल मांस भक्षणके दोषसे ही नरकमें जाकर उत्पन्न हुए थे ॥२९०॥

अर्थ—यह शहद अनेक जीवोंसे भरा हुआ है, अनेक जीवों के घात होनेसे उत्पन्न होता है और लारके समान निंद्यनीय है, ऐसे शहदको भला कौन चतुर पुरुष खानेकी इच्छा करेगा ? अर्थात् कोई नहीं। भावार्थ—शहदके निकालनेमें मक्खियोंके अंडे बच्चे मर जाते हैं तथा जो अंडे बच्चोंका अर्क है उसमें सदा असंख्यात जीव उत्पन्न होते रहते हैं इसलिए शहद भी मांसके समान ही त्याग करने योग्य है ॥२९१॥

अर्थ—शहद में इतने जीव होते हैं कि उसकी एक बूंदके चाटनेमें जितने जीवोंका घात होता हैं उतने जीवोंका घात एक गांवके जलानेमें भी नही होता ॥२९२॥

अर्थ—पहलेके अनेक मुनियोंने बतलाया है कि इस मनुष्यको बारह गांवोके जलानेमें जितना पाप होता है उतना ही पाप शहदके खानेमें होता है। इसोलिये शहदके खानेका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये ॥२९३॥

अर्थ—औषधिमें भी खाया हुआ शहद नरकका कारण अवश्य होता है इसमें किसी प्रकारका सदेह नही है। विषको यदि गुड़के साथ दिया जाय तो क्या वह मृत्युका कारण नहीं होता ? अवश्य होता है। इसोलिये औषधिके साथ भो कभी शहद नही खाना चाहिए ॥२९४॥

अर्थ—पुष्पत्तन नामके नगरमें एक लोला नामका ब्राह्मण था वह शहद खानेके दोषसे हो दुर्गतिका पात्र हुआ था ॥२९५॥

अर्थ—शहदके भक्षणका त्याग कर देनेसे राजोवलोचन नाम

का क्षत्रिय कमलनयन नामका देव हुआ था और वहांसे आकर राजीवलोचन नामका राजा हुआ था और अन्तमें वह निर्वाण-पदको प्राप्त हुआ था ॥२९६॥

अर्थ—मक्खनमें अंतर्मुहूर्तके बाद ही त्रस जीव उत्पन्न हो जाते हैं इसलिए चतुर पुरुषोंको ऐसा यह मक्खन कभी नहीं खाना चाहिए ॥२९७॥

अर्थ—भगवान जिनेन्द्रदेवने मक्खनको भी मद्यके समान अभक्ष्य ही बतलाया है। जो पुरुष ऐसे इस मक्खनका सेवन करता है उसके संयमका लेश मात्र भी नहीं हो सकता। भावार्थ उससे थोड़ासा भी संयम नहीं हो सकता ॥२९८॥

अर्थ—जो भव्य जीव एक जीवकी रक्षा भी बड़े प्रयत्नसे करता है वह जीव अनेक प्राणियोंसे भरपूर ऐसे मक्खनका सेवन कैसे कर सकता है? अर्थात् कभी नहीं ॥२९९॥

अर्थ—चतुर और विचारवान मनुष्य वड़के फल पीपलके फल पीलू फल काकोदुम्बर वा अजीर और गूलर फलोंका सेवन कभी नहीं करते हैं। क्योंकि इन पांचों प्रकारके क्षीर वृक्षके फलोंमें अनेक त्रस जीवोंका निवास रहता है तथा उसमें स्थावर जीव भी बहुत से रहते हैं। इसीलिए बुद्धिमान पुरुष इन पाचों उदम्बर फलोंका सेवन कभी नहीं करते हैं। काकोदुम्बर और कठूमर का एक ही अर्थ है। दोनों शब्दोंका अर्थ अजीर है बहुतसे लोग जो विना फूल लगे काठ फोड कर फल लगे उन फलोंको कठूमर कहते हैं परन्तु ऐसी समझ ठीक नहीं है। कठूमर अजीरको ही कहते हैं आचार्य श्रुतसागरजीने भी षट्पाहुडकी भाषामें कठूमरका अर्थ अजीर ही बतलाया है। इसलिए कठूमरका अर्थ अजीर ही लेना चाहिए ॥३००,३०१॥

अर्थ—इन ऊपर कहे हुए पांचों प्रकारके क्षीर वृक्षोंके फलों-में अनेक प्रकारके त्रस जीव निवास करते है इसलिए इनके सेवन करनेसे जन्म मरण रूप ससारमें डुबो देने वाला महापाप उत्पन्न होता है। भावार्थ—जिन वृक्षोसे दूध निकलता है उनको क्षीर वृक्ष कहते है क्षीर वृक्ष अनेक है परन्तु उनमेंसे ऊपर कहे हुए पांच प्रकारके क्षीर वृक्षोके फलोंमें अनेक जीव उत्पन्न होते है इसीलिए आचार्योंने इन्ही पांचोका त्याग कराया है ॥३०२॥

अर्थ—श्रेष्ठ व्रतोसे सुशोभित होनें वाले श्रावकको चमडेके पात्रके ससर्गसे अपवित्र हुये तेल घी पानी आदि पदार्थोंको प्राण नाश होनें पर भी ग्रहण नही करना चाहिए ॥३०३॥

अर्थ—जो पुरुष देश कालका बहाना बताकर चमड़ेके संसर्ग वाले घी तेल आदिको ग्रहण कर लेते है वे लोग भगवान जिने-न्द्रदेवकी आज्ञाका उल्लघन करते हैं इसीलिये वे पेड पेड पर निंदनीय माने माते है। भावार्थ—वे हर समय निंदनीय कहे जाते है क्योंकि भगवानकी आज्ञाका उल्लंघन करना महापाप गिना जाता है ॥३०४॥

अर्थ—विना जाने हुये फलोंको खाने वाले, बिना शोधे हुए शाक भाजीको खानें वाले, घुनो हुई सड़ी सुपारी खाने वाले, बाजराका आटा खाने वाले, विना परीक्षा किए हुये बाजराका मलिन घी खाने वाले, विना परीक्षा किये बाजरेका दूध पीनें वाले, म्लेच्छोंका अन्न खाने वाले अथवा बाजरे वा होटलों में भोजन करने वाले, अपना वनाया भोजन भी शूद्र और निंद्य मनुष्योंके घर बैठकर खाने वाले, वा इनके सिवाय ऐसी ही मलिनाचारकी प्रवृत्ति करने वाले लोगोंकी मांस भक्षियोंके समान ही समझना चाहिए। ऐसे मनुष्य उत्तम श्रावक कभी नही हो सकते। जो लोग बिना जाने हुए मनुष्योंके बर्तनोंमें खा

पी लेते हैं वा चाहे जिस घरकी छाछ खा लेते हैं उनको भी मास भक्षियो के समान ही समझना चाहिए। ऐसे लोग उत्तम श्रावक कभी नही हो सकते। भावार्थ—श्रावक विवेकी और विचार-शील होते है और अपने समस्त कर्तव्योको जिनागमके अनुसार ही पालन करते है। तभी वे सम्यग्दृष्टि श्रावक कहलाते हैं। जिन लोगोके भक्ष्य अभक्ष्य का विचार नही है जो लोग शूद्रों तकके हाथका भोजन पान करते है वे भला सदाचारी सम्यग्दृष्टी कैसे हो सकते है। शूद्र लोग जैन धर्म धारण कर सकते हैं तथा स्वच्छतासे रह सकते है तथापि उनका शरीर जिस रजो वीर्यसे वना है वह शुद्ध नही है इसीलिये शूद्रोके सस्कार नही होते हैं। तथा सस्कार न होनेसे ही वे दान पूजा मुनिदीक्षा आदिके अधि-कारी नही होते है। उनके पूर्व जनित पाप कर्मोके उदयसे नीच गोत्रका उदय रहता है और वह मरण पर्यन्त तो रहता ही है। इसलिये वे उस शरीरके रहने पर्यन्त तो अशुद्ध ही रहते है इसके सिवाय शूद्रोमे ऋतु धर्मका पालन नही होता मद्यपानका ससर्ग रहता ही है विवेक और उत्तम आचरण भी नही होते इसीलिए शूद्र लोगोकी शुद्धि नही होती। यदि कोई शूद्र सम्य-ग्दर्शन धारण कर वा अणुव्रतादिक धारण कर अपनी आत्माको पवित्र वनाले तथापि उसका शरीर अशुद्ध ही रहता है। इस-लिए शूद्रके हाथका भोजन पान कभी नही करना चाहिये। बाजारक घी मे न जाने क्या २ मिला हुआ होता है बाजराका आटा न जाने कितने दिनोका और कैसे सड़े घुने अन्नका होता है। इसलिये बाजारकी ऐसी चीजोको कभी ग्रहण नही करना चाहिए ॥३०५,३०६,३०७॥

अर्थ—जो लोग गीले पात्रमे रक्खे हुये भोजनोका भक्षण करते है, जो नीम गोभी कचनार आदिके फूलोको भक्षण करते हैं, दो दिनकी रक्खी हुई छाछ वा दही खाते है और दो दिनकी

रक्खी हुई कांजी खाते हैं तथा बिना छने पानीको पीनेके काममें लाते है अथवा सबेरेके छने पानीको दिन भर काममें लाते है ऐसे गृहस्थोको मद्यपान करने वालोंके समान ही समझना चाहिए। ऐसे गृहस्थ भी उत्तम श्रावक नहीं कहला सकते। भावार्थ—इन सबमें त्रस जीव पड़ जाते हैं वा उत्पन्न हो जाते है। इसलिये ये सब चीजें त्याज्य करने योग्य है ॥३०८,३०९॥

अर्थ—जो अन्न घुन गया है जिन फलोंका वा पदार्थोका रस चलित होगया है स्वाद बदल गया है वा बिगड़ गया है जिसके ऊपर सफेदी आ गई है अर्थात् जिस पूड़ी रोटी आदि पर सफेदी आ गई है ऐसे पदार्थोके खानेका त्याग करनेवाले मनुष्य ही श्रावक हो सकते है तथा ऐसे ही श्रावक आठ मूल गुणोंको पालन कर सकते है। अथवा यो कहना चाहिए कि जो आठ मल गुणोंको धारण करते है वे ही श्रावक कहलाते है। तथा ऐसे श्रावक घुने चलित रस और सफेदी पर आये हुये भोजनको कभी नही करते है ॥३१०॥

अर्थ—कच्चा दूध, कच्चा दही और कच्चे दूधके जमाये दही की छाछमें यदि उडद मूग चना आदि (जिनको दो दाले हो सकती है) द्विदलको खानेसे लारके सयोगसे उसमें त्रस जीव उत्पन्न हो जाते है इसलिए शुद्ध सम्यग्दृष्टियोंको ऐसा दही आदिका मिला हुआ द्विदल कभी नही खाना चाहिए इसी प्रकार मर्यादा के बाहरका दूध दही भी नही खाना चाहिए। द्रोणपुष्प आचार, तरबूज आदि पदार्थ भी उनको कभी नही खाने चाहिए ॥३११॥

अर्थ—शुद्ध सम्यग्दृष्टियोको आचार, मुरब्बा, बगन, पेठा, भोपला करीर, वनकेला और ओलागार कभी नही खाने चाहिए ॥३१२॥

अर्थ—सेम, मूली, वेल, सव तरहके फूल कमलनाल सूरण कद और अदरख आदि पदार्थोंका त्याग कर देना चाहिए। ॥३१३॥

अर्थ—सितावर गवारपाठा, गिलोय, अरणी थूहर, अमर-वेल और कच्ची इमलीका भी सर्वथा त्याग कर देना चाहिए। ॥३१४॥

अर्थ—कडवी तूवी, घीया तोरई, कड्कोडी, वन्ध्य कड्कोडी, वनकरेला, खिरनी जामुन, तिदु के फल, अमाडपवाड पत्र, इत्यादि जिन-जिनमे सूक्ष्म जीवोकी उत्पत्ति हो ऐसे समस्त फल वा पत्तोका त्याग कर देना चाहिए। नये छोटे-छोटे पत्ते भी अनेक सूक्ष्म जीवोसे भरे रहते है, इसलिए उनका भी त्याग कर देना चाहिए ॥३१५,३१६॥

अर्थ—जो भव्य जीव ससारके परिभ्रमणसे भयभीत हो रहे है उनको कच्चाकन्द कभी नही खाना चाहिए। सचणखार, लोण, नाली आदि पदार्थोका त्याग कर देना चाहिए तथा पुष्पो का भी त्याग कर देना चाहिए ॥३१७॥

अर्थ—मांस, रुधिर, कच्चा चमड़ा, गीली हड्डी और मद्यको देखकर प्रत्येक श्रावकको अपना भोजन छोड देना चाहिए। इसी प्रकार भोजनमे मरा हुआ जीव दिखाई पड़ जाय तो भोजन का त्याग कर देना चाहिए तथा त्याग किया हुआ पदार्थ यदि सेवन करनेमे आजाय तो भी भोजनका त्याग कर देना चाहिए। इस प्रकार ये सात अतराय आचार्योंने बतलाये है। प्रत्येक श्रावक को इनका पालन अवश्य करना चाहिए। इनके सिवाय अंतराय तो और भी है। परन्तु वे अत्यन्त कठिन है। इसलिये यहा पर ये सात ही अतराय बतलाये है अधिक नही बतलाये ॥३१८, ३१९॥

अर्थ—रात्रिमें घोर अन्धकार छा जाता है, इसलिये उसमें भोजनमें पड़े हुए प्राणि दिखाई नहीं पड़ते। इसीलिए सज्जन पुरुष रात्रिमें भोजन कभी नही करते हैं। रात्रिमें यदि प्रकाश किया जाय तो पतङ्गा आदि अनेक जीव जन्तु आ जाते है। इसलिए रात्रिमें भोजन बनाना भी नही चाहिए, न रात्रिका बना भोजन कभी नही खाना चाहिये ॥३२०॥

अर्थ—यदि भोजनके साथ मक्खी पेटमें चली जाय तो वमन हो जाता है, यदि छोटी छिपकली वा कसारी चली जाय तो कोढ रोग हो जाता है, यदि चींटी पेटमें चली जाय तो बुद्धि बिगड़ जाती है। यदि पत्थरका टुकड़ा मुंहमें आजाय तो दांत टूट जाता है। यदि गोबर चला जाय तो घृणा हो जाती है और यदि भोजनमें जू मिल जाय तो जलोदर रोग हो जाता है। भावार्थ—रात्रिमें भोजनमें मिले हुये अनेक जीव दिखाई नही देते। उनमेंसे कितने ही जीव विषैले होते हैं, जिनके पेटमें चले जाने पर अनेक प्रकारके रोग हो जाते है। इसलिए रात्रिमें भोजन कभी नहीं करना चाहिए, न बनाना चाहिये ॥३२१, ३२२॥

अर्थ—यदि बाल खानेमें आजाय तो स्वरभंग हो जाता है, यदि कांटा खानेमें आजाय तो कण्ठमें पीड़ा हो जाती है और यदि बीच्छू खानेमें आजाय तो तालुका भग हो जाता है। इसमें किसी प्रकारका सन्देह नही। इसलिए रात्रिमें भोजन नही करना चाहिये ॥३२३॥

अर्थ—रात्रिमें भोजन करनेसे और भी अनेक प्रकारके दोष उत्पन्न होते है जो वाणीसे कहे भी नहीं जाते। यही समझकर सज्जन पुरुषोंको अनेक पाप उत्पन्न करनेवाले रात्रिके भोजनका अवश्य त्याग कर देना चाहिये ॥३२४॥

अर्थ—जो बुद्धिमान पुरुष रात्रिमें सब प्रकारके आहारका त्याग कर देते हैं, उनको एक महीनेमें पन्द्रह दिनके उपवासका फल मिलता है, तथा वर्ष भर में छह महीनेका उपवास हो जाता है ॥३२५॥

अर्थ—जिनके आत्माकी शक्ति नष्ट भी हो गई है। ऐसे जो लोग रात दिन खाते रहते हैं उन्हें बिना सींग पूछके पशु ही समझना चाहिए। भावार्थ—जिस प्रकार पशु विवेक हीन होते हैं उसी प्रकार रात्रिमें खाना भी विवेकहीनता है ॥३२६॥

अर्थ—जो पुरुष प्रातःकालकी दो घड़ी छोड़कर और सायंकालकी दो घड़ी छोड़कर दिनमें (सूर्योदयसे दो घड़ी बादसे लेकर सूर्य अस्त होनेके दो घड़ी पहले तक) भोजन करता है। उसीके रात्रिभोजन त्याग नामका व्रत समझना चाहिए ॥३२७॥

अर्थ—रात्रि भोजनके त्याग करनेका फल एक शृगालको प्राप्त हुआ था और उसके त्याग न करनेका फल धनश्रीको प्राप्त हुआ था। इन दोनोंका फल सब लोगोंने देखा था। भावार्थ—एक शृगालने किसी मुनिराजसे रात्रिभोजन त्याग करनेका व्रत लिया था उसके फलसे पहले स्वर्गमें उत्पन्न हुआ था और अंतमें प्रीतिंकर होकर श्रेष्ठ गतिको प्राप्त हुआ था। धनश्रीने रात्रि-भोजन का त्याग नहीं किया था इसलिए उसे दुर्गति प्राप्त हुई थी ॥३२८॥

अर्थ—जैन शास्त्रोंमें श्रावकोंके बारह व्रत बतलाये हैं उनमेंसे पांच अणुव्रत है तीन गुणव्रत है और चार शिक्षाव्रत है ॥३३१॥

अर्थ—कषायके निमित्तसे प्राणियोके प्राणोका व्यपरोपण करना हिसा कहलाती है। इस प्रकार कषायके निमित्तसे किसी काल वा किसी क्षेत्रमें प्राणोका व्यपरोपण वा वियोग नही करना अहिसा व्रत कहलाता है। यह अहिसा व्रत समस्त लोकका हित करनेवाला है ॥३३२॥

अर्थ—बुद्धिमानोंको विचार करना चाहिए कि संसारमें जो अनेक प्रकारके अनिष्ट, कोढ़ी, और लंगडे आदि देखे जाते हैं वे हिंसाके ही फलसे होते हैं। इसलिये त्रस जीवोंकी हिंसा कभी मनसे भी नही करनी चाहिये ॥३३३॥

अर्थ—जो भव्य जीव सदा रहने वाले मोक्ष सुखकी इच्छा करते हैं और इसीलिए जिन्होंने हिंसा करनेका सर्वथा त्याग कर दिया है ऐसे पुरुषोको स्थावर जीवोंकी भी निरर्थक बिना प्रयोजनके हिंसा कभी नही करनी चाहिए। भावार्थ—श्रावकोंके यद्यपि त्रस जीवों की सकल्पी हिंसाका त्याग होता है तथापि उनको बिना प्रयोजनके स्थावर जीवोंकी हिंसा भी कभी नही करनी चाहिए ॥३३४॥

अर्थ—पृथ्वीकायिक, जलकायिक, वायुकायिक, तेजकायिक, और वनस्पतिकायिक, स्थावर जीवोंके ये पांच भेद है। इसी प्रकार त्रस जीवोंके दश भेद हैं दो इन्द्रिय तेइन्द्रिय चौइन्द्रिय असैनी पचेन्द्रिय और सैनी पचेन्द्रियके भेदसे त्रसोंके पांच भेद होते है। इन्ही पांचोंके सूक्ष्म स्थूलके भेदसे दश भेद हो जाते हैं अथवा अपर्याप्तक और पर्याप्तकके भेदसे दश भेद हो जाते है। बुद्धिमान व्रती श्रावक यद्यपि अपने सब काम यत्नाचार पूर्वक

करता है तथापि उससे रसोई व्यापार आदिके करनेमें पांच प्रकारके स्थावर जीवोंकी हिंसा होती है। इस प्रकार वह स्थावर जीवोंकी हिंसा करता हुआ भी दस प्रकारके त्रस जीवोंकी रक्षा करता है उनकी हिंसा कभी नहीं करता, इसीलिए वह विरता-विरत कहलाता है। त्रस जीवोंकी हिंसासे विरत और स्थावर जीवोंकी हिंसासे अविरत होनेके कारण विरताविरत कहलाता है ॥३३५॥

अर्थ—"तू मर" इस प्रकार यदि किसी जीवने कहा जाय तो भी वह महा दुःखी होता है फिर भला जिसको तीक्ष्ण शस्त्रोंसे मारा जाता है वह भला दुःखी क्यों न होगा? अवश्य होगा ॥३३६॥

अर्थ—जीव चाहे सुखी हो चाहे दुःखी हो तथापि जीनेकी इच्छा सब करते हैं। इसलिए कहना चाहिए कि जो मनुष्य इस जीवको जीवनदान देता है वह इस संसारमें सब कुछ दे देता है भावार्थ—जीवदान देनेके समान इस संसारमें और कोई दान नहीं है ॥३३७॥

अर्थ—संसारमें जितनी देवियां हैं उन सब देवियोंमें दया देवी ही सबसे बड़ी देवी वा सर्वोत्कृष्ट देवी है। क्योंकि यह दया देवी ही समस्त जीवोंको अभयरूपी प्रदक्षिणा प्रदान करती है अर्थात् समस्त जीवोंकी रक्षा करती है ॥३३८॥

अर्थ—जिसकी तीक्ष्णधार है और जो मारनेके लिए हाथमें ऊपर उठा रक्खी है ऐसी तलवारको ही देखकर लोगोंके नेत्र भयभीत हो जाते हैं और वे कांपने लगते हैं। सो ठीक ही है क्योंकि इस संसारमें मृत्युके समान और कोई भय नहीं है ॥३३९॥

अर्थ—यदि किसी जीवकी हिंसा किसी देवताके लिए की

जाय अथवा मरे हुए पितरोंके लिए की जाती है तो भी उससे शान्ति कभी नहीं हो सकती। सो ठीक ही है क्योंकि गुड़में मिला हुआ विष क्या प्राणोका घातक नही होता ? अवश्य होता है। भावार्थ—जिस प्रकार गुड़मे मिलाकर विष खानेसे भी प्राणोंका घात अवश्य होता है उसी प्रकार किसी देवता वा पितरोके लिए की गई हुई हिंसा भी नरकका कारण होती है। इसलिए हिसा किसी प्रकार भी नही करनी चाहिए ॥३४०॥

अर्थ—जो हिंसा विघ्नोकी शान्ति करनेके लिए की जाती है उस हिंसासे विघ्नोंकी शान्ति तो नहीं होती किंतु विघ्न बढ़ जाते है। इसी प्रकार जो हिंसा कुलाचारकी वृद्धिके लिये की जाती है उस हिसासे कुलकी वृद्धि नहीं होती किंतु कुलका नाश होजाता है इसलिए विघ्नोंकी शान्तिके लिए अथवा कुलकी वृद्धि के लिए महा पापरूप प्राणियोंका वध कभी नही करना चाहिए देखो महाराज यशोधरनें शान्तिके लिए देवताके सामनें केवल आटेके मुर्गे बनाकर चढाये थे। उस सकल्पी हिसाके फलसे यशोधरके जीवको कितनी दुर्गतियोका घोर दुःख सहन करना पड़ा था। इसलिए शान्तिके लिए भी कभी हिसा नहीं करनी चाहिए ॥३४१, ३४२॥

अर्थ—बांहसे टोटा होजाना अच्छा अथवा लंगड़ा होजाना अच्छा अथवा शरीर रहित ही होजाना अच्छा परन्तु सर्वाङ्ग सुन्दर पूर्ण शरीरको धारण करते हुये हिसा करनेमें तत्पर रहना अच्छा नही ॥३४३॥

अर्थ—मृगसेन धीवरके जीवने पाच वार एक मछलीकी हिसा का त्याग किया था इसलिए वह पाच वार आपत्तियोंसे बचा था उसके फलसे वह धीवरका जीव उच्चकुलीन और वैभवशाली सेठ धनकीर्ति हुआ था और वहां पर अनेक प्रकार की सम्पत्तियोंको प्राप्त हुआ था ॥३४४॥

'अर्थ—जो मनुष्य किसी हानि लाभ भय वा द्वेषके कारण कभी झूठ नही वोलता सदा सच वोलता है उसको दूसरा सत्य-व्रत कहते है ॥३४५॥

अर्थ—यह जीव मिथ्याभापण करनेके फलसे कुरूप होता है, अत्यन्त गरीव होता है और निंद्य होता है। मिथ्या भाषणका ऐसा फल समझकर सत्य वोलनेवालोको इस मिथ्या भापणका उसी क्षणमें त्याग कर देना चाहिए ॥३४६॥

अर्थ—जिस प्रकार महावायुसे वडे वडे वृक्ष उखड जाते है उसी प्रकार झूठ वोलनेसे ज्ञान आदि समस्त गुण नप्ट हो जाते है। इसलिए ऐसे असत्य वचनो को प्रमादसे भी कभी नही कहना चाहिए ॥३४७॥

अर्थ—आत्म तत्त्वके यथार्थ स्वरूपको जानने वाले विद्वान् लोगोको ऐसे वचन कभी नही वोलने चाहिए जो असत्यके आश्रित हो, असत्यसे मिले हो जो लोक और आगमसे विरुद्ध हों जो पापोकी प्रवृत्ति करनेवाले मलिन वचन हो जो ग्रामीण वा निंद्यनीय हो और जो निष्ठुर वा कडे वचन हो। विद्वान् लोगोको ऐसे वचन कभी नही वोलने चाहिए। इन सव वचनो में आगमके विरुद्ध बोलना महापाप गिना जाता है ॥३४८॥

अर्थ—जो जीव जिनशासनको पाकर भी सत्य वचन नही वोलता है वह झूठ वोलनेवाला मूर्ख मनुष्य मरकर किस दुर्गति को प्राप्त होगा? भावार्थ—वह सवसे हीन गति को प्राप्त होगा ॥३४९॥

अर्थ—सत्य वचन वोलनेसे यह जीव सव जीवोका विश्वास-पात्र हो जाता है। सो ठीक ही है क्योकि गलीका पानी क्षीर-सागरमें पड़ कर क्या दूध नही वन जाता? अवश्य वन जाता है ॥३५०॥

अर्थ—समस्त जीवोंका हित करनेवाले मधुर वचनोंका बोलना अपने आत्माके आधीन है। प्रत्येक मनुष्य ऐसे वचन बोल सकता है। फिर भला ऐसा कौन बुद्धिमान है जो कानोंको कड़ुवे लगनेवाले अत्यन्त कठोर वचनोंको कहता हो? अर्थात् कोई नही। भावार्थ—मिष्ट वचन बोलना अपने आधीन है इसलिए प्रत्येक मनुष्यको मधुर वचन ही बोलना चाहिए ॥३५१॥

अर्थ—जो दयालु मनुष्य जीवोंकी रक्षा करनेके लिए असत्य-से संबंध रखनेवाले वचन भी कहता है तो भी वह पापी नहीं कहा जाता। भावार्थ—जीव।-रक्षाके समान अन्य कोई भी पुण्य नही है इसलिए जिन असत्य वचनोंके कहनेसे जीवोंकी रक्षा होती हो वे असत्य वचन भी सत्य वचनोंके समान है। ऐसे असत्य वचनोंके बोलनेसे कोई पाप नही है ॥३५२॥

अर्थ—अनेक पापोसे ठगा हुआ जो मनुष्य दूसरेके दबावसे असत्य वचन बोलता है वह मनुष्य राजा वसुके समान शीघ्र ही मरकर नरकमें पहुचता है ॥३५३॥

अर्थ—जो मनुष्य अपने आत्माका हित चाहते है उन्हें ऐसे वचन बोलने चाहिए जो सत्य हो समस्त जीवोंका उपकार करने वाले हों और आत्माका कल्याण करनेवाले हों। भव्य जीवोको ऐसे ही वचन कहने चाहिए ॥३५४॥

अर्थ—धनदेवने सत्य वचन कह कर उत्तम फल वा सद्गति प्राप्त की थी और जिनदेवने झूठ बोल कर दुर्गतिका फल प्राप्त किया था ॥३५५॥

अर्थ—किसी मार्गमें वा वनमें जो पदार्थ किसीके द्वारा भूला हुआ पडा है गिरा हुआ पड़ा है, नष्ट हुआ वा खोया हुआ पड़ा है अथवा किसीका रक्खा हुआ है उसको दूसरेका धन

समझ कर ग्रहण न करना तीसरा अचौर्य अणुव्रत कहलाता है ॥३५६॥

अर्थ—जो मनुष्य मोक्ष प्राप्त करनेकी लालसा रखता है, और जो अचौर्य अणुव्रतको धारण करता है, उस बुद्धिमानको समझ लेना चाहिए कि दास होना नृत्यकार होना, दरिद्री होना, भाग्यहीन होना आदि निद्य फल चोरी करनेसे ही मिलता है। इसलिए चोरी करनेका सदाके लिए त्याग कर देना चाहिए ॥३५७॥

अर्थ—यदि किसी मनुष्यके मनमें चोरी करनेके परिणाम भी होंगे तो उसका धैर्य नष्ट हो जाता है, वह धर्मकी वृद्धि करनेसे दूर भाग जाता है तथा उसका परलोक भी बिगड़ जाता है ॥३५८॥

अर्थ—माया मिथ्या निदान आदि शल्योंको धारण करनेवाला कोई मनुष्य किसी समय सुखी हो सकता है परन्तु चोरी करनेका निकृष्ट ध्यान करनेवाला जीव कभी सुखी नहीं हो सकता ॥३५९॥

अर्थ—जिस प्रकार राहुका केवल शिर ही बाकी है धड़ उसका अलग है, परन्तु केवल शिर रह जाने पर भी वह सूर्य चन्द्रमाके सुवर्णको (सुन्दर वर्णको) हरण कर लेता है, ग्रहणके समय चन्द्रमाके वर्णको ढक लेता है। उसी प्रकार अनेक पाप-रूपी सेनाके साथ रहनेवाला चोर मस्तक बाकी रहने पर भी समस्त शरीर छिन्न भिन्न हो जाने पर भी सुवर्णको अवश्य हरण करता है ॥३६०॥

अर्थ—जिस प्रकार अपथ्य सेवन करनेवाले रोगी पुरुषको सब रोग मिलकर पीडा देते हैं उसी प्रकार चोरी करनेवालेको

सब लोग मिलकर पीड़ा देते है इसमें किसी प्रकारका संदेह नहीं है ॥३६१॥

अर्थ—जिस प्रकार राहु की संगति करनेसे चन्द्रमाको पद-पद पर दुःख होता है उसी प्रकार चोरकी संगति करनेसे महा-पुरुषोको भी आपत्तिया आ जाती है ॥३६२॥

अर्थ—चोरी करने रूप वृक्षके इस लोक सम्बन्धी फल वध वन्धन छेदन ताड़न आदि प्राप्त होते है तथा परलोक सम्बन्धी फल विचित्र घोर नरककी प्राप्ति होती है ॥३६३॥

अर्थ—महापराक्रमी राजा सिहसेनने श्रीभूति ब्राह्मणको मन्त्रीका पद देकर महा ऐश्वर्यशाली बनाया था परन्तु चोरी करनेके कारण उसको अनन्त ससारमे परिभ्रमण करना पड़ा ॥३६४॥

अर्थ—सेठ वसुदत्तका पुत्र सुमित्र था जो पवित्र था और उत्तम व्यापारी था। उसने चोरीके त्यागके फलसे सबसे उन्नत पद प्राप्त किया था ॥३६५॥

अर्थ—चारित्रमोहनीय कर्मके उदयसे वा काम वासनाके उद्रेगके स्त्री पुरुषोके विशेष रमण करने की इच्छाको मैथुन कहते हैं इसी को अब्रह्म कहते है। यह अब्रह्म अत्यन्त दुःख देनेवाला है। ऐसे इस अब्रह्मके त्याग करने को ब्रह्मचर्य व्रत कहते है ॥३६६॥

अर्थ—उत्तम पुरुषोंको समझना चाहिए कि कुरूपी होना लिगका छेदा जाना नपुसक बनाया जाना या नपुसक उत्पन्न होना आदि सब ब्रह्मचर्य पालन न करनेका फल है इसलिए उत्तम पुरुषोको परस्त्री सेवनका त्यागकर स्वदार संतोष (अपनी ही स्त्री में सन्तोष रखनेवाला) बनना चाहिए ॥३६७॥

अर्थ—जिन लोगोके हृदयमे परस्त्रीका निवास रहता है उन पुरुषोके हृदयमें धर्मकी स्थिति कभी नही हो सकती। भला जिस देशमें वर्फ पड़ गया है उस देशमे कमलोकी स्थिति कैसे रह सकती है। भावार्थ—जैसे वर्फसे कमल जल जाते हैं उसी प्रकार पर स्त्री सेवनसे धर्म नष्ट हो जाता है ॥३६८॥

अर्थ—जिनके हृदयमे रात-दिन परस्त्री नृत्य किया करती है उनके समीप उत्तम लक्ष्मी कभी नहीं आ सकती ॥३६९॥

अर्थ—मैथुन सेवन करने की इच्छा करने मात्रसे ही शरीर मे पसीना आ जाता है, चित्तमे भ्राति हो जाती है, परिश्रम ग्लानि मूर्च्छा कम्पा और वलका क्षय हो जाता है। इस प्रकार कितने ही दोष तो उसी समय उत्पन्न होते है तथा कितने ही रोग और कितने ही मानसिक दु ख उत्पन्न होते हैं ॥३७०॥

अर्थ—स्त्रियोके योनिस्थानमे अनेक सूक्ष्म जीव निरन्तर उत्पन्न होते रहते हैं। वे जीव मैथुन सेवन करनेके क्षणमात्रमे मर जाते है। इसलिये ऐसे इस मैथुन सेवनका सदाके लिए परित्याग कर देना चाहिए ॥३७१॥

अर्थ—जिस प्रकार तिलकी नालीमे गरम सलाई डालनेसे वहुतसे तिल जल जाते है। उसी प्रकार अत्यन्त निंदनीय ऐसे मैथुन सेवन करनेमे योनिमे रहने वाले समस्त जीव नष्ट हो जाते हैं ॥३७२॥

अर्थ—जो मूर्ख मनुष्य काम सेवन कर कामदेवकी अग्नि को वुझाना चाहता है वह मूर्ख घी पिलाकर प्रौढ ज्वरको हटाना चाहता है। भावार्थ—जैसे घीसे ज्वर वढता है लकडीसे अग्नि वढती है उसी प्रकार कामसेवनसे कामाग्नि वढती है। शान्त नही होती ॥३७३॥

अर्थ—अग्निकी तीव्र ज्वालासे तपाई हुई लोहेकी पुतलीका आलिगन करना अच्छा है परन्तु साक्षात् नरकको लेजाने वाली स्त्रीका आलिगन करना कही भी श्रेष्ठ नही माना जाता ॥३७४॥

अर्थ—कोई मनुष्य बड़े-बड़े खैर की लकडीके अंगारोंका सेवन करता हुआ सुखी हो सकता है परन्तु स्त्रियोंको सेवन करनेवाला मनुष्य कभी किसी स्थानमें भी सुखी नहीं हो सकता ॥३७५॥

अर्थ—स्त्रियोके साथ क्रीडा करना, उनको आलिगन करना, विलास करना उनके साथ हस हस कर वातचीत करना आदि क्रीडाओंकी वात जाने दीजिये स्त्रियोका केवल स्मरण करने मात्रसे ही अनेक प्रकारकी आपत्तिया आजाती है ॥३७६॥

अर्थ—अनेक प्रकारकी दुष्ट चेष्टाये करने वाली स्त्रियां पुत्र पिता भाई और पतिको भी सदा सन्देह की दृष्टि देखा करती है ॥३७७॥

अर्थ—ये स्त्रियां आपत्तियोकी घर है, लड़ाईकी जड़ है नरकका मार्ग है और शोक उत्पन्न होनेके लिए भूमि है। इसीलिए चतुर पुरुषोंको इन ऐसी स्त्रियोका त्याग अवश्य कर देना चाहिए ॥३७८॥

अर्थ—जो पुरुष परस्त्री सेवनके लपटी है वे कुरूप होते है, दरिद्री होते है तिर्यच होते है और लोकमे निंदनीय माने जाते है ॥३७९॥

अर्थ—परस्त्रीके समागमकी इच्छा करनेमात्रसे ही रावण अनेक दुःखोका पात्र हुआ था। तथा परस्त्रीके समागमकी इच्छाका त्याग करदेनेसे सेठ सुदर्शनको अनन्त सुखकी प्राप्ति हुई थी ॥३८०॥

अर्थ— धन धान्य, क्षेत्र, वास्तु, दासी, दास, चतुष्पद, चांदि सुवर्ण आदि दस प्रकारके परिग्रहका परिमाण नियत कर उससे अधिककी इच्छा नहीं करना, मन वचन कायसे अधिक परिग्रह रखनेका त्याग कर देना, परिग्रह परिमाण नामका व्रत कहलाता है ॥३८१॥

अर्थ—अधिक परिग्रह रखनेसे यह जीव नरक जाता है, सदा असन्तोषी रहता है, हिंसादिक आरम्भोंकी वृद्धि होती है और अपने गुणका नाश होता है। यही समझकर बुद्धिमानोंको परिग्रह का परिमाण अवश्य कर लेना चाहिए ॥३८२॥

अर्थ—जिस प्रकार अधिक बोझ हो जानेसे जहाज डूब जाता है उसी प्रकार ये मनुष्य भी परिग्रह रूपी अधिक भारसे जन्म-मरण रूप संसार सागरमें अवश्य डूब जाते हैं, इसमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं है। परिग्रहरूपी अधिक भारके होनेसे जो जो दुर्गुण या पाप उत्पन्न होते हैं उनसे यह जीव यदि रसातलमें चला जाय तो इसमें आश्चर्यकी बात ही क्या है। पापोंसे नरक मिलना ही है ॥३८३,३८४॥

अर्थ—परिग्रहके पापोंसे भयभीत होकर एक राजगृहमें सेठो के पाचसौ पुत्रोंके साथ साथ परिग्रह का त्याग किया था और इसीलिए उसे बहुत ही उत्तम फल प्राप्त हुआ था ॥३८७॥

अर्थ—अधिक परिग्रहकी तृष्णासे मणिवत आदि अनेक जीवोने जन्म जन्म तक महादु:ख भोगे है। यही समझकर गृहस्थोंको भी अपना परिग्रह सदा घटाते रहना चाहिए ॥३८८॥

अर्थ—इस प्रकार ममत्व परिणामोंको वा परिग्रहकी अधिक तृष्णाको कर्मबंधका कारण समझ कर 'ये सब धन धान्य कुटंब आदि पदार्थ मेरे है और मैं इन सबका स्वामी हूं' इस प्रकारके ममत्व परिणामोका सर्वथा त्याग कर देना चाहिए ॥३८९॥

अर्थ—जिस प्रकार खाईसे नगरकी रक्षा होती है उसी-प्रकार समस्त जीवोंको सुख देनेवाली शीलरूपी मातासे अहिंसा आदि पांचो व्रतोंकी रक्षा होती है। इस शीलरूपी माताके सात भेद है जो तीन गुणव्रतरूप और चार शिक्षाव्रत रूप कहलाते हैं यही समझ कर इस शीलरूपी माताकी सदा सेवा करते रहना चाहिए ॥३९०॥

अर्थ—पूर्व पश्चिम आदि दशों दिशाओंको जन्मभरके लिए मर्यादा नियतकर फिर उस सीमाका कभी उल्लंघन न करना दिग्व्रत नामका पहला गुणव्रत कहलाता है ॥३९१॥

अर्थ—दिग्व्रतमें दशों दिशाओंकी मर्यादा की जाती है तथा प्रसिद्ध प्रसिद्ध किसी पर्वत, समुद्र, नदी देश संरोवर आदिकी मर्यादा नियत करनी चाहिए। अथवा योजनोंसे पृथ्वीका प्रमाण नियत कर सीमा नियत करनी चाहिए। भावार्थ—पर्वत, नदी सरोवर आदि दिग्व्रतकी प्रसिद्ध प्रसिद्ध सीमायें नियत करनी चाहिए और उससे बाहर कभी नही जाना चाहिए ॥३९२॥

अर्थ—जो पुरुष दिग्व्रत धारण कर लेता है उसको सीमाके बाहर त्रस वा स्थावर जीवोंमेंसे किसी जीवका घात नही होता इसलिए गृहस्थोंको भी इस व्रतसे महाव्रतोंका फल मिल जाता है। भावार्थ—यद्यपि गृहस्थके महाव्रत नही होते तथापि सीमा-

अर्थ—घोड़ा बैल आदिको नपुंसक बनाओ, खेतको जोतो, यह व्यापार करो राजाकी सेवा करो इस प्रकार हिंसा रूप वचन कहनेको पापोपदेश कहते है ऐसा पापोपदेश कभी नहीं देना चाहिए ॥४००॥

अर्थ—शत्रुका घात किस प्रकार हो, इस नगरका नाश किस प्रकार हो, परस्त्री सेवन किस प्रकार किया जाय, इस प्रकारके विपत्तियोंको उत्पन्न करनेवाले कार्यो का चिंतवन करना अपध्यान कहलाता है। ऐसे इस अपध्यान का दूरसे ही त्याग कर देना चाहिए ॥४०१॥

अर्थ—विष ऊखल यंत्र तलवार मूसल और अग्नि आदि हिंसाके साधनोंको देना हिंसा दान कहलाता है। ऐसे हिंसा करनेवाले पदार्थ कभी दूसरोंको नहीं देने चाहिए ॥४०२॥

अर्थ—रागद्वेषको वढ़ानेवाले तथा अज्ञानताको प्रकाशित करनेवाले ऐसे कुशास्त्रोंके पढ़ने सुननेको दुःश्रुति कहते है। बुद्धिमानोंको ऐसे कुशास्त्रोंके पढ़ने सुनने को सर्वथा त्याग कर देना चाहिए। भावार्थ—जिन शास्त्रोके पठन पाठनसे सम्यग्दर्शन मलिन हो जाय वा आगम की प्रतीति विपरीत हो जाय ऐसे शास्त्रोंको कभी पढ़ना सुनना नहीं चाहिए। बहुतसे भोले जीव ऐसे विपरीत ज्ञानको उत्पन्न करनेवाले शास्त्रोको पढ़कर वा सुनकर दान पूजा सयम आदि का स्वरूप विपरीत समझ लेते हैं, और गृहीत मिथ्यादृष्टी होजाते है, इसलिए ऐसे ग्रन्थोको कभी पढना वा सुनना नही चाहिए। प्रश्न—निर्मूल किसे कहते है? उत्तर—जो ग्रथ वा टीकायें भगवान सर्वज्ञदेवके कहे अनुसार गणधर प्रतिगणधर देवोंके कहे अनुसार वा पूर्वाचार्योंके वचनोंके अनुसार लिखे जाते है वे सव समूल कहे जाते है। तथा जो ग्रन्थ वा टीकाए पूर्वाचार्योंके वचनोके विरुद्ध लिखे जाते हैं उन्हे

निर्मूल समझना चाहिए। जैसे भगवान समन्तभद्राचार्यकृत रत्न-करण्ड श्रावकाचार मूल प्रमाण है तथा उसकी की हुई आचार्य प्रभाचन्द्र कृत संस्कृत टीका और [illegible] टीका भी पूर्वाचार्य वचनोंके अनुसार है इसलिए प्रमाण है और मान्य है। परन्तु इसी रत्नकरण्डश्रावकाचारकी भाषाटीका श्रीमान् पंडित सदासुखजी साहबने बनाई है, उसमें लिखे हुए अनेक पूर्वाचार्योंके वचनोंके अनुकूल नहीं है जैसे उसमें सचित्त फल फूलके चढ़ानेका निषेध किया है। परन्तु जितने पूजाके ग्रन्थ हैं उन सबमें सचित्त फूल और फल चढ़ानेका विधान मिलता है। तथा पं० सदासुखजी साहबको भी सचित्त फल फूलके चढ़ानेका ही श्रद्धान था क्योंकि उन्होंने जहां पर सचित्त फल फूलके चढ़ानेका निषेध किया है उसके पहले उन्होंने यह लिखा है कि सचित्तपूजा अनादिकालसे चली आरही है। इससे यह अवश्य सिद्ध हो जाता है कि सचित्त फल फूलसे पूजाका होना पूर्वाचार्योंके अनुकूल है परन्तु फिर भी उन्होंने सचित्त फलफूल चढ़ाने का निषेध किया है वह उनकी निजी राय है और वह राय पूर्वाचार्योंके अनुकूल नहीं है किन्तु प्रतिकूल है इसलिए उनकी वह निजी राय निर्मूल कहलावेगी। इसी प्रकार विद्वज्जन बोधकमें अनेक ऐसे विषय हैं जिनके लिए उन्होंने अनेक प्रमाण दिये हैं परन्तु फिर भी अन्त में उन विषयोंका निषेध किया है। चन्दन, पूजा व फल पुष्प पूजा आदिके लिये अनेक प्रमाण देकर फिर उनका निषेध किया है—इससे यह अवश्य मान लेना पड़ता है कि जब उन्होंने चंदन पूजाका सचित्त फल फूल पूजाके अनेक प्रमाण दिये हैं तो फिर उनका निषेध पूर्वाचार्योंके अनुकूल कभी नहीं हो सकता। इसलिये अनेक पूर्वाचार्योंके प्रमाण देते हुए भी जो निषेध किया है वह निर्मूल ही है। जो अनेक ग्रन्थोंके प्रमाण दिये हैं और जो पूर्वाचार्योंके विरुद्ध नहीं हैं वे सब सत्य हैं। इनके सिवाय सचित्ती-

करण विधानका निषेध, शासनदेवता पूजामें आह्वान आदिका निषेध सब निर्मूल है। पठन पाठन वा स्वाध्यायमें आनेवाले सब ग्रथ समूल होना चाहिए। समूल होनेसे ही आचार्योका अभिप्राय समझमे आ सकता है ॥४०३॥

अर्थ—विना प्रयोजनके वृक्षोंका तोड़ना पृथ्वीका खोदना पानी सीचना फल पुष्पोंको तोड तोड़ कर इकट्ठे करना आदि प्रमादाचरण वा प्रमादाचर्या कहलाती है। इस प्रमादाचर्याका भी सर्वथा त्याग कर देना चाहिए ॥४०४॥

अर्थ—मोर मुर्गा बिल्ली तोता मैना कुत्ता आदि हिसा करनेवाले जीवोको कभी नही पालना चाहिए। तथा हिंसा न करनेवाले कबूतर आदिकोको भी नही पालना चाहिए। अन्य जीवोको अपने आधीन कर उनकी इच्छाका रोकना है। पिजड़े में बन्द करना भी उनको दुःख देना है। इसलिये दया धारण कर किसी जीवको दुःख नही देना चाहिए ॥४०५॥

अर्थ—मोक्षकी इच्छा करनेवाले भव्य जीवोंको कोयले बनाना,भाड़ वनाना, सोना लोहा आदि धातुओंको गलानेके लिए मिट्टी बनाना, ईटोंको पकाना आदि अधिक हिंसाके व्यापारोका सर्वथा त्याग कर देना चाहिए ॥४०६॥

अर्थ—घोड़ा भैस बैल गधा आदि बोझा ढोनेवाले पशुओका व्यापार कभी नहीं करना चाहिए तथा अपने लाभके लिए नख हड्डी चमडा आदि पदार्थोका क्रय विक्रय नही करना चाहिए। ऐसे पदार्थोका व्यापार कभी नहीं करना चाहिये ॥४०७॥

अर्थ—मक्खन चर्बी शहद मद्य आदि पदार्थोको कभी नही बेचना चाहिए। तथा दास दासी और गाय भैस आदि चौपायों-के व्यापारसे जीवका कल्याण कभी नही हो सकता ॥४०८॥

अर्थ—गाड़ी मोटर चलवाना वा बनवाना और उनका बेचना दूरसे ही छोड़ देना चाहिए तथा मिल चलाना मैनकी प्रतिमा बनवाना आदि पाप कार्योंका भी दूरसे ही त्याग कर देना चाहिए ॥४०९॥

अर्थ—समर्थशाली पुरुषोंको विष लाख आदि पदार्थोंका संग्रह नहीं करना चाहिए तथा कुल्हाड़ी, वज्र, शस्त्र, अग्नि, मूसल, ऊखल आदि हिंसा करनेवाली चीजोंको दूसरे के लिए नहीं देना चाहिये ॥४१०॥

अर्थ—शुद्ध बुद्धिको धारण करनेवाले श्रावकोंको लाख मन-सिल, नील शण फूल धायके फूल हरताल सिंगी मोहरा विष आदि पदार्थोंका व्यापार नहीं करना चाहिये ॥४११॥

अर्थ—कुआ बावड़ी तालाब आदिको सुखानेका (पानी निकालनेका) व्यापार नहीं करना चाहिये भूमिका खोदना, वनस्पतियोंका पेड़ोंका काटना आदि अधिक हिंसाके कार्य धर्मात्मा पुरुषोंको कभी नहीं करने चाहिए ॥४१२॥

अर्थ—दागकी देना, चीरना, फाड़ना, नाक छेदना, अंडकोश छेदना व फोड़ना और तोड़ना, कान फाड़ना, नाकका भंग करना, लिंग वा लिंगका नष्ट करना आदि कार्य अनर्थ दण्ड कहलाते हैं श्रावकोंको ऐसे अनर्थदण्ड कभी नहीं करने चाहिये ॥४१३॥

अर्थ—झूठे लेख लिखना, गीत नृत्य वाद्य देखनेके लिए जहाँ ही इधर उधर घूमना, दाह देना, हठ करना, जीवोंको रोक रखना, बाधना, छेदना वा अन्न पानका निरोध करना आदि कार्य श्रावकोंको सदाके लिए त्याग कर देने चाहिए ॥४१४॥

अर्थ—राग द्वेष आदि परिणामोंका त्याग कर देनेसे तथा हिंसादिक पाप उत्पन्न करनेवाले कार्योंका सर्वथा त्याग

कर देनेसे समता रूप परिणाम होते है उसको गणधरादिक देव सामायिक नामका व्रत कहते है ।।४१५।।

अर्थ—सामायिकको विधिमें क्षेत्र शुद्धि, काल शुद्धि, विनय शुद्धि, आसन शुद्धि, काय शुद्धि, वचन शुद्धि और मन शुद्धि इस प्रकार सात प्रकारकी शुद्धि आचार्योने बतलाई है * ।।४१६।।

अर्थ—जो स्थान, पशु, स्त्री, नपुसक, सगोत आदि रागद्वेष बढानेवाले साधनोसे रहित हों ऐसे एकान्त स्थानमें वा किसी वन में वा सूने घरमें अथवा चैत्यालयमें सब तरहके ईर्षारूप परिणाम वा रागद्वेष रूप परिणामोसे रहित होकर प्रत्येक श्रावक को यह शुद्ध सामायिक व्रत करना चाहिए ।।४१७।।

अर्थ—जो स्थान लोगोके कोलाहलसे रहित है लोगोके समुदायसे रहित है और डास मच्छरोके उपद्रवोंसे रहित है ऐसे स्थानमें सामायिक नामके व्रतको पालन करना चाहिये ।।४१८।।

अर्थ—श्रेष्ठ पर्यकासनसे बैठकर तथा रागद्वेष आदि विकार, को सर्वथा छोडकर विनय पूर्वक सामायिक व्रतमे अपनी बुद्धि लगानी चाहिये ।।४१६।।

अर्थ—अपने हृदयको शुद्ध बनाकर प्रात:काल मध्याह्नकाल

---

* प्रासुक निर्जीव क्षेत्रको क्षेत्र शुद्धि कहते है जिस भूमिमे हाड़ विष्ठा मूत्र आदि मल न हो ऐसी शुद्ध भूमिको क्षेत्र शुद्धि कहते है । दिग्दाह, उल्कापात, दुर्दिन आदि दुष्ट कालसे रहित शुद्ध कालको शुद्धि कहते हैं । मन वचन कायसे अनादर नही करना आवर्त, नति, आदि क्रियाओ सहित सामायिकको विनय शुद्धि कहते है । पर्यकासन पद्मासन आदि आसनोंको आसन शुद्धि कहते है । मनसे आर्तरौद्र परिणामोंका त्याग कर देना मन शुद्धि है । शुद्धपाठोंका उच्चारण करना वचन शुद्धि है शरीरको जलसे धोना काय शुद्धि है ।

और सायंकालके समय सामायिक करना चाहिये सिद्धान्तके जाननेवाले गणधरादिक देवोंने सामायिकका यही समय बतलाया है ॥४७०॥

अर्थ—जिस मनुष्यकी बुद्धि सामायिकोंमें स्थिर रहती है वह मनुष्य राजा भरतके समान शीघ्र ही केवलज्ञान प्राप्त करता है ॥४७१॥

अर्थ—प्रत्येक महीनेमें दो अष्टमी और दो चतुर्दशी ऐसे चार पर्व होते हैं। प्रत्येक महीनेके इन चारों पर्वोंमें चारों प्रकार के आहारका त्याग कर देना उत्तम प्रोषधोपवास कहलाता है ऐसा गणधर देव कहते हैं ॥४७२॥

अर्थ—जिस दिन उपवास करना हो उससे एक दिन पहले मध्याह्नके समय बुद्धिमान श्रावकको शुद्ध भोजन करना चाहिये। तदनन्तर श्रीजिनालयमें पहुंचना चाहिये। वहां पर जाकर भगवान अरहन्तदेवको नमस्कार करना चाहिये तथा इन्द्रियोंके विषयों से विमुख हो कर और रागद्वेषके त्याग पूर्वक अपनी बुद्धिको निर्मल कर गुरुके समीपमें प्रोषधोपवास व्रतको ग्रहण करना चाहिये। भावार्थ—व्रत गुरुके समीप ही लेने चाहिये। तथा प्रोषधोपवासके दिन सब प्रकारके आरंभोंको त्यागकर जिनालय में ही रहना चाहिये। जिनालयमें रहनेसे इन्द्रियोंके विषय भी छूट जाते हैं और रागद्वेष भी नष्ट जाते हैं। तथा ऐसी अवस्था में ही उत्तम रीतिसे व्रतका पालन होता है * ॥४७३, ४७४॥

---

* प्रोषधोपवास व्रत सोलह पहरका होता है। यदि चतुर्दशी को प्रोषधोपवास व्रत करना हो तो उसे त्रयोदशी और पूर्णमासी को एकाशन करना पड़ेगा और चतुर्दशीका उपवास करना पड़ेगा। त्रयोदशीके दिन एकाशन कर उसको मन्दिरमें जाना चाहिये और वहीं पर गुरुसे प्रोषधोपवास व्रत लेना चाहिये।

अर्थ—प्रोषधोपवास व्रतको पालन करनेवाले श्रावकको किसी एकान्त स्थानमें रहना चाहिए। पापरूप समस्त कार्योंका त्याग कर देना चाहिए। इन्द्रियोके समस्त विषयोका त्यागकर

ऐसा करनेसे दो पहर तो त्रयोदशीके होते हैं चार पहर रातके होते है। चार पहर चतुर्दशीके दिनके होते है चार पहर चतुर्दशी के रातके होते है तथा दो पहर पूर्णमासोके दिनके होते है। इस प्रकार सोलह पहर तक चारों प्रकारके आहारका त्याग हो जाता है। पूर्णमासीको भी वह एकाशन ही करता हैं। यह उत्कृष्ट व्रत है। मध्यमव्रत बारह पहरका होता है। इसमें त्रयो-दशी और पूर्णमासीको एकाशन नहीं होता। किन्तु त्रयोदशीके दिन सूर्यास्तसे दो घड़ी पहले भोजन, पानीसे निवृत्त होकर जिनमन्दिरमें जाकर गुरुसे उपवास ग्रहण करता है। जिनमदिर चार पहर रातके चार पहर चतुर्दशीके दिनके और चार पहर चतुर्दशीके रातके विताकर पूर्णमासीको सवेरे ही पूजासे निवृत्त होकर घर आकर आहार कर लेता है। इस प्रकार बारह पहरका मध्यम उपवास कहलाता है। जघन्य उपवास आठ पहरका कहा गया है। जो श्रावक त्रयोदशीको शामके समय जिनालयमें जाकर गुरुसे अपवास ग्रहण नही करता चतुर्दशीको प्रातःकाल जाकर उपवास स्वीकार करता है तो उसके आठ पहरका ही अनशन होता है। चार पहर चतुर्दशीके दिनके और चार पहर चतुर्दशीके रातके इस प्रकार आठ पहर होते हैं। जो श्रावक चतु-र्दशीके दिन गर्म जल पी लेता है उसके वह उपवास अनुपवास कहलाता है। जो इस प्रकारके उपवास ग्रहण नही कर सकते उन्हे दिनका एकवारका भोजन छोड देना चाहिये अर्थात उन्हे दिनमें एकवार भोजन कर एकाशन करना चाहिये।

भगवान समन्तभद्र स्वामोने अपने रत्नकाण्ड श्रावकाचारमें

देना चाहिये और मनोगुप्ति वचनगुप्ति और कायगुप्तिको पालन करते हुए रहना चाहिये ॥४२५॥

लिखा है 'चतुराहार विसर्जनमुपवासः प्रोषधः सकृद्भुक्तिः।' अर्थात् चारों प्रकारके आहारका त्याग कर देना उपवास है और एकबार भोजन करना प्रोषध है। कहीं कहीं पर शास्त्रोंमें प्रोषध. एव उपवासः प्रोषधोपवासः ऐसा अर्थ भी लिखा है। ऐसा अर्थ करनेसे एकाशनको ही प्रोषधोपवास संज्ञा हो जाती है। इसका भी कारण यह है कि एकाशन करनेमें एक बारके भोजनका त्याग हो जाता है।

राजवार्तिकके नौवें अध्यायमें लिखा है कि 'तदनशनं द्वेधा व्यवतिष्ठते पुनः अवधृतानवधृतकालभेदात्। तत्र अवधृतकालम् सकृद्भोजन चतुर्थभक्तादि। अनवधृतकालमादेहोपरमात्।' अर्थात्—उपवासके दो भेद होते हैं अवधृतकाल उपवास अर्थात् कालकी मर्यादा लेकर उपवास करना और अनवधृतकाल उपवास मरण पर्यन्त होता है इसकी कोई मर्यादा नहीं है। एकाशन करना एक उपवास करना दो उपवास करना आदि अवधृतकाल उपवास कहलाता है। षष्ठोपवासका अर्थ—धारण पारण पूर्वक दो उपवास या बेलाका होना है। इसमें एक भोजन धारणाके दिन, दो बारका भोजन पहिले उपवासके दिन, दो बारका भोजन दूसरे उपवासके दिन और एक बारका भोजन पारणाके दिन छूट जाता है इसीलिए इसको षष्ठोपवास या षष्ठ भक्त कहते हैं। इससे भी यह सिद्ध हो जाता है कि एकाशनको भी प्रोषधोपवास संज्ञा होती है।

भगवान समन्तभद्र स्वामीने लिखा है कि :—

पर्वदिनेषु चतुर्ष्वपि मासे मासे स्वशक्तिमनिगुह्य।
प्रोषधनियमविधायी प्रणिधिपरः प्रोषधानशनः।

अर्थ—प्रत्येक महीनेके चारों पर्वके दिनोंमें अपनी शक्तिको

अर्थ—इस प्रकार दोपहरसे लेकर शाम तक उस दिनको व्यतीत करे। सायकालके समय सामायिक प्रतिक्रमण आदिकी सब विधि कर और हृदयको निर्मल बनाकर शुद्ध बिछौने पर रात्रिको व्यतीत करना चाहिये ॥४२६॥

अर्थ—प्रातःकाल उठकर प्रासुक जलसे शरीरकी शुद्धिकर सामायिक प्रतिक्रमण आदि प्रातःकालकी क्रिया करनी चाहिये फिर जल चदन अक्षत आदि अष्ट द्रव्यसे भगवान जिनेन्द्रदेवकी पूजा करनी चाहिये। भावार्थ—प्रोषधोपवासमें यद्यपि स्नान करने का त्याग है तथापि पूजा करनेके लिये उसे अवश्य स्नान करना चाहिये शृगार करनेके लिये स्नानका त्याग है। पूजाके लिये नहीं। पूजाके लिये उसे अभिषेक भी करना चाहिये ॥४२७॥

न छिपाकर नियमपूर्वक प्रोषध करनेवाला प्रोषधोपवासको धारण करनेवाला गिना जाता है। यहांपर प्रोषध शब्द ही दिया हैं। जिसका अर्थ एकाशन होता है। इससे भी यह सिद्ध होता है कि प्रोषधोपवास प्रतिमामें भी प्रोषधका ही नियम बतलाया है।

अमितगति श्रावकाचार में लिखा है :—

उपवासानुपवासैकस्थानेष्वेकमपि विधत्ते यः।
शक्तत्यनुसारपरोऽसौ प्रोषधकारी जिनैरुक्तः।

अर्थात्—उपवास, अनुपवास और एकाशनमेंसे जो अपनी शक्तिके अनुसार एकको भी धारण करता है उसको भगवान् जिनेन्द्रदेवने प्रोषध करनेवाला बतलाया है। यहापरसमझनेको बात यह भी है कि उपवास अनुपवास करनेवाली भी प्रौषध करनेवाला ही बतलाया है। इससे सिद्ध होता है कि जहांपर उपवास और अनुपवासका कथन है वही पर एकासनका कथन है। इसलिए प्रोषधोपयास व्रतमें एकाशन भी किया जाता है।

अर्थ—जो विधि ऊपर बतलाई है उसी विधिसे उस दूसरे दिनको तथा उस दूसरी रातको व्यतीत करना चाहिये तथा इसी प्रकार तीसरे दिनका आधा भाग व्यतीत करना चाहिये। यह सब समय बड़े प्रयत्नसे धर्मध्यानमें लीन होते हुए व्यतीत करना चाहिये ॥४२८॥

अर्थ—आगम रूपी नेत्रको धारण करनेवाला जो भव्य जीव ऊपर लिखे अनुसार सोलह पहरोंको व्यतीत करता है। वह भव्य पुरुष सुन्दर मोक्षरूपी स्त्रीके हृदयपर हारके समान सुशोभित होता है ॥४२९॥

अर्थ—प्रोषधोपवास करनेवाले पुरुषको उपवासके दिन स्नान नहीं करना चाहिये, चन्दन नहीं लगाना चाहिये, शरीरकी शोभा नहीं बढ़ानी चाहिये, शृंगार नहीं करना चाहिये, स्त्री-सेवन नहीं करना चाहिये और सब तरहके आरम्भोंका त्याग कर देना चाहिये ॥४३०॥

अर्थ—जो पुरुष सब तरहके आरम्भोंका त्याग कर एक भी उपवास कर लेता है। वह पुरुष अपने अनेक कर्मोंका नाश कर मोक्षरूपी अक्षय सुखकी प्राप्ति करता है ॥४३१॥

अर्थ—अपनी शक्तिके अनुसार भोगोपभोगमें आनेवाले पदार्थोंकी संख्या नियत कर लेना भोगोपभोग परिमाण नामका तीसरा गुणव्रत कहलाता है ॥४३२॥

अर्थ—गणधरादिक देव स्नान भोजन ताम्बूल आदि एक ही वार भोगनेमें आनेवाले पदार्थोंको भोग कहते हैं तथा वस्त्र, स्त्री, आभूषण, शय्या, आसन आदि वार वार भोगने आनेवाले पदार्थों को उपभोग कहते हैं ॥४३३॥

अर्थ—भोगोपभोगमें आनेवाले पदार्थोंका त्याग यम और नियमके भेदसे दो प्रकार किया जाता है। बिना कालकी मर्यादा

के जो सदाके लिये त्याग किया जाता है, उसको यम कहते हैं और कालकी मर्यादासे जो त्याग किया जाता है उसको नियम कहते हैं ॥४३४॥

अर्थ—जो भव्य पुरुष मन वचन कायसे भोगोपभोग पदार्थों का परिमाण नियत कर लेता है, उस पुरुषके साथ मोक्षरूपी स्त्री सदा रमण करनेकी इच्छा करती रहती है ॥४३५॥

अर्थ—जो पुरुष अपने धनका कुछ भाग अतिथियोंके लिये देता है, उसको संसार भरमें उत्तम गणधरादिक देव अतिथि संविभाग व्रत कहते है ॥४३६॥

अर्थ—जो व्रती पुरुष शिक्षाके लिये बिना बुलाया अपने घर पर आवे उसको शब्द अर्थके जाननेवाले गणधरादिक देव अतिथि कहते है। भावार्थ—मुनि ऐल्लक क्षुल्लक आदि पात्र भिक्षाके लिये बिना बुलाये ही घर पर आते है। इसलिये वे अतिथि कहलाते है ॥४३७॥

अर्थ—सात गुणोसे सुशोभित दाताको सब प्रकारके आरम्भों से रहित मुनियोका आदर सत्कार नवधा भक्तिपूर्वक करना चाहिये। भावार्थ—मुनि ऐल्लक आदिको नवधा भक्ति पूर्वक दान देना चाहिये ॥४३८॥

अर्थ—दरवाजे पर खड़े होकर पडगाहन करना ऊंचे आसन पर विराजमान करना, पैर धोना, पूजा करना, नमस्कार करना वचन शुद्धि, कायशुद्धि, मनशुद्धि और आहारशुद्धि रखना तथा मुहसे कहना यह नौ प्रकारकी विधि कहलाती है, इसीको नवधा भक्ति कहते है ॥४३९॥

अर्थ—इस लोकके किसी फलकी इच्छा न करना, क्षमा धारण करना, कपट न रखना, ईर्ष्या न रखना, विषाद नहीं

अर्थ—जिस समुद्रमें वायुके वेगसे वड़ी बड़ी लहरे उठ रही हैं ऐसे समुद्रमें ये जीव जहाजसे अवश्य पार हो जाते है। उसी प्रकार इस संसारमें पड़े हुए मनुष्य पात्रदानसे बहुत शीघ्र पार हो जाते है ॥४४७॥

अर्थ—इस प्रकार तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत ये सात शील महामाताए कहलाती है। ये शील रूपी सातो महामाताएं महा सुख देनेवाली है और सर्वोत्तम है, इसलिये चतुर पुत्रको वड़ी शीघ्रताके साथ प्रतिदिन इनका सेवन करना चाहिए ॥४४८॥

अर्थ—किसी प्रकार भी जिनका निवारण न हो सके और जो मृत्युके ही कारण जान पडे ऐसा दुष्काल पड़ जाने पर, कठिन व्याधि आजाने पर, असह्य वृद्धावस्था आजाने पर, तीव्र शत्रुता को धारण करनेवाले किसी शत्रुकी सेनाके आजाने पर, तपश्चरणके नाश होनेके कारण मिल जाने पर और मृत्युका समय निकट आजाने पर संसारके भयभीत हुए मनुष्योको सल्लेखना अवश्य धारण करनी चाहिये ॥४४९,४५०॥

अर्थ—गणधरादिक देवोने दान शील भाव और तपका फल समाधिमरण ही बतलाया है। इसलिए समाधिमरण धारण करने के लिए सबसे अधिक प्रयत्न करना चाहिये ॥४५१॥

अर्थ—पुत्र मित्र स्त्री आदि कुटम्बियोंके प्रेमका त्याग कर देना चाहिये, धनादिकमे मोह छोड़ देना चाहिये और समस्त शत्रुओंसे द्वेष छोड़ देना चाहिये। तदनन्तर समाधिमरण धारण करना चाहिये ॥४५२॥

अर्थ—जो पाप स्वयं किये है वा कराये है अथवा जिनकी अनुमोदना की है ऐसे समस्त पापोंकी आलोचना गुरुके समीप करनी चाहिये और फिर शल्य रहित होकर समाधिमरण धारण करना चाहिये ॥४५३॥

अर्थ—पंच नमस्कार मंत्रका स्मरण करते हुये और शुद्ध चैतन्य स्वरूप अपने आत्माका वा परमात्माका चिंतवन करते हुये उस क्षपकको दुःख शोक आदि सबसे रहित होकर बड़े आनन्दके साथ शरीरका त्याग कर देना चाहिए ।।४६१।।

अर्थ—इस प्रकार आचार्योंने यह सबसे उत्तम श्रेष्ठ काय सल्लेखनाका स्वरूप कहा है । इस सल्लेखना वा समाधिमरणको धारण करनेवाला श्रावक मोक्षरूप परम गतिको प्राप्त करता है ।।४६२।।

अर्थ—इस प्रकार मैंने श्रावकोके तेरह प्रकारके चारित्रका निरूपण किया है । ये तेरहों प्रकारके व्रत अतिचार रहित पालन करने चाहिए । इन सब व्रतोंके अतिचारोंकी संख्या सत्तर है । प्रत्येक व्रतके पांच पांच अतिचार है इस प्रकार बारह व्रतोके साठ अतिचार हैं तथा पाच सम्यग्दर्शनके और सल्लेखनाके इस प्रकार सत्तर अतिचार होते है ।।४६३।।

अर्थ—तत्त्वार्थ सूत्रके सातवे अध्यायमें इन समस्त अतिचार का निरूपण किया है । इसीलिए यहां पर उनका वर्णन नहीं किया । सातवे अध्यायके कथनसे जो बचे हुए समाचार है वे ही यहां इस ग्रन्थमें निरूपण किए है * ।।४६४।।

---

* यह ग्रन्थ भगवान उमास्वामीका बनाया हुआ है तथा मोक्षशास्त्र वा तत्त्वार्थ सूत्र भी भगवान उमास्वामीका बनाया हुआ है । भगवान उमास्वामीने अपने तत्त्वार्थसूत्रमें इन सत्तर अतिचारोका निरूपण बहुत अच्छी तरहसे किया है । इसीलिये आचार्यने इस श्लोकमें अतिचारोंका हवाला दे दिया है । जो विषय अपने ही किसी ग्रन्थमें कहा जा चुका है, उसी विषयको दूसरे ग्रंथमें लिखना शोभा नहीं देता । इसीलिए आचार्य महा-राजने अतिचार नही कहे हैं । तत्त्वार्थसूत्रमें पूजा प्रकरण वा

अर्थ—जो श्रावक सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रको धारण कर अपने आत्माका कल्याण करना चाहते है। उनको सबसे पहिले अत्यन्त निंदनीय ऐसे सातो व्यसनोका त्याग कर देना चाहिये ॥४६५॥

अर्थ—जूआ खेलना, मांस खाना, शराब पीना, वैश्या सेवन करना, शिकार खेलना, चोरी करना और परस्त्री सेवन करना ये सात व्यसन कहलाते है। श्रावकोको इनका त्याग सदाके लिए कर देना चाहिए ॥४६६॥

अर्थ—जो मूर्ख पुरुष अपने हृदयमें आधे क्षण भी इस जूआको धारण करता है वह पुरुष युधिष्ठरके समान अनेक आपत्तियोको प्राप्त होता है ॥४६७॥

अर्थ—मास-भक्षण करनेसे राजा वक नष्ट हो गया। शराब पीनेसे समस्त यादव नष्ट हो गये। वेश्या-सेवन करनेसे चारुदत्त नष्ट हो गया और शिकार खेलनेसे ब्रह्मदत्त राजा नष्ट हो गया ॥४६८॥

अर्थ—चोरी करनेसे शिवभूति ब्राह्मण नष्ट हो गया तथा परस्त्री सेवनकी लालसा मात्र करनेसे रावण नष्ट हो गया। इस प्रकार एक-एक व्यसनके सेवन करनेसे ऐसे महापुरुष नष्ट हो गये फिर भला जो सातो व्यसनोका सेवन करत हे वे क्यो नष्ट नही होगे ? अवश्य होगे ॥४६९॥

श्रावकोंके पट्कर्मोका वर्णन नही है। इन षट्कर्मोंको ही समाचार कहते हैं। व्रतोका वर्णन भी अत्यन्त सक्षिप्त है। विधि विधान किसीका नही है। इस प्रकार तत्त्वार्थसूत्रमे श्रावकाचार सबधी जो कमी थी वह इस ग्रथमे पूरी की है। यह बात इस श्लोकसे स्पष्ट जान पड़ती है।

अर्थ—पंच नमस्कार मंत्रका स्मरण करते हुये और शुद्ध चैतन्य स्वरूप अपने आत्माका वा परमात्माका चिंतवन करते हुये उस क्षपकको दुःख शोक आदि सबसे रहित होकर बड़े आनन्दके साथ शरीरका त्याग कर देना चाहिए ॥४६१॥

अर्थ—इस प्रकार आचार्योंने यह सबसे उत्तम श्रेष्ठ काय सल्लेखनाका स्वरूप कहा है। इस सल्लेखना वा समाधिमरणको धारण करनेवाला श्रावक मोक्षरूप परम गतिको प्राप्त करता है ॥४६२॥

अर्थ—इस प्रकार मैंने श्रावकोंके तेरह प्रकारके चारित्रका निरूपण किया है। ये तेरहों प्रकारके व्रत अतिचार रहित पालन करने चाहिए। इन सब व्रतोंके अतिचारोंकी संख्या सत्तर है। प्रत्येक व्रतके पांच पांच अतिचार है इस प्रकार बारह व्रतोंके साठ अतिचार हैं तथा पांच सम्यग्दर्शनके और सल्लेखनाके इस प्रकार सत्तर अतिचार होते है ॥४६३॥

अर्थ—तत्त्वार्थ सूत्रके सातवे अध्यायमें इन समस्त अतिचार का निरूपण किया है। इसीलिए यहां पर उनका वर्णन नहीं किया। सातवें अध्यायके कथनसे जो बचे हुए समाचार है वे ही यहां इस ग्रन्थमें निरूपण किए है * ॥४६४॥

---

* यह ग्रन्थ भगवान उमास्वामीका बनाया हुआ है तथा मोक्षशास्त्र वा तत्त्वार्थ सूत्र भी भगवान उमास्वामीका बनाया हुआ है। भगवान उमास्वामीने अपने तत्त्वार्थसूत्रमें इन सत्तर अतिचारोंका निरूपण बहुत अच्छी तरहसे किया है। इसीलिये आचार्यने इस श्लोकमें अतिचारोंका हवाला दे दिया है। जो विषय अपने ही किसी ग्रन्थमें कहा जा चुका है, उसी विषयको दूसरे ग्रंथमें लिखना शोभा नही देता। इसीलिए आचार्य महाराजने अतिचार नहीं कहे है। तत्त्वार्थसूत्रमें पूजा प्रकरण वा

अर्थ—जो श्रावक सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रको धारण कर अपने आत्माका कल्याण करना चाहते है। उनको सबसे पहिले अत्यन्त निंदनीय ऐसे सातो व्यसनोका त्याग कर देना चाहिये ॥४६५॥

अर्थ—जूआ खेलना, मास खाना, शराब पीना, वैश्या सेवन करना, शिकार खेलना, चोरी करना और परस्त्री सेवन करना ये सात व्यसन कहलाते है। श्रावकोको इनका त्याग सदाके लिए कर देना चाहिए ॥४६६॥

अर्थ—जो मूर्ख पुरुष अपने हृदयमे आधो क्षण भी इस जूआको धारण करता है वह पुरुष युधिष्ठरके समान अनेक आपत्तियोको प्राप्त होता है ॥४६७॥

अर्थ—मास-भक्षण करनेसे राजा वक नष्ट हो गया। शराब पीनेसे समस्त यादव नष्ट हो गये। वैश्या-सेवन करनेसे चारुदत्त नष्ट हो गया और शिकार खेलनेसे ब्रह्मदत्त राजा नष्ट हो गया ॥४६८॥

अर्थ—चोरी करनेसे शिवभूति ब्राह्मण नष्ट हो गया तथा परस्त्री सेवनकी लालसा मात्र करनेसे रावण नष्ट हो गया। इस प्रकार एक-एक व्यसनके सेवन करनेसे ऐसे महापुरुष नष्ट हो गये फिर भला जो सातो व्यसनोका सेवन करते हैं वे क्यो नष्ट नही होगे ? अवश्य होगे ॥४६९॥

श्रावकोके षट्कर्मोका वर्णन नही है। इन षट्कर्मोको ही समाचार कहते हैं। व्रतोका वर्णन भी अत्यन्त सक्षिप्त है। विधि विधान किसीका नही है। इस प्रकार तत्त्वार्थसूत्रमे श्रावकाचार सबधी जो कमी थी वह इस ग्रथमे पूरी की है। यह बात इस श्लोकसे स्पष्ट जान पडती है।

अर्थ—इस संसारमें इसी प्रकारके जो पाप कर्म हैं तथा दुष्ट वा नीच लोगोंका ससर्ग है वह सब दूरसे ही छोड़ देना चाहिये ॥४७०॥

अर्थ—उत्तम पुरुषोंको देवशास्त्र गुरु माता पिता आदि गुरुजनों की सदा सेवा करते रहना चाहिए, ज्ञानका पठन पाठन सदा करते रहना चाहिए, अपने आत्माका कल्याण सदा करते रहना चाहिए और आत्माका अकल्याण करनेवाले कार्योंका सदाके लिए त्याग कर देना चाहिए ॥४७१॥

अर्थ आत्माका कल्याण करना चाहिए और अकल्याण वा अहितका त्याग कर देना चाहिए यह बात संसार भरमें प्रसिद्ध है। फिर भी ये संसारी लोग हित करने में प्रमाद करते है यह बडे दुःखकी बात है। अथवा अनादि कालसे लगे हुए मोहसे यह मनुष्य क्या क्या अहित नही करता है ? अर्थात् मोहके उदयसे यह जीव सब प्रकारके अहित कर बैठता है ॥४७२॥

अर्थ—जो मनुष्य भक्ष्य अभक्ष्यके विचार करनेमें अज्ञानी है, भक्ष्य अभक्ष्य का कुछ विचार नहीं करता, इसी प्रकार करने योग्य वा न करने योग्य कार्योंका भी कुछ विचार नही करता और जो शास्त्रोको सुनता हुआ भी अज्ञानी बना रहता है। वह मनुष्य भला पाप क्यो नही करेगा ? अवश्य करेगा। भावार्थ—भक्ष्य अभक्ष्यका विचार न कर सबका भक्षण करना भी पाप है कर्तव्य अकर्तव्य का विचार न कर अन्याय अनर्थ करना, व्यसन सेवन करना, अधर्मकी प्रवृत्ति करना श्रावकाचार कुलाचार आदिके प्रतिकूल चलना आदि भी सब महा पाप है। तथा रात-दिन शास्त्रोका श्रवण करते हुए भी आत्माका कल्याण न करना आत्माका स्वरूप न पहचानना मिथ्याज्ञानी ही बने रहना महा-पाप समझना चाहिए। इसीलिए आचार्य कहते है कि जो विचार रहित होकर भक्ष्य अभक्ष्य सबका भक्षण करता है वह भी सदा

पाप उत्पन्न करता है जो अकर्तव्य कर्मो का त्याग न कर अनेक प्रकारके अन्याय अनर्थ करता रहता है। वह भी महापाप करता रहता है इस प्रकार ऐसे लोगमहा पाप ही उत्पन्न करते रहते है। इसलिए श्रावकका कर्तव्य है कि वह अभक्ष्य भक्षणका त्याग कर शुद्ध भोजन करे, न करने योग्य अन्याय अनर्थो के करनेका त्याग कर देवपूजा करना न्याय पूर्वक जीविका रखना आदि न्यायोचित कार्य करे और शास्त्रो-को पढ़कर वा सुनकर उनके अनुकूल प्रवृत्ति करे। यही शास्त्रो के पढने का फल है। और यही उत्तम कुल तथा उत्तम धर्म धारण करने का फल है ॥४७३॥

अर्थ – इसप्रकार इस भगवान उमास्वामी विरचित श्रावका-चार के द्वारा समझाया हुआ भव्य जीव चाहे पत्थरके समान कठिन हो तथापि वह थोडे ही दिनोमे कोमल हो जाता है वह अपने आत्माकी वृद्धि कर लेता है धर्मात्मा हो जाता है और अनेक प्रकारके सुखोको प्राप्त हो जाता है ॥४७४॥

अर्थ—जिसके सुननेसे और जिसके अनुसार चलनेसे समस्त पापोके समूह नष्ट हो जाते है तथा जो अत्यन्त निर्मल ज्ञानका घर है ऐसा यह श्रावकाचार आचार्य उमास्वामीने बनाया है। विनयके भारसे जिनका शरीर नम्रीभूत हो रहा है ऐसे श्रावकों को यह श्रावकाचार सदा सुनते रहना चाहिए और निर्मल बुद्धि को पाकर अपना सम्यग्ज्ञान सदा बढाते रहना चाहिए ॥४७५॥

अर्थ—इस प्रकार मैंने यह श्रावकोके चरित्र का निरूपण इस छठे अध्यायमे किया है। इसके सिवाय अन्य सब विषय मेरे वनाये हुये मोक्ष शास्त्रमें देख लेना चाहिए ॥४७६॥

इस प्रकार आचार्य वर्य भगवान् श्री उमास्वामी
विरचित उमास्वामि श्रावकाचार विद्वद्वर
पं० हलायुध जी कृत भाषा वचनिका
समाप्त हुई।

अर्थ—इस संसारमें इसी प्रकारके जो पाप कर्म हैं तथा दुष्ट वा नीच लोगोंका संसर्ग हैं वह सब दूरसे ही छोड़ देना चाहिये ॥४७०॥

अर्थ—उत्तम पुरुषोंको देवशास्त्र गुरु माता पिता आदि गुरुजनों की सदा सेवा करते रहना चाहिए, ज्ञानका पठन पाठन सदा करते रहना चाहिए, अपने आत्माका कल्याण सदा करते रहना चाहिए और आत्माका अकल्याण करनेवाले कार्योंका सदाके लिए त्याग कर देना चाहिए ॥४७१॥

अर्थ आत्माका कल्याण करना चाहिए और अकल्याण वा अहितका त्याग कर देना चाहिए यह बात संसार भरमें प्रसिद्ध है। फिर भी ये संसारी लोग हित करने में प्रमाद करते हैं यह वडे दुःखकी बात है। अथवा अनादि कालसे लगे हुए मोहसे यह मनुष्य क्या क्या अहित नहीं करता है ? अर्थात् मोहके उदयसे यह जीव सब प्रकारके अहित कर बैठता है ॥४७२॥

अर्थ—जो मनुष्य भक्ष्य अभक्ष्यके विचार करनेमें अज्ञानी हैं, भक्ष्य अभक्ष्य का कुछ विचार नहीं करता, इसी प्रकार करने योग्य वा न करने योग्य कार्योंका भी कुछ विचार नही करता और जो शास्त्रोंको सुनता हुआ भी अज्ञानी बना रहता है। वह मनुष्य भला पाप क्यों नही करेगा ? अवश्य करेगा। भावार्थ—भक्ष्य अभक्ष्यका विचार न कर सबका भक्षण करना भी पाप है कर्तव्य अकर्तव्य का विचार न कर अन्याय अनर्थ करना, व्यसन सेवन करना, अधर्मकी प्रवृत्ति करना श्रावकाचार कुलाचार आदिके प्रतिकूल चलना आदि भी सब महा पाप है। तथा रातदिन शास्त्रोका श्रवण करते हुए भी आत्माका कल्याण न करना आत्माका स्वरूप न पहचानना मिथ्याज्ञानी ही बने रहना महापाप समझना चाहिए। इसीलिए आचार्य कहते है कि जो विचार रहित होकर भक्ष्य अभक्ष्य सबका भक्षण करता है वह भी सदा

पाप उत्पन्न करता है जो अकर्तव्य कर्मो का त्याग न कर अनेक प्रकारके अन्याय अनर्थ करता रहता है। वह भी महापाप करता रहता है इस प्रकार ऐसे लोगमहा पाप ही उत्पन्न करते रहते है। इसलिए श्रावकका कर्तव्य है कि वह अभक्ष्य भक्षणका त्याग कर शुद्ध भोजन करे, न करने योग्य अन्याय अनर्थो के करनेका त्याग कर देवपूजा करना न्याय पूर्वक जीविका रखना आदि न्यायोचित कार्य करे और शास्त्रो-को पढकर वा सुनकर उनके अनुकूल प्रवृत्ति करे। यही शास्त्रो के पढने का फल है। और यही उत्तम कुल तथा उत्तम धर्म धारण करने का फल है ॥४७३॥

अर्थ – इसप्रकार इस भगवान उमास्वामी विरचित श्रावका-चार के द्वारा समझाया हुआ भव्य जीव चाहे पत्थरके समान कठिन हो तथापि वह थोडे ही दिनोमे कोमल हो जाता है वह अपने आत्माकी वृद्धि कर लेता है धर्मात्मा हो जाता है और अनेक प्रकारके सुखोको प्राप्त हो जाता है ॥४७४॥

अर्थ—जिसके सुननेसे और जिसके अनुसार चलनेसे समस्त पापोंके समूह नष्ट हो जाते हैं तथा जो अत्यन्त निर्मल ज्ञानका घर है ऐसा यह श्रावकाचार आचार्य उमास्वामीने वनाया है। विनयके भारसे जिनका शरीर नम्रीभूत हो रहा है ऐसे श्रावकों को यह श्रावकाचार सदा सुनते रहना चाहिए और निर्मल बुद्धि को पाकर अपना सम्यग्ज्ञान सदा वढाते रहना चाहिए ॥४७५॥

अर्थ—इस प्रकार मैंने यह श्रावकोके चरित्र का निरूपण इस छठे अध्यायमे किया है। इसके सिवाय अन्य सब विषय मेरे वनाये हुये मोक्ष शास्त्रमे देख लेना चाहिए ॥४७६॥

इस प्रकार आचार्य वर्य भगवान् श्री उमास्वामी
विरचित उमास्वामि श्रावकाचार विद्वद्वर
प० हलायुध जी कृत भाषा वचनिका
समाप्त हुई।

जिनप्रतिमाका लक्षण

शान्तप्रसन्नमध्यस्थनासाग्रस्थाविकारकृत् ।
सम्पूर्णभावरूपानुविद्धांगं लक्षणान्वितम् ।।
रोद्रादिदोषनिर्मुक्तप्रातिहार्याकयक्षयुक् ।
निर्माप्य विधिना पीठे जिनबिम्ब निवेशयेत् ।।

—प्रतिष्ठासारोद्धार

अर्थ—जिसके मुखकी आकृति शात हो, प्रसन्न हो, मध्यस्थ हो, नेत्र विकार रहित हों, दृष्टि नासिकाके अग्रभाग पर हो, जो केवलज्ञानके सम्पूर्ण भावोंसे सुशोभित हो, जिसके अंग उपांग सब सुन्दर हो, रौद्र आदि भावोंसे रहित हों, आठों प्रतिहार्योंसे विभूषित हो, चिह्नसे सुशोभित हों यक्ष यक्षी सहित हों और ध्यानस्थ हो इस प्रकारसे शुभ लक्षणोंसे सुशोभित जिनप्रतिमा बनवाना चाहिए और प्रतिष्ठा करा कर पूजा करनी चाहिये । जिन प्रतिमा में ये लक्षण न हों वह अरहन्तकी प्रतिमा नही कही जा सकती ।

प्रातिहार्याष्टकोपेतां यक्ष यक्षीसमन्विताम् ।
स्वस्वलांच्छनसंयुक्तां जिनार्चां कारयेत्सुधीः ।।

—जिनेन्द्र कल्याणाभ्युदय

अर्थ—जो आठ प्रतिहार्योंसे सुशोभित है, यक्ष यक्षी सहित है और अपने अपने चिह्नोंसे सुशोभित है ऐसी प्रतिमा बुद्धिमानों को बनवानी चाहिए ।

यक्षं च दक्षिणे पार्श्वे वामे शासनदेवताम् ।
लाच्छनं पानपीठाधः स्थापयेद् यस्य यद्भवेत् ।।

—वसुनन्दी प्रतिष्ठापाठ

अर्थ—जिनप्रतिमाके दाईं ओर यक्षकी मूर्ति होनी चाहिए बाईं ओर शासनदेवता अर्थात् यक्षीकी मूर्ति होनी चाहिए और सिंहानसके नीचे जिनकी प्रतिमा हो उनका चिन्ह होना चाहिए ।

स्थापयेदर्हतां छत्रत्रयाशोकप्रकीर्णके ।
पीठं भामण्डलं भाषां पुष्पवृष्टिं च दुन्दुभिम् ॥
स्थिरेतरार्चयोः पादपीठस्याधो यथायथम् ।
लाञ्छनं दक्षिणे पार्श्वे यक्षो यक्षी च वामके ॥

अर्थ—अरहन्त प्रतिमाके निर्माणके साथ साथ तीन छत्र, अशोकवृक्ष, सिंहासन, भामण्डल, चमर दिव्यध्वनि, दुन्दुभि, पुष्पवृष्टि ये आठ प्रातिहार्य अंकित होने चाहिए। प्रतिमा चाहे चल हो चाहे अचल हो, परन्तु उनका चिन्ह सिंहासनके नीचे होना चाहिए। दाहिनी ओर यक्ष और बाईं ओर यक्षी होनी चाहिये।

अथ विम्वं जिनेन्द्रस्य कर्तव्यं लक्षणान्वितम् ।
कृत्वयतनसंस्थान तरुणांग दिगम्वरम् ॥
मूलप्रमाणपर्वाणां कुर्यादष्टोत्तरं शतम् ।
अङ्गोपांगविभागश्च जिनविम्बानुसारतः ॥
प्रातिहार्याष्टकोयेतं नम्पूर्णावयय शुभम् ।
भावरूपानुविद्धांगं कारयेद्बिम्बमर्हतः ॥
प्रातिहार्यं विना शुद्धं सिद्धं विम्वमपीदृशम् ।
सूरीणां पाठकानां च साधूनां च यथागमम् ॥

अर्थ—भगवान जिनेन्द्रदेवकी प्रतिमा लक्षण सहित बनवानी चाहिये। जो सम चतुरस्र सस्थान हो, तरुणावस्थाकी हो, दिगम्बर हो, उसका आकार वास्तुशास्त्रके अनुसार दशताल प्रमाण हो उसके आकारके एकसौ आठ भाग हो, अग उपागोका विभाग प्रतिमाके अनुसार ही होना चाहिये जो। आठ प्रतिहार्यों से सुशोभित हो, जिसके सम्पूर्ण अवयव हो। जो शुभ हो उसका शरीर केवलज्ञानको प्रकाशित करने वाले भावोसे परिपूर्ण हो, इसप्रकार अरहन्तकी प्रतिमा बनवानी चाहिए। यदि उस प्रतिमा के साथ आठ प्रातिहार्य न हों तो वह सिद्धोकी प्रतिमा हो जाती

परिशिष्ट नं० १

जिनप्रतिमाका लक्षण

शान्तप्रसन्नमध्यस्थनासाग्रस्थाविकारकृत् ।
सम्पूर्णभावरूपानु विद्धांगं लक्षणान्वितम् ॥
रौद्रादिदोषनिर्मुक्तप्रातिहार्याकयक्षयुक् ।
निर्माप्य विधिना पीठे जिनविम्ब निवेशयेत् ॥

—प्रतिष्ठासारोद्धार

अर्थ—जिसके मुखकी आकृति शांत हो, प्रसन्न हो, मध्यस्थ हो, नेत्र विकार रहित हों, दृष्टि नासिकाके अग्रभाग पर हो, जो केवलज्ञानके सम्पूर्ण भावोंसे सुशोभित हो, जिसके अंग उपांग सब सुन्दर हों, रौद्र आदि भावोंसे रहित हों, आठों प्रतिहार्योंसे विभूषित हों, चिह्नसे सुशोभित हो यक्ष यक्षी सहित हों और ध्यानस्थ हों इस प्रकारसे शुभ लक्षणोंसे सुशोभित जिनप्रतिमा वनवाना चाहिए और प्रतिष्ठा करा कर पूजा करनी चाहिये। जिन प्रतिमा में ये लक्षण न हो वह अरहन्तकी प्रतिमा नही कही जा सकती।

प्रातिहार्याष्टकोपेतां यक्ष यक्षीसमन्विताम् ।
स्वस्वलांच्छनसंयुक्तां जिनार्चां कारयेत्सुधीः ॥

—जिनेन्द्र कल्याणाभ्युदय

अर्थ—जो आठ प्रतिहार्योंसे सुशोभित है, यक्ष यक्षी सहित है और अपने अपने चिह्नोंसे सुशोभित है ऐसी प्रतिमा बुद्धिमानों को बनवानी चाहिए।

यक्षं च दक्षिणे पार्श्वे वामे शासनदेवताम् ।
लाञ्छनं पानपीठाधः स्थापयेद् यस्य यद्भवेत् ॥

—वसुनन्दी प्रतिष्ठापाठ

अर्थ—जिनप्रतिमाके दाईं ओर यक्षकी मूर्ति होनी चाहिए बाईं ओर शासनदेवता अर्थात् यक्षीकी मूर्ति होनी चाहिए और सिंहासनके नीचे जिनकी प्रतिमा हो उनका चिन्ह होना चाहिए।

स्थापयेदर्हता छत्रत्रयाशोकप्रकीर्णके ।
पीठ भामण्डल भाषा पुष्पवृष्टि च दुन्दुभिम् ॥
स्थिरेतराचयोः पादपोठस्थायौ यथायथम् ।
लाच्छन दक्षिणे पार्श्वे यक्षो यक्षी च वामके ॥

अर्थ—अरहन्त प्रतिमाके निर्माणके साथ साथ तीन छत्र, अशोकवृक्ष, सिंहासन, भामण्डल, चमर दिव्यध्वनि, दुन्दुभि, पुष्पवृष्टि ये आठ प्रातिहार्य अंकित होने चाहिए । प्रतिमा चाहे चल हो चाहे अचल हो, परन्तु उनका चिन्ह सिंहासनके नीचे होना चाहिए । दाहिनी ओर यक्ष और बाईं ओर यक्षी होनी चाहिये ।

अथ विम्बं जिनेन्द्रस्य कर्तव्य'लक्षणान्वितम् ।
कृत्वयतनसस्थान तरुणाग दिगम्वरम् ॥
मूलप्रमाणपर्वाणां कुर्यादष्टोत्तरं शतम् ।
अङ्गोपागविभागश्च जिनविम्बानुसारतः ॥
प्रातिहार्याष्टकोयेत नम्पूर्णावयय शुभम् ।
भावरूपानुविद्धाग कारयेद्विम्बमर्हत. ॥
प्रातिहार्यं विना शुद्ध सिद्ध विम्बमपीदृशम् ।
सूरीणा पाठकानां च साधूना च यथागमम् ॥

अर्थ—भगवान जिनेन्द्रदेवकी प्रतिमा लक्षण सहित बनवानी चाहिये । जो सम चतुरस्र सस्थान हो, तरुणावस्थाकी हो, दिगम्बर हो, उसका आकार वास्तुशास्त्रके अनुसार दशताल प्रमाण हो उसके आकारके एकसौ आठ भाग हों, अग उपागोका विभाग प्रतिमाके अनुसार ही होना चाहिये जो । आठ प्रतिहार्यों से सुशोभित हो, जिसके सम्पूर्ण अवयव हो । जो शुभ हो उसका शरीर केवलज्ञानको प्रकाशित करने वाले भावोसे परिपूर्ण हो, इस प्रकार अरहन्तकी प्रतिमा बनवानी चाहिए । यदि उस प्रतिमा के साथ आठ प्रातिहार्य न हो तो वह सिद्धोकी प्रतिमा हो जाती

है। आचार्य उपध्याय और साधुओंकी प्रतिमा भी आगमके अनुसार बनानी चाहिये।

कारयेदर्हतो विम्बं प्रातिहार्यसमन्वितम्।
यक्षाणां देवताना च सर्वालंकारभूषितम्।
स्ववाहनायुधोपेतं कुर्यात्सर्वांगसुन्दरम्।

अर्थ–जिनप्रतिमा आठ प्रतिहाय सहित होनी चाहिये। तथा यक्ष यक्षी सहित होनी चाहिए। वे यक्ष और यक्षी समस्त अलंकारोंसे सुशोभित होने चाहिए, अपने-अपने आयुध और वाहन सहित हो तथा सर्वांग सुन्दर हों।

सैद्ध नु प्रातिहार्याकियक्षयुग्मोज्झित शुभम्।

अर्थ—जिन प्रतिमामें आठ प्रतिहार्य न हो और यक्ष यक्षी न हों उनको सिद्ध प्रतिमा कहते हैं।

अष्टप्रातिहार्यसमन्विताईप्ततिमा तद्ररहिता सिद्धिप्रतिमा

अर्थ–जिस प्रतिमामें आठ प्रतिहार्य हों वह अरहन्तकी प्रतिमा है तथा जिसमें प्रतिहार्य नही है. वह सिद्ध प्रतिमा है।

प्रतिष्ठाके समस्त ग्रंथमें अरहन्त प्रतिमाका यही स्वरूप बतलाया है। त्रिलोकसार राजवर्तिकमें भी प्रतिमा का यही स्वरूप है। यथा—

सिहासणादि सहिया विणीयकुन्तल सुवज्जमयदता।
विदुय हरदा किसलय,सोहापर इत्थमायतला॥
सिरी देवी सुअदेवो सव्वापासण कुमार जक्खाण।
रूवाणि जिणयासे मगलदुविह माविहोई॥ —त्रिलोकसार

अर्थ–जिनप्रतिमाके निकट इनचारित्रका प्रतिबिम्ब होइ है। यहांपर प्रश्न–जो श्री देवी तो धनादिक रूप है और सरस्वती जिनवाणी है। इनका प्रतिबिम्ब कैसे होइ है। ताका समाधान-श्री और सरस्वती ये दोऊ लोकमें उत्कृष्ट है तातं इनका देवागन

का आकार रूप प्रतिबिंब होई है। बहुरि दोऊ यक्ष विशेष भक्त हैं तातें तिनके आकार हो हैं। आठ मंगल द्रव्य हो।

—पंडित टोडरमलजी

वमविंदु व श्री जयसेन प्रतिष्ठापाठमें भी अरहन्त की प्रतिमा का स्वरूप लिखा है। पाठकोको देखनेके लिये वह भी फिर दुबारा लिख देते हैं।

प्रातिहार्याष्टकोपेतं सम्पूर्णावयय शुभम्।
भावरूपानु विद्धांग कारयेद्बिम्वमर्हत.॥

अर्थ—भगवान अरहन्तदेवका प्रतिबिम्ब आठ प्रतिहार्य सहित होना चाहिए, समस्त अवयवो सहित होना चाहिए शुभ होना चाहिये, उसका समस्त शरीर केवलज्ञानके स्वरूपको प्रकाशित करनेवाले भावोंसे सुशोभित होना चाहिए। भगवान अरहत देवका प्रतिबिम्ब इस प्रकार बनवाना चाहिये।

जो लोग यक्ष यक्षियोंको शासनदेव नही मानते वे लोग भी इस वसुविंदु प्रतिष्ठापाठको मानते हैं इसमें भी अन्य प्रतिष्ठा पाठोके समान ही अरहंत प्रतिमाका स्वरूप आठ प्रतिहार्य सहित लिखा है। इससे यह अवश्य सिद्ध हो जाता है कि जिस प्रतिमा मे आठ प्रतिहार्य अकित न हो वह सिद्धोंकी प्रतिमा है। अरहतकी प्रतिमामे आठप्रतिहार्य यक्षयक्षी और चिन्ह अवश्य होना चाहिए।

भगवान पूज्यपादाचार्यने दशभक्ति व भक्तिपाठ लिखा है। उसमे पचगुरु भक्तिके पाठमे लिखा है—'अट्ठमहापाडिहेरसंजुत्ताणा अरहताणा' अर्थात् अरहत पाठ प्रतिहार्य सहित होते हैं उनकोमैं नमस्कार करता हूं।

इसप्रकार सक्षेपसे प्रतिमाका लक्षण लिखा है। प्राचीन प्रतिष्ठित समस्त प्रतिमायें यक्ष यक्षी अष्ट प्रतिहार्य सहित ही होती है। ऐसी प्रतिमायें अनेक स्थानोमे विराजमान हैं। इसलिए प्रतिमायें अष्ट प्रतिहार्य और यक्ष यक्षी सहित ही बननी चाहिए। शास्त्रोक्त सिद्धात यही है।

है। आचार्य उपध्याय और साधुओंकी प्रतिमा भी आगमके अनुसार बनानी चाहिये।

कारयेदर्हतो विम्बं प्रातिहार्यसमन्वितम्।
यक्षाणां देवतानां च सर्वालंकारभूषितम्।
स्ववाहनायुधोपेत कुर्यात्सर्वांगसुन्दरम्।

अर्थ—जिनप्रतिमा आठ प्रतिहाय सहित होनी चाहिये। तथा यक्ष यक्षी सहित होनी चाहिए। वे यक्ष और यक्षी समस्त अलकारोंसे सुशोभित होने चाहिए, अपने-अपने आयुध और वाहन सहित हों तथा सर्वांग सुन्दर हों।

सैद्धं नु प्रातिहार्याकयक्षयुग्मोज्झित शुभम्।

अर्थ—जिन प्रतिमामें आठ प्रतिहार्य न हों और यक्ष यक्षी न हों उनको सिद्ध प्रतिमा कहते हैं।

अष्टप्रातिहार्यसमन्विताहंप्ततिमा तद्ररहिता सिद्धिप्रतिमा

अर्थ—जिस प्रतिमामें आठ प्रतिहार्य हों वह अरहन्तकी प्रतिमा है तथा जिसमें प्रतिहार्य नही है, वह सिद्ध प्रतिमा है।

प्रतिष्ठाके समस्त ग्रथमें अरहन्त प्रतिमाका यही स्वरूप बतलाया है। त्रिलोकसार राजवर्तिकमें भी प्रतिमा का यही स्वरूप है। यथा—

सिंहासणादि सहिया विणीयकुन्तल सुवज्जमयदंता।
विदुय हरदा किसलय सोहापर इत्थमायतला॥
सिरी देवी सुअदेवी सव्वापासण कुमार जक्खाण।
रूवाणि जिणयासे मगलदुविह माविहोई॥ —त्रिलोकसार

अर्थ—जिनप्रतिमाके निकट इन चारित्रका प्रतिबिम्ब होइ है। यहांपर प्रश्न—जो श्री देवी तो धनादिक रूप है और सरस्वती जिनवाणी है। इनका प्रतिबिम्ब कैसे होइ है। ताका समाधान-श्री और सरस्वती ये दोऊ लोकमें उत्कृष्ट है तातें इनका देवांगन

का आकार रूप प्रतिबिंब होई है। वहुरि दोऊ यक्ष विशेष भक्त हैं ताते तिनके आकार हो हैं। आठ मगल द्रव्य हों।

—पडित टोडरमलजी

वर्मविदु वश्री जयसेनप्रतिष्ठापाठमे भी अरहन्त की प्रतिमा का स्वरूप लिखा है। पाठकोको देखनेके लिये वह भी फिर दुवारा लिख देते हैं।

प्रातिहार्याष्टकोपेतं सम्पूर्णावयय शुभम्।
भावरूपानु विद्धाग कारयेद्विम्वमर्हत ॥

अर्थ—भगवान अरहन्तदेवका प्रतिविम्व आठ प्रतिहार्य सहित होना चाहिए, समस्त अवयवों सहित होना चाहिए शुभ होना चाहिये, उसका समस्त शरीर केवलज्ञानके स्वरूपको प्रकाशित करनेवाले भावोसे सुशोभित होना चाहिए। भगवान अरहत देवका प्रतिविम्व इस प्रकार वनवाना चाहिये।

जो लोग यक्ष यक्षियोको शासनदेव नही मानते वे लोग भी इस वसुविंदु प्रतिष्ठापाठको मानते हैं इसमें भी अन्य प्रतिष्ठा पाठोके समान ही अरहत प्रतिमाका स्वरूप आठ प्रतिहार्य सहित लिखा है। इससे यह अवश्य सिद्ध हो जाता है कि जिस प्रतिमा मे आठ प्रतिहार्य अकित न हो वह सिद्धोकी प्रतिमा है। अरहतकी प्रतिमामे आठप्रतिहार्य यक्षयक्षी औरचिन्हअवश्यहोना चाहिए।

भगवान पूज्यपादाचार्यने दशभक्ति व भक्तिपाठ लिखा है। उसमे पचगुरु भक्तिके पाठमे लिखा है—'अट्ठमहापाडिहेरसजुत्ताणा अरहताणा' अर्थात् अरहत पाठ प्रतिहार्य सहित होते है उनकोमैं नमस्कार करता हूं।

इसप्रकार सक्षेपसे प्रतिमाका लक्षण लिखा है। प्राचीन प्रतिष्ठित समस्त प्रतिमाये यक्ष यक्षी अष्ट प्रतिहार्य सहित ही होती है। ऐसी प्रतिमाये अनेक स्थानोमे विराजमान हैं। इसलिए प्रतिमाये अष्ट प्रतिहार्य और यक्ष यक्षी सहित ही बननी चाहिए। शास्त्रोक्त सिद्धात यही है।

श्री १००८ देवाधिदेव भगवान

महावीर का पावन संदेश

और देशना विवेक बहत्तरी

✻

१ पराधीनता है बुरी, पराधीन अति दीन ।
सच्ची आत्म स्वतंत्रता, उस बिन नही स्वाधीन ॥

२ बिना भेद विज्ञान के, सारा जग अज्ञान ।
आत्म के अनुभव बिना, हो नहीं भेद विज्ञान ॥

३ स्वसबंध है आत्मरस, निज में है भरपूर ।
खोजे बिन मिलता नही, जो खोजे सो शूर ॥

४ नरभव को जो कामसुख, सुरभव को बड़ भाग ।
वीतराग सुख अतुल के, सम नही अनेते भाग ॥

५ जहाँ सत जागते, सुप्त वहाँ जगजीव ।
जग प्राणी जागे जहाँ, सोवे सत सदीव ॥

६ इक दिन में कुछ मिनिट तो, लेवो आत्म का स्वाद ।
एक वर्ष ऐसा करो, तज कर सर्व विवाद ॥

७ आवे यदि आनन्द तो, समय बढ़ाते जाव ।
निज रस के आस्वाद का, होगा अतुल प्रभाव ॥

८ क्या स्वरूप मेरा बना, मैं हूँ कौन स्वरूप ।
अब जाना मुझको कहाँ, क्या पड़ना है कूप ॥

९ भासैगा मे रक नही, मैं हूँ अनुपम भूप ।
जग विषयो की चाह मे, विगड़ गया ममरूप ॥

१० भूप होय इन्द्रिय विषय, को मैं मागू भीख ।
सुखाभास के अर्थ अव, क्यो मैं मारू चीख ॥

११ यह विचार जव आयगा, होगा परमानन्द ।
मजा स्वरस का आयगा, मिटे सकल दुःख द्वन्द ॥

१२ पुत्र मित्र सुत दार सब, सगे स्वार्थ के लोग ।
ज्ञाता नहि परमार्थ के, है अनिष्ट संयोग ॥

१३ इस अनिष्ट सयोग में, करो न अव कुछ प्रीति ।
प्रीति करै दुःख ही सहे, यहि जगत की रीति ॥

१४ घर में भी यदि वास हो, रहो सलिल कज भांति ।
आत्म साधना रत हो, करो सफल नर जाति ॥

१५ विषय इन्द्रियो के वुरे, इनके जो आधीन ।
किंकर के भी दास वे, वने रहे नित दीन ॥

१६ सवसे ऊँचे त्यागि जन, कुछ नही जिनके चाह ।
चाह गई चिंता मिटी, चले न इन्द्रिय राह ॥

१७ जो आशा के दास हैं, वे सब जग के दास ।
जिनकी आशा दास है, खड़ा रहे जग पास ॥

१८ सव कुछ देते हैं नही, जिनके कुछ नहि पास ।
पर्वत से नदियाँ वहे, नही उदधि से आस ॥

१९ सुख दुःख भय वैभव सुयस, होय कर्म आधीन ।
नृप न धनिक मंत्री सुबुध्र करै कर्म ही दीन ॥

२० करो कर्म अच्छे सदा, भूल न करो कुकर्म ।
सदा पथ अच्छे चलो, पालो मानव धर्म ॥

२१ हिंसा अनृत परधन हरण, अनाचार व्यभिचार ।
ये सब खोटे कर्म हैं, ये ही कुपथा धार ॥

२२ ये ही सारे पाप है, ये ही सब अपराध ।
इनका तजना धर्म है, धर्म सुधामय पाय ॥

२३ यदि सुख चाहो लोक में, बनो न विषयाधीन ।
अशुभ कर्म से अलग हो, बनो सुकर्म सुलीन ॥

२४ धन पाया यदि योग से, देवो दीनो को दान ।
भोजन औषधि दीजिये, पुस्तकादि से ज्ञान ॥

२५ सुख दुःख दाता जीव की, कर्म विजान ही ओरे ।
भले बुरे निज धर्म का, इसलिये है जोरे ॥

२६ हिंसा चोरी आदि बिन, नही पा सकता दंड ।
इन खोटे दुष्कर्म से, भोगे दड प्रचड ॥

२७ किसी जीव को भूल भी, मत पहुँचाओ कष्ट ।
सब जीवों में मित्रता, मर्म धर्म का स्पष्ट ॥

२८ किया करो ऐसी समझ, प्राणी पीड़ा टाल ।
खान पान ऐसा करो, होय जीव प्रति पाल ॥

२९ मृषा वचन बोलो नही, रखो सत्य का ध्यान ।
मुख की शोभा सत्य है, इस ही में है सम्मान ॥

३० पर धन का हरना बुरा, धन भी जीवन प्राण ।
परधन पर वस्तु का हरण, दोनों पाप समान ॥

३१ पर नारी पर पुरुष का, सेवन पापाचार ।
कलह द्वेष झगड़े बढ़े, फैले अत्याचार ।।

३२ यथाशक्ति हलका करो, दुखद परिग्रह भार ।
परिग्रह ही दुःख मूल है, परिग्रह ही ससार ।।

३३ इन पापो के त्याग का, धर्म लोक में नाम ।
बनो धर्म निरपेक्ष यदि, मिले न सुख में धाम ।।

३४ यही सार की बात है, ज्यादा कहना व्यर्थ ।
जो मुमुक्ष जन हों उन्हे, विषय त्याग ही सार्थ ।।

३५ अपने मतलब के लिये, करो न पर का घात ।
यही देश हित है बड़ा, यही सार मय बात ।।

३६ जो निज मतलब से करे, पर के प्राण विछोह ।
वह निज पर का घात है, वह ही देशद्रोह ।।

३७ मांस और मदिरा सहद, अरु क्षीरोफल पाच ।
इनके सेवन से लगे, मानवता मे आंच ।।

३८ भोजन करना रात में, पापो का है मूल ।।
प्राणिघात बहु रोग ही, उभय लोक में शूल ।।

३९ जीवो की हिंसा दुखद, करती वैर विरोध ।
जीवो की पालो दया, मानवता का बोध ।।

४० छान बरुन से जल पियो, यहि सुगुरु उपदेश ।
पंच प्राप्त की नमन से, मिट जाते सब क्लेश ।।

४१ हिंसा मे नही धर्म है, नही देश कल्याण ।
सार तत्व का जानिये, मल अहिंसा प्राण ।।

४२ भारत की संस्कृति रही, सदा अहिंसा रूप ।
हम जीवें जीवें सभी, संस्कृति यही अनूप ॥

४३ अनुचित स्वार्थ सुसाधना, पाप और अपराध ।
पर की उपकृति में, सदा समझो पुण्य अगाध ॥

४४ सब पर्यायों में श्रेष्ठ है, यह मानव पर्याय ।
इसको विफल न कीजिये, धर्म सदा सुखदाय ॥

४५ हंसादिक दुष्कर्म का, करो नहीं व्यवसाय ।
इनसे मन ही मोड़िये, कितनी होवे आय ॥

४६ प्राणिघात मदिरा जनित, अरु मधु का व्यापार ।
मछली अंडे मांस का, क्रय विक्रय अंधकार ॥

४७ इनसे मिश्रित वस्तु भी, है व्यापार अयोग्य ।
सात्विक जन उपयोग के, कभी न ये है योग्य ॥

४८ धन का व्यय उतना करो, जितनी होवे आय ।
कर्ज कभी करना नही, कर्ज सदा दुःखदाय ॥

४९ सादा वेष भूषा धरो, सादा फैशन युक्त ।
सरल सकल व्यवहार ही, मायाचार विमुक्त ॥

५० मात-पिता गुरु आदि से, रहो सदा सु-विनीत ।
उनकी सेवा नित करो, लो अविनय की जीत ॥

५१ सदा देशहित में रहो, सब विधि से संलग्न ।
सम कुटम्ब सब को समझ, विश्व प्रेम में मग्न ॥

५२ अपना भारत देश यह, कभी न हो परतन्त्र ।
सदा कार्य ऐसे करो, रहे सदैव स्वतन्त्र ॥

५३ विश्व शांति का मूल है, परम अहिंसा धर्म ।
कोई दुःख पावे नही, ऐसे करो सुकर्म ॥

५४ यदि करते हो नौकरी, रिश्वत ग्रहण अयोग्य ।
वेतन जितना सा मिले, व्यय उतना ही योग्य ॥

५५ अति सचय मत कीजिये, यह है अति अपराध ।
परिग्रह का परिणाम ही, रखिये सदा अबाध ॥

५६ अति सचय का हेतु है, रिश्वत चोर बजार ।
सब पापो का मूल है, गल्त अत्याचार ॥

५७ नफा उचित ही लीजिये, क्रय विक्रय के मध्य ।
नाप तोल पूरा रखो, फल कल, यदि नहि अद्य ॥

५८ वस्तु श्रेष्ठ मे खोट का, जान मिलावट पाप ।
धन यदि कुछ प्राप्त हो, फिर होवे अति सताप ॥

५९ स्वामि सेवक में रहे, सदा सुखद सबध ।
यदि दोनो कर्तव्य में, नहीं रक्खे प्रतिबंध ॥

६० भ्राता सुत सम समझिये, सेवक को नही अन्य ।
उसके दुःख को स्व दुःख, समझे वही स्वामि है धन्य ।

६१ सेवक का कर्तव्य है, स्वामि भक्ति में लीन।
दोनों निज कर्तव्य के, रहें नित्य आधीन ॥

६२ जन रक्षण पोषण भरण, शासक का कर्त्तव्य।
स्वार्थ सिद्धि में जो लगा, शासक वही अभव्य ॥

६३ एक तंत्र जन तंत्र ही, चाहे हो दल तंत्र।
जनता में सुख शांति हो, यदि वह नहिं सब परतंत्र ॥

६४ अनुग्रहीत हो शिष्ट जन, दुष्ट होय निगृहीत।
अन्न वस्त्र शिक्षा अगद, हों न महंगे प्रतीत ॥

६५ राजा का यह धर्म है, करे न खुद व्यापार।
प्रजा का पालन करे, अपनी रखें संभाल ॥

६६ कर से जन शोषण न हो, राज्य प्रजा संतोष।
पिता पुत्र समभाव हों, नही परस्पर रोष ॥

६७ राज्य प्रजा दोनों सदा, करें न पापाचार।
धर्म नियंत्रित राज्य हो, वैसा जन व्यवहार ॥

६८ इच्छाओं का रोकना, इच्छा सप्रतिबंध।
संतोषामृत के बिना कही नही आनन्द ॥

६९ ज्यों ज्यों इच्छायें बढ़ें, त्यों त्यों पूर्ति उपाय।
हुई एक की पूर्ति, तो वाको करे अपाय ॥

७० बने जहा तक कम करो, इच्छाओ का भार।
इच्छाओ मे बस रहा, दुःखो का ससार।।
७१ श्री महावीर की देशना, यह ही है सब सार।
सब सुख पावे विश्व मे, धारे यदि सागार।।
७२ अनागार का धर्म है, धरे महाव्रत भार।
ज्ञान ध्यान मे लीन हो, करे कर्म सघार।।

इति विवेक बहत्तरी सम्पूर्ण हुई

मंदालसा स्तोत्र

(रचयिता—आचार्य शुभचन्द्र)

(यह मंदालसा स्तोत्र आचार्य शुभचन्द्र की अप्रतिम कृति है। वाह्य रूप से इस स्तोत्र मे किसी चेतन परमात्मा सिद्ध भगवान की स्तुति प्रतीत होती है और ऐसा लगता है कि यह सिद्ध भगवान की जयमाला है। यह स्तोत्र साहित्य मे सख्या दर्शक स्तोत्र गणना मे अष्टक पद्धति का स्तोत्र है। इसमे बताया है कि मानव जीवन मे माता का स्थान कितना महान और गौरव पूर्ण है। माता बच्चो को प्रारम्भ मे उत्तम सस्कारो द्वारा ही निर्माण कर सकती है। उत्तम सस्कार ही धर्म है। उस सस्कार के कारण ही मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है)

कथा

किसी देश मे एक राजा राज्य करते थे। उसके मदालसा नाम की रानी थी। उसका जैन धर्म मे महान दृढता और अगाध विश्वास था। उसकी आन्तरिक इच्छा थी कि मेरे जो भी सतान हो वह उत्तम धर्म का साक्षात उदाहरण बने। क्योकि धर्म के उपदेश मात्र से धर्म प्रचार नही होता है। धर्म स्वय आचरण करने वाले विश्वस्तो से ही धर्म का का रक्षण होता है। कहा है 'धर्मो रक्षति रक्षत'। इसलिए वह जब भी बच्चा गर्भ मे होता भगवान का स्तोत्र-पाठ करती थी। बच्चों को दूध पिलाते, खिलाते, सुलाते, न्हवाते, झूलना झुलाते समय स्तोत्र पाठ करती थी।

उस रानी के छह बच्चे पैदा हुए और उन सभी ने धार्मिक सस्कारों के कारण योग्य काल मे भर यौवन अवस्था मे घर छोडने की प्रतिज्ञा की और मुनि दीक्षा ग्रहण करी। सभी बच्चो के गृह त्याग से राजा बड़ा ही चिंतित हुआ कि अब राज गद्दी कैसे चलेगी। इसलिए राजा ने

रानी से पूछा कि "हमारे सब पुत्रो ने दीक्षा धारण कर ली है अब हमारा राज्य कैसे चलेगा?" तव रानी ने कहा कि "अवकी वार जो पुत्र होगा वह गद्दी पर बैठेगा।" राजा ने फिर पूछा, "यह कैसे संभव है कि वह राज गद्दी सभाल ही लेगा।" रानी ने कहा, "मैंने छह पुत्रो को गर्भ अवस्था मे ही धार्मिक सस्कार दिए अव सातवें पुत्र को ऐसा सस्कार कराऊगी जिससे वह राज्य कार्य कर सके।" राजा को बडा ही आश्चर्य हुआ और राजा ने रानी से फिर पूछा, "आप बतावें कि उन पुत्रो को कौन सा मत्र दिया था।" रानी ने इस स्तोत्र मे सिद्धात्मा के वैभव का वर्णन बडी योग्यता के साथ किया है। वालको मे ऐसी शक्ति विद्यमान है जो शुरू से या पूर्व जन्म के सयोग से वह शक्ति बडे से वडा कार्य कर सकती है। अत मन्दालसा रानी द्वारा प्रदत्त यह आत्म सन्देश केवल अपने पुत्र को ही नही, किन्तु ससार के समस्त वालको के लिए है। वाल्य-काल मे दिए हुए सस्कार दृढमूल कैसे होते हैं। यह इस स्तोत्र के माध्यम से बताया है।

मंदालसा स्तोत्र

सिद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरजनोऽसि, ससार माया परिवर्जितोऽसि।
शरीर भिन्न स्त्यज सर्व चेष्टां, मन्दालसा वाक्यमुपास्सव पुत्र।१

अर्थ—माता मन्दालसा अपने पुत्र को ऐसे संस्कार प्रदान करना चाहती है जिससे अपना पुत्र आत्मा का वैभव जान लेवे। वह कहती है, हे पुत्र, तू सिद्ध है, अर्थात् आत्मा की जो विशुद्ध अवस्था है, वह तेरा स्वरूप है। अनंत दर्शन ज्ञान, सुख और अनन्त वीर्य इत्यादि शक्तियों से परिपूर्ण है। तू बुद्ध है। जो भी जानने योग्य है वह तूने जान लिया है। तू सर्वज्ञ है। तू निरजन है--मल रहित है। ससार की माया से

रहित है। संसार की क्षणिकता तुझमें नहीं है । तू इस शरीर से भिन्न है, इसलिए अन्य क्रियाओं की झझट से विरक्त हो। इस प्रकार तेरी माता तुझे कह रही है। तू मुनिव्रत धारण कर, कर्मों को नष्ट कर परमात्मा बनना यह तू ध्यान में रख।

ज्ञातासि दृष्टासि परमात्म रूपो।
अखण्डरूपोऽसि गुणालयोऽसि ॥
जितेन्द्रियम्त्व त्यज मान मुद्रां ।
मदालसा वाक्य मुपास्स्व पुत्र ॥२॥

अर्थ—हे पुत्र! तेरा स्वभाव ज्ञानमय है। जडता इस शरीर में है। तू निश्चय से इससे अलहदा है। ससार के चराचर पदार्थो की जानने के शक्ति तुझमें है। तू इस ज्ञान शक्ति के कारण ही महान है। तू द्रष्टा है, देखने वाला है। विवेकी है। सत्य और असत्यता का भेद जानने वाला है। तूं परमात्मस्वरूप है, स्वभाव में अखण्ड है । तू सब गुणो का स्वामी है। इसलिए हे पुत्र ! संसार की सब झूठी माया से मुंह मोड़ कर, मुनि बनकर, कर्म नष्ट कर परमात्मा बनना। इस उपदेश को स्वीकार करना।

शांतोऽसि दांतोऽसि विनाशहीन। सिद्ध स्वरूपोऽसि कलक मुक्तः।
ज्योतिः स्वरूपोऽसि विमुंच मायां। मन्दालसा वाक्यमुपास्स्व पुत्र।३

अर्थ—हे पुत्र ! तेरा स्वभाव शान्तिमय है, क्योंकि क्रोध, मान, माया, लोभ व काम इस जीव के बैरी हैं। इनके त्याग से ही जीव ऊचा उठता है और तेरा स्वरूप विनाश से रहित है अर्थात अविनाशी, अनन्त एव सतस्वरूप है। सिद्ध रूप है

निरंजन रूप, ज्योति रूप है संसार के कर्म रूपी कलक से तू विमुक्त है। ऐसा पक्का विचार कर मुनिव्रत धारण कर, कर्म नष्ट कर सिद्ध अवस्था को प्राप्त कर ले यही उपदेश समझ कर ग्रहण करना।

एकोऽसि मुक्तोऽसि चिदात्मकोऽसि
चिद्रूप भावोऽसिचिरतनोऽसि ।
अलक्ष्य भावो जहि देह मोहम् ।
मन्दालसा वाक्य मुपास्स्व पुत्र ॥४॥

अर्थ—हे पुत्र ! तू किसी के आश्रित नही। इसलिए तेरा स्वरूप एकत्व है। तू ससार के बधनों से मुक्त है। तेरा स्वरूप चिन्मय है। तेरे भाव चित्स्वरूप है। तू चिरतन है। तू शरीर के मोह को छोड शीघ्र मुनि बन कर्म नष्ट करना।

इस शरीर को प्राप्त कर महा तप करना यही सार है। यह मेरा वचन स्वीकार कर।

निष्काम धामासि विकर्म रूपो। रत्नत्रयात्मासि परं पवित्र।
येत्तासि चे तोऽसि गिमुञ्चकामं। मदालसा वाक्य मुपास्स्व पुत्र ।५

अर्थ—हे पुत्र ! सब इच्छाएं निकलजाने से तू तेजस्वी है, तू कर्म निकल जाने पर विकर्मा है। तेरा स्वभाव रत्नत्रय मय है, तू परम शुद्ध है। तेरा स्वभाव मोह से रहित है तेरा असली स्थान सिद्ध शिला है। अतः उस असली स्थान में पहुंचने का यत्न कर।

देखो इस जीव ने संसार कीचड़ में फंस . नर्क, निगोद के दुःख भोगे, तिर्यंच गति में एक इन्द्रिय पृथ्वी काय, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति काय धारण किया। त्रस में दो इन्दिय, तीन इन्द्रिय, चतु इन्द्रिय, पंच इन्द्रिय असैनी हुआ। गधा, घोड़ा, ऊंट विलाव हो भटकता ही फिरा। अब कोई विशेष पुण्य से श्रावक कुल मिला। अब अपना स्वभाव सिद्धों के समान जानना यही मेरा कहना है सो स्वीकार कर।

प्रमाद मुक्तोऽसि सुनिर्मलोऽसि। अनन्त बोधादि चतुष्टयोऽसि।
ब्रह्मासि रक्षस्व चिदात्म रूपम्। मदालसा वाक्य मुपास्स्व पुत्र।६।

अर्थ—हे पुत्र! तूने प्रमाद रूपी शत्रु का नाश कर कलक को भगा दिया है। इसीलिए अनन्त ज्ञान, अनंत दर्शन, अनन्त सुख और अनत वीर्य इनकी प्राप्ति तुझे हुई है। तू ब्रह्म रूप है, सिद्ध रूप है, परिपूर्ण है। इसलिए अपने चैतन्य रूप आत्म स्वरूप की रक्षा करना तेरा परम कर्त्तव्य है। इन विचारों के द्वारा तू परमात्मा पद प्राप्त कर सकेगा। ऐसा मंदालसा अपने पुत्रों को शिक्षा दे रही है।

कैवल्यभावोऽसि निवृत्त योगी। निरामयी ज्ञात समस्त तत्वः।
परमात्मवृत्तिस्स्मर चित्स्वरूपम्। मंदालसा वाक्य मुपास्स्व पुत्र।७।

अर्थ—हे पुत्र! केवलज्ञान तेरा निज स्वरूप समझ। तू मन वचन काय की चंचलता से रहित ऐसा योगी है। तू रोग रहित है। तूने संसार की अवस्था देख ली है। तू परमात्मा की वृत्ति को धारण कर मोक्ष प्राप्त कर। ऐसा मेरा वचन मान ले।

चैतन्य रूपोऽसि विमुक्तमारोऽभावा विकर्मासि समग्रवेदी ।
ध्याय प्रकाम परमात्म रूपम् मदालसा वाक्य मुपास्स्व पुत्र ।८।

अर्थ—हे पुत्र ! तेरा स्वभाव ज्ञान-दर्शनमय चैतन्य स्वरूप है। तूने कामेच्छा से अपना पिंड छुडाया है। तू द्रव्य कर्म, भाव कर्म, नो कर्म रहित होने से केवलज्ञान ज्योति का स्वामी बन। ऐसा ध्यान कर जिससे शीघ्र मुक्ति प्राप्ति होवे। ऐसा मेरा वचन मान।

भावार्थ— देख, इस जीव ने ससार अवस्था मे पाच परिवर्तन कर अनत ससार भ्रमण करा। चौरासी लाख योनियो मे मारा-मारा फिरा। अब यह दाव पुण्य उदय से मिला। वीतराग देव की वाणी हृदय में धारण कर महामन्त्र का जाप कर कर्म काटकर परमात्मपद प्राप्त कर ले यही सार है।

इत्यष्टकैर्या पुरस्तनजान् विवोध्वनार्थं नरनाथ पूज्य ।
प्रावृज्य भीता भवभोग भावात् स्वकैस्तदासौ सुगति प्रपेदे ।६।
इत्यष्टक पापपराङ्मुखोयो मदालसाया भणति प्रमोदात् ।
ससद्गति श्रीशुभचन्द्र भासि सम्प्राप्य निर्वाण गति प्रपद्य त्।१०।

विशदार्थ—इस प्रकार मंदालसा ने अपने पुत्र के आत्म कल्याण के लिए उपदेश दिया। जिससे वस्तु का सत् स्वरूप पाप और पुण्य का भेद, तत्व और अतत्व का विचार, राग और विराग परिणति का भेद, संसार और निर्वाण की अवस्था का दर्शन अपने पुत्र को मदालसा माता करा रही है। यद्यपि

पुत्र तो राजपुत्र क्षत्री है और समस्त भोग सम्पदाओं सहित हैं फिर भी माता का कल्याणमई उपदेश ग्रहण कर ससार के क्षण भगुर पदार्थो से मोह हटाकर मुनि दीक्षा धारण की और अपने शुद्ध विचारों से सदा के लिये अनंतानत सुख के भोक्ता बने ।

इस प्रकार के उपदेश से केवल राजपुत्र ही नही, अपितु जो भी अपनी आत्मा को पर पदार्थों से भिन्न करे और आत्म वैभव को पिछाने वह समस्त पापों से मुक्त होकर चन्द्रमा के समान शुभ्र अवस्था निर्वाण सुख को प्राप्त करता है ऐसा श्री शुभचन्द्र आचार्य देव कहते है । जो प्राणी इस मन्दालसा स्तोत्र को भाव से पढ़ेगा और इस पर त्रियोग से धारण करेगा वह अवश्य मुक्ति को प्राप्त होगा—ऐसी माता और ऐसा पुत्र जयवन्त हो ।

●

महावीर की अमर कहानी

(कविवर श्री वैद्यराज पं० राजेन्द्रकुमार 'कुमरेश' चदेरी)

आशा के बलिदान चढाये, करदी रे सुख की कुर्बानी ।
वैभव पैरों से ठुकराया, जंगल चला, छोड़ रजधानी ।।
जज़ा गया जीते जी अपने अपनी, अपने हाथ जवानी ।
युग-युग तक संसार कहेगा, महावीर की अमर कहानी ।।
पायो रे निर्वाण वीर ने पायो रे निर्वाण ।। १ ।।

ओ बनाये स्वप्न चाह के, कभी न मुख से आह निकाली।
कहा सुना तब तक न किसी से, जबतक मन की थाह न पाली॥
रहा मस्त अपने ही मन मे, बना और अपना ही ध्यानी।
युग-युग तक संसार कहेगा, महावीर की अमर कहानी॥
पायो रे निर्वाण वीर ने पायो रे निर्वाण ॥ २ ॥

लगा विपत्ति मे चोट नित्य ही, सीने पर सपट कट झेला।
डरा न कापा, रोया, धोया, आग मिचौनी यम मे खेला॥
होम दिया जीवन हस हस कर, तन की मन की एक न मानी।
युग युग तक संसार कहेगा, महावीर की अमर कहानी॥
पायो रे निर्वाण वीर ने पायो रे निर्वाण ॥ ३ ॥

दुनिया हसी तालिया पीटी, ताने कसे, कहा दीवाना।
और स्वय यह दीवानी मे, करता रहा सदा मन माना॥
हार जीत की इस बाजी को जीत गया बन केवल ज्ञानी।
युग युग तक संसार कहेगा महावीर की अमर कहानी॥
पायो रे निर्वाण वीर ने पायो रे निर्वाण ॥ ४ ॥

स्वय रहा निस्वार्थ, स्वार्थ की जलती हुई बुझादी ज्वाला।
और स्वय बढकर दुनियां को, उसने पिलादी हाला॥
दिखा गया जग झुका सकेगा, केवल एक अकेला प्राणी।
युग युग तक संसार कहेगा महावीर की अमर कहानी॥
पायो रे निर्वाण वीर ने पायो रे निर्वाण ॥ ५ ॥

●

॥ श्री महावीराय नमः ॥

महावीर निर्वाण

(श्री राधामोहन जैन)

वर्धमान सन्मति महा, वीर महा अति वीर।
बीर पंच जिस नाम सो, नमो अत जिन धीर॥

श्री १००८ तीर्थंकर भगवान महावीर आज से लगभग २५७१ वर्ष पहिले चैत्र शुक्ल त्रयोदशी को परम पवित्र मगलमयी पुण्य वेला मे इसी भारत वसुन्धरा के बिहार प्रान्तीय कुण्डलपुर के अधिप महाराज सिद्धार्थ की महारानी त्रिशला देवी की कोख से जन्मे थे। स्वर्गों के देवो ने आकर इनका गर्भ तथा जन्म कल्याणक बड़े उत्साह के साथ मनाया। माता पिता के कहने पर भी मोह ममता के बन्धन मे न पड़ कर बाल ब्रह्मचारी ही रहे और ३० वर्ष की अवस्था मे ही सन्यास ले लिया। घोर तप किया, केवल ज्ञान प्राप्त किया।

इधर सारे भारत मे यज्ञ हिंसा को धर्म का बाना पहना कर केवल मूक पशुओ को ही नही परन्तु मानवों तक को अग्नि मे मन्त्राहुति पूर्वक होम कर स्वर्ग पहुचाने का सरल मार्ग कुछ स्वार्थान्धो ने प्रचलित कर रखा था। जो दिन दूना रात चौगुना बढ रहा था, जिससे सारे भारत में यत्र तत्र सर्वत्र त्राहि त्राहि की पुकार सुनाई पड़ रही थी। साथ ही सारे भारत मे सामाजिक उथल पुथल, नीच ऊच की भेद भावना, छुआ छुत का दौर आपसी कलह फैला रही थी।

इस प्रकार का वातावरण देखकर वीरप्रभु के हृदय को ठेस पहुँची। दया अहिंसा मन मे उमड आई और जनता का दुःख दूर करने का प्रण किया।

और वीरता के साथ और निर्भयता के साथ अहिंसावाद, समाजवाद और साम्यवाद के अस्त्रो को लेकर मैदान मे आ डटे। जनता ने साथ दिया, जिससे सारे भारत वर्ष मे अहिंसा, सत्य अचौर्य, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह का डका वजा दिया। ३० वर्ष की आयु मे ही साधु बन गये। १२ वर्ष ५ माह और १५ दिन के पश्चात घोर तपस्या द्वारा केवल ज्ञान प्राप्त किया। सारे भारतवर्ष मे घूम-घूम कर जैन धर्म का प्रचार किया और सारी बुराइयो को दूर कर दिया।

ससार के दु खो से छुडाकर मोक्ष के सुख को प्रदान करने वाले धर्म का उपदेश दिया। इस प्रकार २९ वर्ष ६ माह और १५ दिन तक धर्मामृत की वर्षा से देव मनुष्य और पशुओ को सन्तृप्त किया।

तत्पश्चात वे भगवान विहार प्रान्त के पावापुरी से कार्तिक कृष्णा अमावस्या के प्रभात मे अपनी आयु के ७२ वर्ष पूर्ण करके सर्व कर्मों से विमुक्त हो अविनश्वर निर्वाण लक्ष्मी के अधिपति बने।

इस अभूतपूर्व एवं अश्रुत पूर्ण तथा अननुभूत निर्वाण लक्ष्मी की प्राप्ति के हर्षोपलक्ष मे तत्काल असख्य देवो एव मानवो ने यथा शक्ति-भक्ति के अनुसार दीपमालिका प्रज्वलित कर अपनी असीम हार्दिक श्रद्धा को भगवान् महावीर स्वामी के श्री चरणो मे अर्पित की। दीपक-ज्ञान का प्रतीक है इसलिए दीपक जलाकर ज्ञान-ज्योति का उत्सव मनाया। श्री १००८ भगवान महावीर स्वामी को लक्षकर अमावस्या के प्रभात मे दीपावली महोत्सव मनाया गया। इसके बाद इसी कार्तिक कृष्ण अमावस्या के सायकाल में भगवान के प्रधान गणधर गौतम इन्द्र भूति महाराज को केवल ज्ञान रूपी महालक्ष्मी प्राप्त हुई। अत. इन्द्र आदि देवो ने राजा एव अमीर-गरीब मानवो ने आकर वडी सज-धज एव धूम-धाम के साथ हर्षोल्लास के वातावरण मे दीपमालिका को

प्रज्वलित कर केवलज्ञान महा लक्ष्मी की पूजा की । और मोक्ष प्राप्ति के लिये प्रभु की पर्याप्त प्रशसा की ।

अन्त मे सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के लिये मैं भगवान महावीर स्वामी को बार-बार नमस्कार करता हूँ और उनके बताये मोक्ष मार्ग का सेवन करना चाहता हूँ। हे भव्य प्राणियों ! धर्म का पालन करते हुये, भगवान महावीर का उपदेश मानते हुए पाचो पाप (हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील तथा परिग्रह) का त्याग करो और मोक्ष पथ पर लग जाओ ।

आज भारतवर्ष मे भगवान महावीर स्वामी का २५०० वां निर्वाण महोत्सव बड़े उत्साहपूर्वक मानाया जा रहा है। यह जब ही सार्थक होगा जब हम सब उनकी वाणी पर विश्वास करते हुये अपनी आत्मा का कल्याण करें और जिनवाणी का प्रचार करें।

श्री पार्श्वनाथ स्तुति

तुमसे लागी लगन, लेलो अपनी शरण, पारस प्यारा ।
मेटो मेटो जी संकट हमारा ॥ टेक ॥

निश दिन तुमको जपूं, पर से नेहा तजूं ।
जीवन सारा, तेरे चरणों में बीते हमारा ॥ १ ॥

अश्वसेन के राज दुलारे, वामा देवी के सुत प्राण प्यारे ।
सबसे नेहा तोड़ा, जग से मुंह को मोड़ा, संयम धारा ॥ २ ॥

इन्द्र और धरणेन्द्र भी आये, देवी पद्मावती मंगल गाये ।
आशा पूरो सदा, दुःख नहिं पावे कदा, सेवक सारा ॥ ३ ॥

जगके दुखकी तो परवाह नहीं है, स्वर्ग सुखकी भी चाह नहीं है ।
मेटो जामन-मरण, होवे ऐसा यतन, पारस प्यारा ॥ ४ ॥

लाखों बार तुम्हें शीश नवाऊं, जग के नाथ तुम्हें कैसे पाऊं ।
'पंकज' व्याकुल भया, दर्शन बिन ये जिया, लागे खारा ॥ ५ ॥